MAHIN-505

आधुनिक काव्य II

MA HINDI

3rd Semester

Rajiv Gandhi University

ww.ide.rgu.ac.in

आधुनिक काव्य -II

एम.ए. (हिंदी)

(चतुर्थ सत्र)

MAHIN-505

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA – 791 112

BOARD OF STUDIES	
Prof. Shyam Shankar Singh, (Head) Dept. Of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Chandan Kumar Dept. Of Hindi Delhi University	**External Member**
Prof. Dilip Medhi Dept. Of Hindi Guwahati University	**External Member**
Prof. Oken Lego Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Arun Kumar Pandey Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Co-ordinator**

Authors

Dr. Gajendra Mohan, Dr. Mohd. Erfan, Dr. Geeta Pandey, Yatindranath Gour, Dr. Laxmi Pandey

Revised Edition 2021

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Information contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd, and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE-Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.
Vikas® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida: 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 7561 Ravindra Mansion, Ram Nagar, New Delhi - 110055
Website: www.vikaspublishing.com Email: helpline @vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गाँधी विश्वविद्यालय अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने जो तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री व फरवरी 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी यही विश्वविद्यालय का वर्तमान कप विद्यमान है। आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो

आरंभ से ही राजीव गाँधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित है। 28 मार्च 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12.V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय ने देश के (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) शैक्षिक परिदृश्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल 2007 से विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अदभुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि.मी . और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 किकी दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय .मी . राजमार्ग से जुड़ा हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए है कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक स्नातकोत्तर एम . एड का कोर्स भी चलाता है। .कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी .डी .एच .फिल व पी

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध है। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फर्डिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही विभिन्न फर्डिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है देश विदेश के प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने-1 विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए है।

2000-2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामत छात्रों के प्रदर्शन में भी

विशेष सुधार देखा गया बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती है और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए है बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं मैं भी सफल हुए हैं। अनेक छात्र | परीक्षाओं में भी सफल हुए हैं NET

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है |

आईडीई एक परिचय

हमारे देश में उम शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक सामना करना पड़ रहा है। विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते है कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिक-आर्थिक बाधाओं को दूर करने का यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है जो अपनी रखना चाहते है मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नही निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तर पूर्वी भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में रान-2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर दूरस्थ शिक्षा संस्थान रखा गया दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार (आईटीई) करने के प्रयास जारी रखते हुए आईडीई ने2013-14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों शिक्षा अंग्रेजी), हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञानको शामिल किया है। (

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन पहली मंजिल का निर्माण किया गया है। विश्वविद्याल)य परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

.1 **नियमित माध्यम के समकक्ष**-पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।

2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री -(एसआईएसएम)**छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरत्व शिक्षा परिषद नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वय (डीईसी)ं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रदेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।

3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम** शैक्षिक कार्यक -**(सीसीपी)**्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7-15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बीपाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी .ए. के लिए सीसीपी में उपस्थिति .ए.अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम अनिवार्य होगी।

.4 **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट** -व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।

5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम** -परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।

6. **विषय परामर्श संयोजक** -पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर स

SYLLABI–BOOK MAPPING TABLE
आधुनिक काव्य-II

Syllabi– MAHIN–505	Mapping in Book
इकाई 1 परिचय; नागार्जुन के काव्य में यथार्थ चेतना; प्रगतिवादी काव्य चेतना और नागार्जुन; जन कवि के रूप में नागार्जुन; नागार्जुन का काव्य वैशिष्ट्य; पाठांश; रघुवीर सहाय के काव्य में राजनीतिक चेतना; रघुवीर सहाय के काव्य में भाषिक प्रयोग; समकालीन कविता और रघुवीर सहाय; पाठांश – 'तोड़ो' एवं 'पढ़िए गीता'	**इकाई1** : **नागार्जुन एवं रघुवीर सहाय**
इकाई 2 परिचय; नवगीत परंपरा में महेश्वर तिवारी का स्थान; महेश्वर तिवारी के नवगीतों का भाव-सौन्दर्य एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य; पाठांश – 'आस-पास जंगली हवाएं है' एवं 'धूप में भी जले हैं पांव' तथा अंधी सुरंग पर लेटा हुआ शहर; हिंदी गजल और दुष्यंत कुमार; ष्यंत के काव्य में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन का यथार्थ; दुष्यंत का काव्य-सौष्ठव; पाठांश	**इकाई 2** : **महेश्वर तिवारी एवं दुष्यंत कुमार**
इकाई 3 परिचय; समकालीन काव्य-मूल्य और अरुण कमल की कविता; हिंदी कविता में प्रतिरोध की चेतना और अरुण कमल; समसामयिक जीवन के प्रश्न और अरुण कमल की कविता; पाठांश	**इकाई 3** : **अरुण कमल**
इकाई 4 परिचय; स्त्री विमर्श और कात्यायनी की कविता; कात्यायनी की कविता में स्त्री-पीड़ा के बिंब; समसामयिक जीवन-बोध और कात्यायनी का काव्य; पाठांश	**इकाई 4** : **कात्यायनी**

इकाई 5 : परिचय**;** परंपरागत समाज-व्यवस्था का प्रतिरोध और दलित कविता**;** दलित-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में मलखान सिंह के काव्य का मूल्यांकन; पाठांश	**इकाई 5** : **मलखान सिंह**

विषय-सूची

परिचय :

इकाई 1 : नागार्जुन एवं रघुवीर सहाय

1.0परिचय
1.1 नागार्जुन के काव्य में यथार्थ चेतना
1.3 प्रगतिवादी काव्य चेतना और नागार्जुन
1.4 जन कवि के रूप में नागार्जुन
1.5 नागार्जुन का काव्य वैशिष्ट्य
1.6 पाठांश
1.7 रघुवीर सहाय के काव्य में राजनीतिक चेतना
1.8 रघुवीर सहाय के काव्य में भाषिक प्रयोग
1.9 समकालीन कविता और रघुवीर सहाय
1.10 पाठांश – 'तोड़ो' एवं 'पढ़िए गीता'

इकाई 2 : महेश्वर तिवारी एवं दुष्यंत कुमार

2.0 परिचय
2.1 नवगीत परंपरा में महेश्वर तिवारी का स्थान
2.2 महेश्वर तिवारी के नवगीतों का भाव-सौन्दर्य एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य
2.3 पाठांश – 'आस-पास जंगली हवाएं है' एवं 'धूप में भी जले हैं पांव' तथा अंधी सुरंग
पर लेटा हुआ शहर
2.4 हिंदी गजल और दुष्यंत कुमार
2.5 दुष्यंत के काव्य में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन का यथार्थ
2.6 दुष्यंत का काव्य-सौष्ठव
2.7 पाठांश

इकाई 3 : अरुण कमल

3.0 परिचय
3.1 समकालीन काव्य-मूल्य और अरुण कमल की कविता
3.2 हिंदी कविता में प्रतिरोध की चेतना और अरुण कमल
3.4 समसामयिक जीवन के प्रश्न और अरुण कमल की कविता
3.6 पाठांश

इकाई 4 : कात्यायनी

4.0 परिचय
4.1 स्त्री विमर्श और कात्यायनी की कविता
4.2 कात्यायनी की कविता में स्त्री-पीड़ा के बिंब
4.3 समसामयिक जीवन-बोध और कात्यायनी का काव्य
4.4 पाठांश

इकाई 5 : मलखान सिंह

5.0 परिचय

5.1 परंपरागत समाज-व्यवस्था का प्रतिरोध और दलित कविता

5.2 दलित-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में मलखान सिंह के काव्य का मूल्यांकन

5.3 पाठांश

इकाई 1 नागार्जुन एवं रघुवीर सहाय

1.0 परिचय

मैथिली भाषा की काव्य रचनाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखने वाले बाबा नागार्जुन को साहित्य अकादमी द्वारा मैथिली काव्य रचनाओं के लिए सम्मानित किया गया। हिंदी कविता क्षेत्र में भी उन्होंने अपने विपुल-काव्य साहित्य द्वारा हिंदी कविता का श्रीसंवर्द्धन किया। प्रगतिशील धारा के सशक्त एवं समर्थ कवियों में आपका नाम आता है। वास्तव में देखा जाए तो नागार्जुन जीवन-यथार्थ के कवि हैं। उन्होंने हिंदी काव्य जगत को अपने कई काव्य-संग्रह प्रदान किए हैं जिसमें जीवनानुभव की छोटी से छोटी बात से लेकर देशगत राजनीति की बड़ी से बड़ी घटना आकर समायी है। कवि की कविताएं पढ़कर यह आभास होता है कि उन्होंने अपनी आंखों देखी किसी भी बात को अनदेखा नहीं किया होगा। माना जाता है कि बाबा नागार्जुन की कई कविताएं अभी भी अप्राप्त हैं। कई कविताएं कवि के जीवन में ही खो गईं। नागार्जुन के काव्य में संपूर्ण युग-बोध झांकता है। उन्होंने उत्तर छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एवं नई कविता तक की युगीन स्थितियां अपनी कविता में प्रदान की। देश-काल का बेहतर अवलोकन नागार्जुन की कविताओं के माध्यम से प्राप्त होता है, जिसमें मुख्य स्वर प्रगतिवाद है।

नागार्जुन का वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है। इनका जन्म सन् 1911 ई. में हुआ। जन्म तिथि के विषय में आलोचकों में एक मत नहीं है। स्वयं कवि के द्वारा भी उनकी जन्म-तिथि की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। ये अपने पिता के परिवार में पांचवी संतान थे। अत्यधिक भाई-बहनों का बचपन में ही देहांत हो चुका था। इनके 'वैद्यनाथ' नाम के संदर्भ में कहा गया है कि इनके पिता द्वारा वैद्यनाथ धाम देवघर (बिहार) में पुत्र कायता हेतु अनुष्ठान रखा गया। तत्पश्चात इनका जन्म हुआ, इसलिए इनका नाम वैद्यनाथ रखा गया। इनके पिता का नाम गोकुल मिश्र था। एक सीधे-सादे कृषक एवं पुरोहित माता-पिता के यहां इनका जन्म हुआ था। बिहार राज्य के उत्तरी क्षेत्र के ग्रामीण समाज में इनके माता-पिता रहते थे।

राहुल सांकृत्यायन के 'संयुक्त निकाय' का अनुवाद पढ़कर वैद्यनाथ की इच्छा हुई कि इसे मूलरूप (पालि भाषा) में पढ़ा जाए। इसके लिए वे लंका गए जहां वे स्वयं पालि पढ़ते और मठ के भिक्षुओं को संस्कृत पढ़ाते थे। यहीं उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। 2 नवंबर, 1998 को नागार्जुन का देहांत हुआ।

नागार्जुन की कविताएं सामाजिक न्याय मांगती हैं। समाज में निहित वर्ग-भेद की स्थितियों में एक समान व्यवस्था लाने के वे पक्षधर रहे हैं। वे यातनाग्रस्त, दलित, पीड़ित और सर्वहारा वर्ग का समर्थन करते हैं। मानवीय पीड़ा-मुक्ति के उद्देश्य से उनकी कविताएं आगे बढ़ी हैं जहां उन्होंने पूंजीवादी व सामंतवादी शासन प्रणाली को बेखौफ बेनकाब किया है। मानवीय सरोकारों से जुड़े मुक्तिबोध शासन के कुचक्रों का भंडाफोड़ अपनी कविता में कई-कई बार करते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी कविताओं में अफसरशाही, राजनीति, चापलूस, देश-विदेश के बड़े नेता, अर्थनीति, शासनतंत्र चलाने वाले लोग आते हैं। यहां तक कि साधु-संन्यासी, फकीरों तक को उन्होंने नहीं छोड़ा है क्योंकि जहां जो गलत है वह नागार्जुन की नजर से बचकर नहीं रह सकता। एक तीव्र आक्रोश ऐसी सहजबयानी को कविता में लाकर उपस्थित कर देता है जहां बाह्य संवेदनाओं को ग्रहण करने वाला कवि का अंतस् विभिन्न तेवर वाली प्रतिक्रियाओं को कलम के बहाने प्रकट कर जाता है। उनका सबसे बड़ा हथियार व्यंग्य बन जाता है क्योंकि उनका सरल व्यक्तित्व व्यवस्था को बदलने के कई हथकंडे अपनी कविता में लेकर आता है जिसमें स्पष्टबयानी गजब की है। प्रस्तुत इकाई में आधुनिक कबीर कहे जाने वाले बाबा नागार्जुन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को हम विस्तृत रूप से जानेंगे।

9.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- नागार्जुन के काव्य में यथार्थ चेतना को अनुभूत कर पाएंगे;
- नागार्जुन के काव्य में व्यंग्य भावना को आत्मसात कर पाएंगे;
- नागार्जुन के काव्य में प्रगतिवादी चेतना का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- जनकवि के रूप में नागार्जुन के व्यक्तित्व का अध्ययन कर पाएंगे;
- नागार्जुन के काव्य वैशिष्ट्य की व्याख्या करने में समर्थ होंगे।

9.2 नागार्जुन के काव्य में यथार्थ चेतना

नागार्जुन अपनी कविता में यथार्थ जीवन के चित्रों की जीवंतता लेकर आते हैं। जीवन व जगत का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जिसकी उन्होंने चर्चा न उठाई हो। उनके अन्य समकालीन कवि-मित्र जिन प्रसंगों को देखकर भी न उठा पाए हों ऐसे हरेक प्रसंगों की चर्चा नागार्जुन के काव्य में होती है। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र उनकी कविता के अपने-अपने यथार्थ को लेकर प्रस्तुत होता है। नागार्जुन की काव्यगत यथार्थ चेतना को अग्रलिखित बिंदुओं के तहत समझा जा सकता है-

सामाजिक जीवन का यथार्थ

नागार्जुन सामान्य सर्वहारा वर्ग से थे और उसका ही समर्थन भी करते थे। सामान्य कृषक, मजदूर, श्रमिक की स्थितियों को कवि ने अनेक कविताओं में दर्शाया है। कहीं जब ये उच्च वर्ग के बीच भी उपस्थित होते हैं तो ये उच्च वर्ग के साथ निम्न वर्ग की सामाजिक विषमता की स्थितियों को ही लेकर आते हैं। 'घिन तो नहीं आती'? शीर्षक कविता इन स्थितियों का जायजा देती है। वास्तविकता कवि की नजर से छिप नहीं सकी है। निम्न चित्र देखिए–

दूध-सा धुला सादा लिबास है तुम्हारा
निकले हो शायद चौरंगी की हवा खाने
बैठना था पंखे के नीचे, अगले डब्बे में
ये तो बस इसी तरह
सच-सच बतलाओ
अखरती तो नहीं इनकी सोहबत?
घिन तो नहीं आती है?

इस प्रकार नागार्जुन सच को हौले से, व्यंग्य की नीयत से सामने लाते हैं। जो समाज में हो रहा है वह कवि को बयान करना ही करना है। इस तरह अपने समाज के कई-कई सचों को वे उकेर लाते हैं और अपने समकालीन समय के प्रति प्रतिबद्ध नजर आते हैं। 'आओ रानी, हम ढोएंगे पालकी' कविता में भी भारत माता के उन इनसानों की ही बात रखी है जो आम आदमी कहलाता है, जो रानी की पालकी ढोने के काम आता है। उसके लिए कवि ने यह महसूस किया है, 'बेबस बेसुध, सूखे रूखड़े, / हम ठहरे तिनकों के टुकड़े।'

सामाजिक परिवेश को प्रभावित करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की चर्चा नागार्जुन करते हैं। अपने समय के समाज के बीच हिंदू व मुस्लिम के प्रति जिन विचारधाराओं के बीज पनप रहे थे वे भी उनकी कविता में प्राप्त होते हैं। नागार्जुन ऐसे समाज के प्रति एकतरफा न बनकर इनसानियत को प्रश्रय देते हैं किंतु कभी-कभार ऐसा भी देखा गया है कि वे यथार्थ जीवन की विषमताओं को कविताओं में तो बदल देते हैं परंतु जिस समाज के प्रसंग वे उठाते हैं वह समाज नहीं बदलना चाहता। तब कवि स्वयं को एकाकी महसूस करता है। नागार्जुन सामाजिक विषमता के यथार्थ के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ सामाजिक कारणों की चर्चा करते हैं और समस्या निवारण की तह तक भी चले जाते हैं। इस संदर्भ में 'तेरी खोपड़ी के अंदर' कविता उल्लेखनीय है, जहां मुस्लिम रिक्शा वाला अर्थार्जन के लिए हिंदू कहलवाना ज्यादा उचित समझता है किंतु कवि यदि उसकी पहचान बरकरार रखकर मुस्लिम समझकर बात करता है तब वह झल्ला उठता है। यह उनके समय की कौम का सच है–

'ले चलना कभी/उस नाले के करीब/जहां कल्लू का कुनवा रहता है!/मैं उसकी बूढ़ी दादी के पास/बीमार अब्बाजान के पास/बैठकर चाय पी आऊंगा कभी।' मगर अंततः स्थिति यह बनती है कि वही रिक्शा वाला कहता है, 'खबरदार साले/तुझे किसने कहा था/ मेरठ आने के लिए? इस प्रकार कवि समाज के चरित्र को उसके पूरे वातावरण एवं संस्कार के साथ उभारने में कोई कसर नहीं रख छोड़ता है। यह भी वास्तविकता प्रमाणित होती है कि कवि

समाज को अपनी कविता के माध्यम से बदलने की प्रेरणा देता है मगर समाज परिस्थितिवश नहीं बदलना चाहता है।

प्राकृतिक प्रकोपों से उत्पन्न स्थितियां

जहां नागार्जुन प्राकृतिक दृश्यों के प्रति अपना रूझान रखते हैं वहीं वे उन प्राकृतिक प्रकोपों का भी जिक्र करते हैं जिनसे जन-सामान्य प्रभावित होता है। देश की अर्थव्यवस्था डांवाडोल होती है और मानवता रोती है। अकाल, बाढ़ की स्थिति भी कविता में आती है। उसके बाद भूख व बीमारी जन्म लेती है और वस्तुस्थिति तो यहां तक कहती है कि 'गोदामों में अन्न कैद है/पर पेट है खाली'। कृषक जीवन की विडंबनाएं कवि को सालती हैं। वह बेतवा किनारे के प्राकृतिक प्रसंगों को लाने में जितना आत्मविभोर हो उठता है उससे अधिक बेचैन प्राकृतिक प्रकोपों के दृश्य उसे करते हैं–

'गोलियां खाकर गिरे थे,
तरुण थे असहाय!
कफन तक तुम दे न पाये,
जी अकाल सहाय!'

प्राकृतिक प्रकोप से आम आदमी दोहरी मार खा रहा है। सेठ, जमींदार, व्यापारी भी उसे लूट रहे हैं। वे अनाज को दबाकर रख रहे हैं और सरकारी नीतियां चुप हैं। यह सूरत कवि को पीड़ा देती है। जमींदारों के अत्याचार से प्रभावित एवं भूख, अकाल, बाढ़ से सर्वाधिक प्रभावित प्रदेश बिहार की पीड़ाओं का चित्रांकन कर वे पाठकों के हृदय में भाव जगाने में सक्षम होते हैं। एक चित्र उपस्थित है -

मंडराती है यम की नानी खेतों में खलिहानों में
भूख, अकाल, महामारी की फसल उगी मैदानों में
लूट-पाट की होड़ मच गई नरभक्षी हैवानों में
लटक रहा ताला गल्ले की सरकारी दुकानों में।

शहरी जीवन का यथार्थ

कवि का काव्य अपने समय के मजदूरों का पक्षधर बनता है, निम्न वर्ग को बढ़ने की प्रेरणा देता है लेकिन देश की वास्तविक स्थिति पर भी प्रकाश डालता है। अन्न संकट की स्थितियां, भूख, बेरोजगारी एवं अन्न संग्रह करने वाले देशद्रोहियों के खाके को खींचती उनकी कविता जन-जागरण का स्वर भी प्रस्तुत करती है। शहरी जीवन के भीतर ईमानदार व्यक्तित्व को ढूंढ पाना बेहद कठिन स्थिति है। मगर झूठ बोलने वाले कैसे ठाठ-बाट में रहते हैं? यह सामाजिक अव्यवस्था देखकर कवि ने व्यंग्य कसा है–

सपने में भी सच न बोलना, वरना पकड़े जाओगे
भैय्या लखनऊ-दिल्ली पहुंचो मेवा-मिसरी पाओगे

शहरी जीवन के अंतर्गत कवि के पास राजनीतिक जीवन के चित्र अधिक हैं। नागार्जुन ईश्वर से अपने आस्तिक-नास्तिक संबंधों की खूब चर्चा करते हैं और एक बार तो यह भी

प्राण लेने को तैयार हो जाते हैं कि 'हो गई दुनिया बेईमान/इसी से रूठे हैं भगवान/ लोग भूं कैसे नादान/ चाहते राशन में पकवान।'

व्यक्ति की दुखी संवेदना, उसके सच देखने की अनुभूति, बाकी दुनिया को जानना नहीं चाहती। यह अपने में परेशान वर्ग है, यह दर्द कवि को सालता है। बीमार व्यक्ति के साथ-साथ बीमार सत्य एवं बीमार आदर्शों की बात कवि अपने उस समय के काव्य में करते हुए दिखाई देता है। वह लिखता है– 'सत्य का लकवा-मार गया है/गले से ऊपर वाली मशीनरी/पूरी तरह बेकार हो गई है।'

देश के प्रति चिंता

नागार्जुन ने अपनी कविताओं को डायरी में बंद करने के लिए नहीं लिखा। उन्होंने जिस तेवर में, जिस लहजे में व जिस शैली में अनुभूतियों को अपनी अभिव्यक्तियां प्रदान कीं उसके पीछे उनका जागरूक भाव था। उन्होंने छोटी-छोटी समस्याओं व अनुभवों से लेकर देश-देशांतर के व्यापारी मुद्दों को अपने काव्य में उठाया है। उनकी रचनाओं का इतना विस्तृत भंडार है लेकिन कहीं पर भी काव्य विषय में दोहराव की स्थिति नहीं है। कवि देश के प्रति चिंतित है। गांव, शहर, देशी-विदेशी वस्तुओं, किसान, मजदूर, श्रमिक, नेता, पूंजीपति, मालिक व मानवीय संबंधों विषयक सवाल-जवाबी उनके काव्य की विशेषता है। समाज उनके यहां बहुत बार आता है। उनकी चिंता का स्तर कुछ इस प्रकार है -

मैंने देखा, युग अंध-पंगु है, ठहरा है
मैंने देखा, सारा समाज ही बहरा है
मैंने देखा, मेरे विवेक पर पहरा है।

नागार्जुन का उठना-बैठना प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति के साथ है। इस कारण समाज की बारीकियों से वे परिचित हैं व समाज को दिशा देने का प्रयास करते हैं। नागार्जुन स्वयं कटु जीवन के अनुभवों को झेलकर भी जीवन के प्रति निराश कभी नहीं हुए। वे जब रचना में प्रवृत्त हुए थे, उस समय समाजवादी व यथार्थवादी कहे जाने वाले साहित्यकार लेखनरत थे। इसी साहित्यिक वर्ग के साथ मिलकर इन्होंने भी अपना लेखन कार्य समाज निर्माण की प्रेरणा से किया, समाज की नब्ज को नागार्जुन ने टटोला। उनका काल महज आदर्शों को लेकर अलग नहीं था बल्कि व्यावहारिक तौर पर उन्होंने देश के प्रति सुयोग्य नागरिक बने रहने का फर्ज निभाया और एतदर्थ कई बार जेल तक गए। नागार्जुन ने वास्तव में अपने देश से प्रेम किया। देश पर सेंध लगाने वाली नीतियों पर इन्होंने निशाना साधा।

मानव की अपेक्षाएं

नागार्जुन ने आजादी से पहले और आजादी के बाद के समाज को बखूबी अनुभव किया। एक बड़े बदलाव को उन्होंने देखा मगर वे स्वयं इस बदलाव में नहीं बदले। आजादी के उपरांत बदले जन की अपेक्षाओं को व्यक्त करना कवि ने अपना कर्तव्य समझा तथा हरेक कोण से इसे रखने का प्रयास किया। इस क्रम में मनुष्य की मनोवैज्ञानिक रूप से जन्म लेती इच्छा को भी उन्होंने उभारा है। प्रत्येक भारतीय द्वारा जब आजादी का मतलब स्वतंत्र बदलाव से था, वह बदलाव काफी हद तक हुए भी थे। जब कुछ बदलाव समाज के विपरीत दिशा को

पाठकों व अध्येताओं को बाह्य रूप से यह कविता विचित्र व अलग लग सकती है मगर कविता की गहराई को समझने पर मुक्तिबोध का सरल व ईमानदार व्यक्तित्व उभर कर आता है जहां कवि द्वारा जीवन के विविध आयामों को पॉलिश करके चमकाया नहीं गया है बल्कि बाहरी प्रारूप का पर्दाफाश बड़ी तसल्ली से किया गया है और बार-बार इस बात को कई ढंग से समझाने का प्रयास किया है। मुक्तिबोध को समझना कठिन भले ही हो मगर मुक्तिबोध सरीखे कवि को एक बार गहराई से समझने के उपरांत, कविताओं के सामने उपस्थित न रहने के बावजूद उनका वजूद हटा पाना, मुश्किल प्रक्रिया है।

मुक्तिबोध ने अपने जीवन में निहित कमियों की कोई परवाह तक नहीं की और अपने संवेदनशील फलक से हिंदी-काव्य-जगत को गंभीर, चिंतनशील काव्य प्रदान किया जिसकी तुलना किसी भी अन्य कवि से नहीं की जा सकती है।

8.8 मुख्य शब्दावली

- **वाचक** : सूचक, बतानेवाला, मौखिक, महत्वपूर्ण शब्द।
- **दर्शन** : चाक्षुष प्रत्यक्ष, वह शास्त्र जिसमें आत्मा, अनात्मा, जीव, ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, जगत, धर्म, मोक्ष, मानव-जीवन के उद्देश्य आदि का निरूपण हो।
- **अस्मिता** : अहंकार, अस्तित्व, विद्यमानता।
- **वैषम्य** : विषमता, समतल न होना, भूल, अनौचित्य, एकाकीपन।
- **फैंटेसी** : कल्पना का वह स्तर जहां पर कल्पना को किसी प्रकार की कोई बंदिश न हो, अति कल्पना।

8.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. गजानन माधव मुक्तिबोध।
2. सन् 1943 में।
3. चांद का मुंह टेढ़ा है।
4. 'मुक्तिबोध रचनावली' में।
5. 28 कविताएं।
6. मध्यम वर्ग।
7. मार्क्सवादी चिंतन को।
8. 'मध्यम वर्ग' के
9. मध्यवर्गीय वाचक को सारे द्वंद्वों से परे रखकर सर्वहारा के मध्य रखने पर अंधेरा समाप्त हो जाता है।
10. 'अस्मिता की खोज'।

अग्रसर होने लगे तब असली चिंता की बात बनी। सन् 1948 में उनकी 'सच न बोलना' कविता छपकर आई, जो मानव की बुनियादी अपेक्षाओं/विसंगतियों पर कुठाराघात करती है

जन-गण मन अधिनायक जन हो, प्रजा विचित्र तुम्हारी है

भूख-भूख चिल्लाने वाली - अशुभ अमंगलकारी है।

एक अन्य कविता भी इसी प्रकार के बयान देती है–

अंगरेजी, अमरीकी जोंकें, देशी जोंकें एक हुईं,

नेताओं की नीयत बदली, भारत माता टेक हुई।

आजादी के बाद की स्थिति

नागार्जुन ने आजादी के बाद सबसे ज्यादा राजनेताओं को लताड़ा है। जिनसे देश-सुधार की उम्मीद थी वही लोग रंग बदल चुके थे। वे सफेदपोश अपना पेट भरने में लगे थे। इतने बड़े आजादी के अभियान की सफलता के बाद उच्च वर्ग संपन्न राजनेताओं का नकारात्मक बदलाव कवि को बर्दाश्त न हो सका और वह प्रत्येक ऐसे नेता का नाम ले लेकर अपने विद्रोह के उद्‌गार व्यक्त करने लगे। ऐसा नहीं था कि कवि को सभी नेताओं से चिढ़ थी। देश के तथा देश के बाहर के कई नेताओं की प्रशंसा भी उनके द्वारा की गई है। गांधी जी, जयप्रकाश नारायण, लेनिन, भगत सिंह की जहां उन्होंने प्रशंसा की है, वहीं आजादी मिलने को गलत साबित करने वाले नेताओं पर बेखौफ अपनी प्रतिक्रिया भी दी है, जिसमें नेहरू, इंदिरा गांधी, मोरारजी का नाम उल्लेखीय है।

कवि को ऐतराज होता है कि गलत घटित होने पर भी अफसरशाह चुप है, जनतंत्र की असलियत तो झेलने लायक तक नहीं है। सूखे की स्थिति में भी मदद देने में शासन ऊंघ रहा है। कवि ने एस.डी.ओ. को भी कविता में हाज़िर किया है। पंचवर्षीय योजनाओं के ठंडे बस्ते में जाने की स्थिति वह सबको बताता है। आजादी के बाद देश की समस्याएं बढ़ी हैं, यह वह भली-भांति समझता है। आजादी के बाद भी यह सब जीवन में घटित हो रहा है–

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास

कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास।

बुनियादी जरूरतों की कमी आजादी के बाद की स्थिति है। समाज भयग्रस्त है। व्यवस्था की सीवन जगह-जगह से उधड़ी हुई है–

तीन दिन तीन रात

बस सर्विस बंद थी

तीन दिन तीन रात

गांधीवादी यथार्थ

गांधी उस समय से ही व्यक्ति नहीं संस्कार का नाम बन गया था। गांधी जी से जो उस समय के लोगों ने सीखा था वह सब हवा में उड़ा दिया। नई पीढ़ी व नेताओं का दोगलापन कवि को पसंद नहीं था। गांधीवादी टोपी की चर्चा को लोग भुना रहे थे। गांधी जैसी खादी पहन

किसी भी व्यक्ति पर भरोसा करने की स्थिति अब कवि को नहीं लगती है क्योंकि- 'अंदर अंदर विकट कसाई/बाहर खद्दरधारी है/ जमींदार है साहूकार है/बनिया है व्यापारी है।

कवि की कविता 'तीनों बंदर बापू के' व्यंग्यात्मक तेवर में लिखी गई कविता है जो गांधी जी की नीतियों को जनता द्वारा किया गया मज़ाक बता रही है। इस संदर्भ में अनेक यथार्थजन्य कविताएं नागार्जुन ने लिखी हैं, जैसे- 'गांधी जी का नाम बेचकर बतलाओ कब तक खाओगे?/यम को भी दुर्गंध लगेगी, नरक भला कैसे जाओगे?, इसके अलावा भी कवि गांधी जी के अनेक चित्र खींचता है। इस संदर्भ में कवि की 'रामराज्य' कविता प्रसिद्ध है जिसमें आजादी के बाद के जीवन का व्यंग्य मुखरित हुआ है। स्वप्न व यथार्थ का द्वंद्व यहां पर आता है।

देशगत नीतियों का यथार्थ

पंचवर्षीय योजनाएं ज्यों की त्यों कागज में बंद रह गईं। जनता को कुछ न मिला, प्रजातंत्र का स्वप्न भी अधूरा ही रह गया, यह नागार्जुन की कविताएं बताती हैं। देश के नेता हवाई यात्रा कर रहे हैं, अंग्रेजी खेल खेल रहे हैं। वे अंग्रेजों की रानी की पालकी का आदर-सम्मान कर रहे हैं। देश कैसे सही दिशा को प्राप्त होगा? इससे तत्कालीन समय की चिंता मिलती है। 'कानूनों के पोथे हैं, उन पर गर्द-गवार' कहने की क्षमता रखना कवि के लिए साधारण-सी बात हो गई थी। गोर्की के प्रति वह अपने उद्गार व्यक्त करता है क्योंकि उसके द्वारा नवीन संवेदनाओं से जुड़ने की स्थिति बनती है। बोफोर्स की दलाली, बजट को हजम कर जाने की स्थिति उनकी कविता का यथार्थ है। 'बाद 67 पटना' शीर्षक कविता देखिए-

'एस.डी.ओ., कलक्टर, कमिश्नर,
सब के सब थे मशगूल,
मिनिस्टर पहन नहीं रहे थे माला,
ले नहीं रहे थे फूल
वहां के छोंकरो की जमात!
देखकर तुम्हारा नौका-विहार
कैमरा था गले में, ट्रांजिस्टर बांह में
मुखर रही थी मुद्राएं, मुस्कानों की छांह में
लगता था कहां
कि सकर-फंकट है यहां!'

कवि के व्यक्तिगत जीवन का यथार्थ

कवि के जीवन के साथ-साथ कविता सांस लेती रहती है। वह कविता के सच से जुड़ा है ... 'रहा हूं लिखता जाता हूं' यह कहता है। 'जी हां, लिख रहा हूं.../ दरअसल बात यह है कि इन दिनों अपनी लिखावट/ आज भी मैं कहां पढ़ पाता हूं।' स्वयं अपने आप से भी ... जिन्दगी की मांग करता है। उसके सवाल स्वयं अपने से भी हैं।

फूंक मारकर कागज पर मैं कैसे पेड़ चिढ़ाऊं।

चिंतक चतुर चचा लोगों को आजा निकट चिनाऊं।

तुम्हीं बताओ मीत की मैं कैसे अमरित बरसाऊं।

वह अपनी सकारात्मक व्यावहारिकता के पीछे शासन के बाधक होने की स्थिति को रखता है। उसकी राह भी आसान नहीं है। उन्होंने कहीं सपाट बयानी, कहीं नाटकीय तरीके से, कहीं व्यंग्य-बोध लाते हुए अपनी कविताएं प्रस्तुत की हैं–

बाप रे, कितना मुश्किल है।

आप तो 'फोर फिगर' मासिक - वेतन वाले उच्च-अधिकारी ठहरे,

मन ही मन हंसोगे ही, कि भला यह भी कोई

काम हुआ कि अनाप -

शनाप सवालों की

महीन लफ्फाजी ही

करता चले कोई -

यह भी कोई काम हुआ भला।

यह भी सच है कि कवि की सपाट बयानी ही कवि को ऐसी जगह पर ला खड़ा करती है जहां वे जन-जन के बीच के कवि मालूम होते हैं। जहां बंदिशें उन्हें स्वीकार नहीं हैं और अभिव्यक्ति का अधूरापन उन्हें रूचता नहीं है। अस्तु कवि का यथार्थ-बोध अपनी बात के साथ सबकी बात कहता है।

नागार्जुन के काव्य में व्यंग्य भावना

नागार्जुन के काव्य में व्यंग्य भावना को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

नेताओं पर व्यंग्य

नागार्जुन अपने समय में कितने लोकप्रिय रहे अथवा आलोचना के शिकार हुए, यह पहलू अलग विषय की मांग करता है मगर नेताओं के चित्रण में उन्हें खासा चाव आता था। जिन नेताओं के नेतृत्व में विश्वास रखते हुए उस समय की जनता आस लगाए देखा करती थी उन्हें नेताओं का बदलता चेहरा दिखाने में नागार्जुन ने जरा-भी कोताही नहीं की है। आजादी से पूर्व एवं बाद का माहौल उनके सामने रहा। वे स्वयं आजादी के पक्षधर रहे। ऐसी स्थिति में कई नेताओं के बदलते चेहरों से उन्हें भी कष्ट हुआ। कुछ को उन्होंने सिर्फ 'नेता' कहकर काव्य में संबोधित किया है, कुछ को 'गांधीवादी नेता' कहा है और कुछ के नाम लेने तक वे पीछे नहीं हटे हैं। उनका काव्य भ्रष्ट राजनेताओं का काला-चिट्ठा है जिसे हर कोण से देखने के बाद निश्चित धारणाओं तक पहुंचने का प्रयास बाबा नागार्जुन ने किया है। 'गांधी टोपी' की चर्चा भी कई-कई बार कविताओं में मिलती है। 'नया तरीका, 'तीनों बंदर बापू के', 'रामराज्य' आदि कविताएं कवि की प्रसिद्ध एवं राजनीतिपरक कविताएं हैं। 'रामराज' कविता की वास्तविकता का स्वर इस प्रकार व्यक्त है–

वतन नहीं है खतरे में, खतरे में हैं नेतागण
रंग धुल रहा स्यारों का, अब कौन करेगा पालागन
सच कहने वालों को भैय्या, पुलिस पकड़ ले जाती है-
चापलूस ही करते हैं इन मिनिस्टरों का अभिनंदन!

गांधी जिन आदर्शों को लेकर लड़े उनके बाद वे आदर्श हवा हो गए। दिखावे की राजनीति, खादी वस्त्र, गांधी टोपी के नाम पर हो गई और जिसे भुनाने में आगे की पंक्ति वाले कतिपय नेताओं ने भी कोई कसर नहीं छोड़ रखी। कवि 'तीनों बंदर बापू के' शीर्षक कविता में व्यंग्य के सिरों को खोलने की कोशिश करता है तब जाकर इस प्रकार की कविताएं जन्म लेती हैं – 'गांधी छाप झूल डाले हैं तीनों बंदर बापू के। असली है सर्कस वाले हैं तीनों बंदर बापू के।' वास्तव में बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो व बुरा मत कहो की नीतियों को सफेद खादी में ढंककर उसके विपरीत आदर्शों की ओर जाने का प्रयास नेता कर रहे हैं। बात को सीधा न कहकर नागार्जुन ने अपरोक्ष रूप से पाठक की संवेदना को जगाने का भरसक प्रयत्न किया है, जो कवि की मूल संवेदना हो सकती है।

तत्कालीन कार्य प्रणाली पर व्यंग्य

मुख्यतया शासन द्वारा नियोजित योजनाओं पर कवि की नजर है। वह देखता है कि पंचवर्षीय योजनाएं भी ठंडे बस्ते में पड़ी हैं। देश प्रगति चाहता है लेकिन नेताओं की अकर्मण्यता, आलस्य व महज अपना-अपनों का पेट भरने की स्थिति ने देश को हाशिए पर लाकर खड़ा कर दिया है। जनता को एकजुट होना होगा तभी शासन की कल्याण नीतियां कार्य करेंगी। किसानों के पास बीज नहीं है, नेता विदेशी मेहमानों-मेमों के स्वागत में स्वयं को धन्य भाग्य समझ रहे हैं। आजादी मिल गई है, शक्ति व सत्तासीन शासक इसका गलत उपयोग करने में लगे हैं। ऐसे में कवि स्वयं की जिम्मेदारी को महसूस करता है, 'कलम से काम लो गदा का/ तमंचा का, ढीला न पड़े डोर प्रत्यंचा का/ जहरीले सांपों पर दया नहीं करना।

बाबा नागार्जुन अपने व्यंग्य को बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत करते हैं। उनके व्यंग्य का क्षेत्र विस्तृत है। सेठ, साहूकार, सामंती-संस्कारी प्रत्येक को वह उसकी वास्तविकताओं के साथ सामने रखते हैं। उनका व्यंग्य चोट करता है जैसे- 'कच्ची खोटी स्कीम देखो/चोर बाजारी मीम देखो/ पापी पीपल की छाती पर/उग आया है नीम देखो।'

नागार्जुन जनता को व्यंग्य-बोध के बहाने आगाह भी करते हैं। उसके गलत कदमों को पीछे हटाने का इशारा भी वे इसी व्यंग्य के सहारे करते हैं। वे फक्कड़ अंदाज से व्यंग्य करते हैं। बुद्धिजीवियों, तत्कालीन नेताओं का वे अधिक से अधिक परिचय देते हैं। उनका सर्वहारा समाज भी उनसे आस लगाए बैठा है। जिसे उनके पीछे चलने में कोई परहेज नहीं है।

व्यंग्य में अंतर्वेदना

कवि के चित्र-बिंब उसके पाठक को कभी तो जगा देते हैं और कभी इसी जागरण में दर्द का एहसास भी करा देते हैं। कवि की चिंता बनी है कि जगत में सभी जगह भीड़-भाड़ से पटी है, केवल आदमी का पेट खाली है, उसकी थाली खाली है। ऐसे व्यंग्य हास्य को

दरकिनार रखकर अंतर्वेदना की उपस्थिति देते हैं। कवि का व्यंग्य सर्वहारा के बीच से ही आ हुए व्यक्ति का व्यंग्य है। इस कारण परिस्थितिजन्य गंभीरता भी उसमें मिलती है। निम्न कवित में आए व्यंग्यबोध को देखकर सहज ही यह पता चलता है कि कभी-कभी सीधे ढंग से कही गयी बात भी अपने संदर्भों से जुड़कर अधिक टेढ़ी हो जाती है– 'बेच बेचकर गांधी जी का नाम बटोरो वोट, बैंक बैलेंस बढ़ाओ/राजघाट पर बापू की वेदी के/आगे अश्रु बहाओ।'

वास्तव में जिसके प्रति बात रखी गई है वह व्यंग्य की तीक्ष्णता का आभास सहज ही कर सकता है। नागार्जुन का काव्य पाठक के बीच काफी लोकप्रिय रहा है। सही व गलत के बीच में खड़े व्यंग्यबोध के ऐसे चित्र कवि के कथन की शक्ति को सफल बनाने की इच्छा-शक्ति रखते हैं।

कई स्थानों पर नागार्जुन ने स्वयं को एक छोटा-सा अदना आदमी बताने की भी बात रखी है। यह उनकी विनम्रता है, लेकिन छोटा आदमी भी 'तुमने कहा था' कहकर यदि किसी सफेदपोश पर उंगली उठा सकता है तो इस स्थिति में अगले व्यक्ति की कमी को सामने लाना भी कवि का साहसपूर्ण अभियान ही हो सकता है।

समकालीन यथार्थ पर व्यंग्य

यथार्थ कि स्थितियों में सामाजिक व्यंग्य आते हैं। इसमें घरवाले, पड़ोसी, देशवासी आते हैं। नागार्जुन गतिशील बिंबों की प्रस्तुति करते हैं। उनके यहां का जड़-चेतन व्यवहार हरकत करता हुआ मिलता है। हिंदी काव्य में छायावाद में निराला के काव्य में व्यंग्य की स्थिति बनती है। उसके बाद नागार्जुन के काव्य में व्यंग्य-बोध मिलता है। दोनों ही फक्कड़ कवि हैं और दोनों का ही मिजाज व्यंग्य लाने में एक-सा है। वर्गहीन समाज की कल्पना में भावना तीव्रगामी होकर व्यंग्य का निर्माण कर डालती है जिसमें आगे वाले व्यक्ति के कद या ओहदे से कवि को कोई सरोकार नहीं रहता है। कवि अपने व्यंग्य-व्यवहार में विश्वासपूर्ण ढंग से चीजों को सामने लाता है। विषमतापूर्ण अथवा विरोधाभाषी स्थितियां व्यंग्य सृजन में काम आती हैं। नागार्जुन ने अपनी विभिन्न कविताओं में राजनीति को निशाना बनाया है। गांधी टोपी के विरूपित रूप को देखकर वह बेचैन हो उठता है और दिखावे के आवरण को उखाड़ना चाहता है। कुछ इस तरह–

गांधी टोपी की किश्ती में कलयुग हुआ सवार
अंदर रंगे पड़े हैं गांधी, तिलक, जवाहर लाल
चिकना तन, चिकना पहनावा, चिकने-चिकने गाल,
चिकनी किस्मत, चिकना पेशा, मार रहा है माल।
नया तरीका अपनाना है, राधे ने इस साल।

स्वयं कवि का अपने प्रति व्यंग्य

नागार्जुन की व्यंग्य-दृष्टि स्वयं कवि की ओर भी देखती है। फलतः कवि ने अपने कृतित्व पर, अपने व्यक्तित्व पर भी व्यंग्य भरे आक्षेप व्यक्त किए हैं। उन्होंने स्वयं के लिए ढोंगी, धोखेबाज, आत्मवंचक, झूठा व बगुला भगत जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। यह उनकी स्पष्टवादिता है। उन्होंने अपने भीतर के कवि को अहम के धरातल पर रखकर परिखा

करवाने की पेशकश कभी नहीं की। उन्होंने स्वयं को समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा माना है। वह हिस्सा जो किसी आदर्श का प्रतीक नहीं, बल्कि एक अभावग्रस्त कृषक परिवार का व्यक्ति है। जो सर्वहारा के साथ मिलकर अपने अनुभवों को बांटता है और जितना उसे सही-गलत लगता है वह उस समकालीन बोध को अपने समाज को सौंपता है। 'आत्मा की बासुरी' शीर्षक कविता में कवि ने स्वयं के लिए कहा है-

हम तो भई निहायत मामूली किस्म के/अदना-से आदमी ठहरे/पड़ती है उलझन/सुलझा भी लेते हैं/कैसी भी गांठ हो, खुल ही जाती है/मोटी अकल है/अटपटे बोल हैं/शऊर है न कुछ भी।

नागार्जुन प्रत्येक स्थिति का सामना करने के लिए तैयार रहते थे। वे 'पुरानी जूतियों का कोरस' काव्य संग्रह में अपने समय के महामहिमों की बात उठाते हैं। 'तुमने कहा था' काव्य संग्रह में नेताओं द्वारा कही गई महत्वपूर्ण बातों को रखते हैं। इससे पहले कि कोई उन पर आपत्ति दर्ज कराए वह पहले ही अपना पक्ष कुछ इस प्रकार से रख देते हैं, 'अपन तो भई, पोथर हैं... निर्लज्ज, बेहया, कठजीव... मरेंगे नहीं जल्दी...।' इससे आगे कवि के लिए विपक्षी को कोई आलोचना नहीं रह जाती और उनका व्यंग्य-बोध गहरे विषयों को काव्य में उतारता चला जाता है।

9.3 प्रगतिवादी काव्य चेतना और नागार्जुन

सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति

नागार्जुन दबे-कुचले श्रमिक, मजदूर, किसान एवं शोषित वर्ग का समर्थन करते हैं। वे उनके जीवन की समस्याओं को उभारकर सामने लाते हैं। इस रूप में वे जनकवि माने जाते हैं। नागार्जुन स्वयं भी कृषक परिवार से जुड़े हैं, ग्रामीण किसान-मजदूर की जिंदगी समझते हैं। वे जानते हैं कि इस वर्ग का कठोर श्रम, समाज की ताकतों के कारण मूल्यहीन चला जा रहा है। उसके बल पर पूंजीपति पेट भर रहा है व उसकी भूख की किसी को कोई चिंता नहीं है। कवि ऐसे वंचित-शोषित वर्ग के प्रति वैचारिक सद्भाव ही नहीं रखता बल्कि इस वर्ग के बुनियादी सरोकारों को लेकर सत्तासीन टोपीधारियों से टकराता भी है। दरअसल उसके समय से पहले भी काव्य में पूंजीवादी साम्राज्यवाद से टकराहट की ध्वनियां आने लगी थीं मगर नागार्जुन ने तो अपने समग्र काव्य का केंद्रीय भाव इस टकराहट के आगे रख दिया। उस समय अंग्रेजों ने गांव के किसानों को ऋणग्रस्त बना दिया था। किसानों व जमींदारों के मध्य शोषित व शोषण के संबंध बन गए थे। अर्थव्यवस्था का असंतुलन हो गया था जिससे सर्वहारा की स्थिति प्रभावित हुई। यह तर्क अपने साथ-साथ कई स्थितियों को भी लाता है। नागार्जुन की कविता उन सभी स्थितियों का बखान करती है। कवि को उन सबसे शिकायत व कड़ा आक्रोश है जो गलत तरीकों को अपनाकर धन्नासेठ बने हैं - "ताक लगाए। कछुओं-सा कर चरण समेटे / देसी धन्ना सेठ।"

वैचारिक प्रतिबद्धता

कवि नागार्जुन अपनी कविता के जितने हिस्सों को लेकर बाह्य अभिव्यक्ति देते हैं उनसे अधिक गहरापन उनके भीतर विद्यमान रहता है। भीतरी मजबूती ही उनके बाहरी बयान को

तीखा करती है। अपने समाज की सामाजिक व राजनैतिक प्रतिक्रिया के प्रति उनकी पैनी नजर है। नागार्जुन की काव्य रचनाएं सन् 1936 के आसपास आई और सन् 1936 के ही आसपास हिंदी कविता भी प्रगतिवादी चेतना को समझने की स्थिति में आ रही थी। नागार्जुन किसान की मुक्ति के पक्षधर थे। विदेशी शासकों के साथ मिलकर देश की सामाजिकता एवं अर्थव्यवस्था को कमजोर करने वाली भारतीय नेताओं की नीति एवं कुचक्रों को तोड़ने हेतु वे सदैव तत्पर रहते थे। अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के पक्ष को रखने में उन्होंने पारदर्शिता रखी है और खुलकर ऐलान किया है कि वह प्रतिबद्ध संबद्ध कवि हैं। वे विचारों से परिपक्व कवि हैं उनका काव्यात्मक प्रवाह किसी दबाव को नहीं झेल सकता है। अपने समाज को वे शासन की हर उस नीति का आईना दिखाना चाहते हैं जहां सर्वहारा जन के संघर्ष को हथियार बनाकर शक्ति संपन्न बना समाज मजे से रह रहा है। इस कारण उनकी कविता छोटी से छोटी स्थिति को भी सामने लाती है। जो घटित हो रहा है उसके पीछे की स्थितियों को जिम्मेदारी व ईमानदारी से प्रस्तुत करना नागार्जुन की प्रतिबद्धता रही है।

यथार्थवादी दृष्टिकोण

यथार्थवादी दृष्टिकोण ही प्रगतिवादी कदम है। सन् 1936 में प्रेमचंद की अध्यक्षता में 'प्रगतिशील लेखक संघ' का अधिवेशन हुआ, जिसमें प्रगतिशील विचार व्यक्त हुए। नागार्जुन पर भी इसका प्रभाव पड़ा। यह संघ उनकी चेतना से जुड़ी विचारधारा वाला था। सामाजिक चेतना को जगाने का कार्य लेखकजन कर रहे थे मगर जिस जनता को जगाना था उसके मनोबल को सरकार की नीतियां गिराने में लगी थी। नागार्जुन जैसे कवियों ने उनके प्रति अपना जज्बा रखकर उनकी बात उन्हीं के ढंग से रखी। ऐसी स्थिति में यथार्थ सामने आने लगा। एक ओर पूंजीपतियों, शासकों, नेताओं का यथार्थ और दूसरी तरफ शोषित वर्ग का यथार्थ। अर्थव्यवस्था की एक बड़ी विभाजक रेखा दोनों के बीच दिखाई देती है जहां मानवता भी शर्मसार है। नागार्जुन यथार्थ स्थितियों में व्यंग्यात्मकता लेकर आते हैं और कई सवाल दोनों वर्गों से करते हैं। उनके भीतर का कवि गरीबों, दीनहीनों के बीच बैठकर भी यह महसूस करता है कि गरीबी ने इनकी हिम्मत को तोड़ रखा है और उच्च वर्ग के बीच घुसकर भी वह साफ साफ देखते हैं कि भोली-भाली जनता के ऊपर यह वर्ग कितना बड़ा नाटक रच रहा है जहां सिर्फ झूठ व धोखा है। नागार्जुन सरीखा कवि उन मुद्दों को उठाता है तो उसके ही अपने लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं। उस समय विचारों से साम्यवादी तो बहुत सारे लोग बने हैं परंतु व्यावहारिकता लाना किसी अभियान को चलाने से कम नहीं है। इसमें साहस एवं स्वार्थहीनता की आवश्यकता पड़ती है जो नागार्जुन के व्यक्तित्व में कूट-कूट कर भरी है। उन्हें अपने विरोधियों का भी विरोध सुनना पड़ता है। निम्न उदाहरण से इसकी अभिपुष्टि होती है-

फटे वस्त्र हैं, घर से बाहर निकलेगी कैसे लजवंती
शर्म न आती, मना रहे वे महंगाई की रजत जयंती।

मार्क्सवादी विचारधारा

मार्क्सवाद रूसी क्रांति लाने वाली विचारधारा है, जिसकी आवश्यकता भारतीय समाज को भी थी। इस विचारधारा को जानने के लिए भी अंग्रेजी सरकार ने प्रतिबंध लगा रखे थे। भारतीय जागरूक समाज ने अपने प्रयासों द्वारा संदर्भित जानकारियों को लेना आवश्यक समझा क्योंकि यहां का समाज भी वर्गभेद की विडंबनाओं को झेल रहा था। वर्ग संघर्ष ने मार्क्सवाद के प्रभाव

को बढ़ा दिया था। नागार्जुन के भीतर की संवेदनशीलता एवं विवेकशीलता ने उन्हें मार्क्सवादी विचारधारा से जोड़कर रखा। श्रमिक-शोषित वर्ग को देश की मुख्यधारा से जोड़ने की मंशा व मानवतावादी दृष्टिकोण को जन्म दिया। कवि की कविता मार्क्स व लेनिन के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करती है–

'महामानव लेनिन !
तुम्हीं ने यह दिन
हमें दिखलाया वह मंत्र सिखलाया
महामानव लेनिन !
क्रांति के अवतार' !!

साम्यवादी व समाजवादी दृष्टि

सन् 1848 ई. में कार्ल मार्क्स ने साम्यवादी घोषणा-पत्र निकाला। उसमें आर्थिक तर्क व व्याख्याएं प्रस्तुत की गई। इस प्रकार साम्यवाद का असर दूसरे देशों में भी दिखाई देने लगा। मार्क्सवाद पूंजी के संतुलित सामाजिक रूप की व्याख्या करता है। वह पूंजी के शक्ति रूप की व्याख्या करता है। किसी भी समाज की बेहतर स्थिति के लिए वहां की अर्थव्यवस्था जिम्मेदार होती है। समाज में सभी वर्ग एवं श्रम से जुड़े लोग रहते हैं। समाज के सभी अंगों का मजबूत बने रहना आवश्यक है। नागार्जुन साम्यवाद एवं समाजवाद की बौद्धिक अवधारणा से अनुप्राणित कवि हैं। शोषणमुक्त समाज की अवधारणा इसके पीछे निहित है। समाजवाद पूंजी की खतरनाक होड़ एवं पैतृक अधिकारों का विरोधी है। ये समाजवादी स्वर नागार्जुन के यहां भरसक प्राप्त होते हैं। जनता को सुखमय भविष्य के साथ देखना नागार्जुन की कविता का उद्देश्य है। वह वंशगत राजनीति का भी विरोधी है। इस प्रकार नागार्जुन समाजवाद की हर उस कविता का स्वागत करते हैं जो मानव एवं उसके श्रम का सम्मान करती हो। इस रूप में 'महामानव लेनिन', 'अन्नपचीसी' सरीखी कविताएं महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। नागार्जुन का ऐसे महानुभावों व मानवों के प्रति प्रतिबद्धता का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

9.4 जन कवि के रूप में नागार्जुन

"यही मृत्तिका जनकवि में प्राण भरेगी,
देखो जनकवि भाग न जाओ,
तुम्हें कसम है इस माटी की।"

जनजीवन के संघर्ष को वाणी देने वाले कवि हैं–नागार्जुन। इनमें व्यंग्य, विद्रूप, आक्रोश, घृणा, मोह-भंग के साथ-साथ जुझारूपन, आशावाद, दीन-दलितजनों के प्रति अशेष सहानुभूति से उपजी कर्मठता है और है प्रकृति, पशु, पक्षी तथा मानव सौंदर्य के प्रति कवि सुलभ आकर्षण। धरती की सौंधी गंध से कवि का मन बौराता है, और उसमें सीधे-सच्चे दलितजनों के प्रति संपन्न वर्ग की क्रूरता के प्रति प्रचंड रोष भी है। कबीर की तरह ही नागार्जुन ने शोषण और अत्याचार पर जबरदस्त चोट की है फिर वह चाहे किसी भी वर्ग का क्यों न हो। जैसे कबीर अपने काव्य में कहते हैं–

'अरे इन दोउन राह न दीठा'.

उसी तरह 'हजार-हजार बाहों वाली' में नागार्जुन लिखते हैं–

'तुमसे क्या झगड़ा है
हमने तो रगड़ा है
इनको भी, उनको भी, उनको भी।'

नागार्जुन ने बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय जनता के जीवन-संघर्ष तथा उसके विपरीत खड़ी सत्ता-व्यवस्था के जनविरोधी चरित्र को उसके संपूर्ण निर्मम रूप में अभिव्यक्ति दी है। यदि हम देश की सामान्य जनता के जनजीवन के वास्तविक तथा यथार्थवादी चित्रण को श्रेष्ठ प्रगतिशील जनवादी साहित्य की पहली कसौटी मानें तो जनभाषा को उसकी दूसरी कसौटी मानना अनुचित न होगा। जनभाषा व यथार्थवादी जीवन दृष्टि दोनों ही कसौटियों पर नागार्जुन की कविता खरी उतरती है।

आजादी के उपरांत देश की जनता जहां एक ओर अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रही थी वहीं दूसरी ओर देश के नेता विदेशी नेताओं के स्वागत पर फिजूलखर्ची कर रहे थे। गरीबों को खाने के लिए भोजन तक उपलब्ध नहीं था। 'आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी' तथा 'टके की मुस्कान करोड़ों का खर्चा' में नागार्जुन ने आमजन की इन स्थितियों को प्रकट किया है। एलिजाबेथ के भारत आगमन पर लिखी गई कविता में फिजूलखर्ची का यथार्थ चित्र प्रस्तुत होता है–

"बीत गई सर्दी, बीत गया माघ
रानी के खसम ने मारा है बाघ
खुद तो बेचारी को दिखी नहीं एक भी बिल्ली
सवाई माधोपुर से सीधे आ गई नई दिल्ली
टके की मुस्कान करोड़ों का खर्चा
इस ताम-झाम की कहां नहीं है चर्चा।"

नागार्जुन ने शोषण व अत्याचार को न केवल निकटता से देखा था, बल्कि स्वयं उस अभिशाप को झेला भी था। 'प्यासी पथराई आंखें' में उनकी एक प्रसिद्ध कविता है 'काली माई'। समाज में जनता चारों ओर से अंधविश्वास से घिरी थी। इस अंधविश्वास की ओट में वह सही व गलत का अनुमान भी नहीं लगा पाती थी। 'काली माई' कविता के माध्यम से कवि ने अंध विश्वास पर प्रहार किया है–

"कितना खून पिया है, जाती नहीं खुमारी
सुर्ख और लम्बी है, मइया जीभ तुम्हारी।"

आर्थिक विपन्नता केवल अभिशाप नहीं होती वह जनसामान्य से तादात्म्य स्थापित करने का साधन भी बनती है। इसीलिए नागार्जुन दीनहीन शोषितों के विजयपर्व में शरीक हो जाते हैं–

"निकली थी वह विजयी मेहतरों की बारात
मस्त थे वे मांग मनवा लेने की खुशी में
चटपट कमरे से मैं भी निकला
किलबिल करते लाख घौरासी
जीवों के सम्भावित महामोक्ष की खुशी में
मेरे भी मुंह से निकल ही तो पड़ा 'जय हो बम्बभोला'।"

देती हैं। इन कविताओं में क्रांति के स्वर हैं, देश के प्रति प्रेम-भावना व्यक्त है। किसान आंदोलन एवं क्रांतिकारी स्वप्न अपने जीवन में उन्होंने देखा और जनता की आवाज को महत्व दिया– 'नभ से संघबद्ध जनता का गूंज गया हुंकार'। नागार्जुन जनता पर शासन करने वाले हर एक हुकूमत पर अपनी पैनी नजर रखते हैं। न्यायसंगत तरीकों के प्रति उनकी विनम्रता झलकती है किंतु इमरजेंसी लाने वाली इंदिरा गांधी के प्रति उन्होंने खुला प्रतिरोध व्यक्त किया है। यह उनकी राष्ट्रवादी प्रवृत्ति का ही एक पहलू है।

राजनीति बोध

राष्ट्रवादी होना और राजनीति-बोध रखना ये दो स्थितियां एक व्यक्ति को पूरक व्यक्तित्व प्रदान करती हैं जो राष्ट्रहित की बात करता हो। नागार्जुन में ये दोनों ही प्रवृत्तियां देखने को मिलती हैं। स्वभाव से राष्ट्रवादी व बाह्य स्वीकारों में राजनीति के पैतरों से वह स्वयं को अपडेट करते चले हैं। वह स्वयं को भी राजनीति का हिस्सा मानते हैं और हर उस अभियान में हिस्सा लेते रहे हैं जिसकी राह देश कल्याण की ओर जाती है। अपने समय की राजनीति की प्रत्येक घटना उनके काव्य में विशिष्ट संवेदना के साथ प्रस्तुत है। संसदीय कार्यवाही पर भी उनकी नजर है। दमनकारी नीतियों का वे विरोध करते हैं। वे जनता का साथ देते हैं। पूंजीवादी संस्कृति को परोसने वाली कांग्रेस सरकार की उन्होंने निंदा की। गांवों, किसानों, मजदूरों, श्रमिकों के हित के लिए सच्चाई से लड़ने का प्रयास उनकी कविताओं में किया गया है। कम्युनिस्ट लीडरों से उन्होंने मेल-जोल बढ़ाया और उनके आंदोलनों के साथ जुड़कर संघर्षमय स्थितियों को कविता के माध्यम से भी व्यक्त किया–

खिचड़ी विप्लव देखा हमने,
भोगा हमने क्रांति विलास।

नागार्जुन का व्यक्तित्व कवि के साथ-साथ आलोचक का भी था, जहां वे जनता के साथ खड़े होकर सरकार की आलोचना करते हुए भी मिलते हैं। उनकी कविताएं प्रत्यक्ष बोध की कविताएं व भुक्तभोगी की अनुभूतियां हैं। दंगे, आंदोलन, जन-आक्रोश, आपातकाल, लाठी-गोली के प्रहार, समाजवाद के नारे, चुनाव की घटनाएं, गांधीवादी नीतियां, संसदीय प्रणालियां, तेलंगाना का किसान सरीखा विषय एक समाधान की मांग करता हुआ उनके काव्य में उपस्थित होता है। उनकी जिम्मेदार कविता का उदाहरण प्रस्तुत है–

तमिलनाडु, बंगाल, नागाभूमि, मिजोरम, केरल...
गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, कर्नाटक, आंध्र....
इनको तुम कब तक नई दिल्ली की जमींदारी बनाकर रखोगे।
क्योंकि नहीं इन सभी प्रदेशों का 'संघशासन' फेडरल राज्य हो, संयुक्त राज्य हो?...
प्रदेशों के विकास का दायित्व संभाल नहीं पाती नई दिल्ली
उसे न तमिलों से मतलब है, न बंगालियों से
उसे तो मोटी तनख़्वाह से मतलब है
उसका तो खानदान ही 'हुकूमत की नर्सरी' है.....

इस प्रकार की राजनीतिक प्रतिक्रियाएं कवि के व्यंजनाबोध के साथ भी निकल आती हैं। कवि सरल सीधी बात कहकर तीखे व्यंग्य को जन्म देता है और बात वजनदार बन जाती है।

उन्हें इस बात की भी चिंता है कि देश जनता से जागरूकता एवं विवेक सम्मत प्रतिक्रिया मांगने की कगार पर खड़ा है लेकिन जनता जागरूक नहीं है। वह तो राष्ट्रीयता का मतलब भी ठीक से नहीं जानती। ऐसी स्थिति में देश को संकट से उबारने के आयामों को क्या पहुंच सकती है – 'दुनिया हमसे पूछती है: बहुसंख्यक भारतीयों को क्यों नहीं मालूम है, आजादी और राष्ट्रीयता का मतलब?'

नाटकीयता

कवि की कथन-भंगिमा उसकी कविताओं को उस नाटकीय स्तर तक पहुंचा देती है जहां कवि की भावना के द्वंद्वमय परिवेश को स्वर मिलता है। इसे बातचीत के ढंग में प्रस्तुत करने पर नाटकीयता मिलती है। जैसे-

'कौन हैं आप?।

शिव शिव! हरे हरे!!।

और कौन होगा

अरे!। ढलते दिनमान का छायावादी कवि है।

कवि भावनाओं को इत्मीनान देने वाला व्यक्ति है। उसके भीतरी फैलाव की स्थितियां इस नाटकीयता को जन्म देती हैं। वह खुद को भी समझने की प्रक्रिया में रहता है। देखना भाई रत्नेश्वर, जल्दी न करना/ लौटेंगे इतमीनान से/पछाड़ दिया है मेरे आस्तिक ने मेरे नास्तिक को। 'पछाड़ दिया मेरे आस्तिक ने' कविता कवि के द्वंद्व को आकार देती है। 'छोटी-मछली, बड़ी-मछली' शीर्षक कविता भी गीता के उपदेश को संवाद-शैली में प्रस्तुत करती है–

गीता ने क्या कहा ? भूल गई
आत्मा का विनाश नहीं होता ...
आत्मा नित्य है, अ-वि-नश्वर
नैनं छिंदति शस्त्राणि
नैनं दहति पावकः ...।

मानव-जाति को संबोधित करती कविताएं भी नाटकीयता की परिधि में आती हैं। यहां कवि सीधे 'अरे!' 'तुम' कह कर बात करता है। जैसे 'रहोगे क्या तुम सदा गुलाम'।

नागार्जुन अपने नाटकीय संवादों में सवाल छोड़कर रहते हैं। कभी-कभी प्रश्न भी इन्हीं संवादों में होता है और उत्तर भी दूसरे सिरे से चिपका रहता है। वह जागने वाला कवि तो है मगर जगाने वाला भी है। कविताओं में हरकत एवं गतिशीलता बनी रहती है जो संवाद के लिए आवश्यक है। यथार्थबोध की स्थितियों में यह नाटकीयता मार्मिक बनी हुई है। कविता में एक स्थान पर छोटा-सा वाक्य आया है, 'तुम भूख से नहीं मरे?' यह सवाल बड़े अर्थ की मांग कर रहा है, गहरा यथार्थ-बोध देता है। इसी प्रकार कवि की अनुभूति का रूप जितना भी काव्य में अभिव्यक्त हुआ है वह सोद्देश्य रचा गया है। बयानबाजी, नारेबाजी की कविता भी इस रूप को कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। कवि की 'हरिजनगाथा' शीर्षक कविता, 'खुरदुरे पैर,' 'कुसुम कोमल मन में', 'प्रेत का बयान', 'लाइए मैं चरण चूमूं', कविताएं नाटकीय अंदाज में

प्रस्तुत होती हैं। समाजचित्रण के दृश्य यहां हैं। कवि का जनता के प्रति संबोधन उद्बोधन इस वर्ग की कविताओं में अधिक दिखाई पड़ता है।

प्रकृति चित्रण

नागार्जुन के प्रकृति चित्र न तो कल्पना की उड़ान के प्रतिफल हैं न अपने समय की किसी राजनीतिक अथवा यथार्थवादी स्थिति का जायजा देती बोझिल अभिव्यंजना। नागार्जुन की प्रकृतिजन्य कविताएं अपने पाठक को एक ऐसे धरातल पर ले जाती हैं जहां इन सबसे परे प्रकृति का ताजगी भरा माहौल है। जहां धरती प्राकृतिक वैभव से संपन्न है व कवि को आकर्षित करती है। कवि मिथिलांचल से जुड़ा है अतएव इस इलाके का परिदृश्य कवि को आनंद विभोर की सीमा तक ले जाता है। कवि की कविताएं प्रकृति की देन की चर्चा करती हैं। गांव में अनाज-फल की व्यवस्था धरती मां की देन है। उपयोगिता, सौंदर्य व प्रेम के स्तर पर नागार्जुन धरती से लगाव रखते हैं।

अपने अंचल के अलावा देश के प्रत्येक कोने के प्राकृतिक सौंदर्य को उन्होंने अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है। चाहे वह दक्षिण भारत का समुद्री-क्षेत्र हो अथवा हिम प्रदेश, कवि का भाव-बोध विविधतापरक परक स्थितियों से प्रकृति-चित्रों को बचाए रखता है। कवि की एक प्रसिद्ध कविता की कतिपय पंक्तियां उद्धृत हैं-

अमल धवल गिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है
बादल को घिरते देखा है।

कवि का प्रकृति विस्तार छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत के समकक्ष कहा जा सकता है। वे भी अपने प्राकृतिक अंचल को बाह्य स्थितियों से अलग, सुरक्षित रख पाए हैं और विशुद्ध प्राकृतिक चित्रों को देने में सफल रहे हैं। नागार्जुन के काव्य में पाठक प्रकृति के उन मनोहारी चित्रों के दर्शन कर पाता है जो आत्मीयता जगाते हैं।

याद आते हैं स्वजन
याद आता है मुझको अपना वह तरउनी ग्राम
याद आती हैं लीचियां, वे आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचिर-भू भाग
याद आते धान
याद आते कमल, कुमुदिनी और तालमखान
धन्य वे जिनके मृदुलतम अंक
हुए थे मेरे लिए पर्यंक
धन्य वे जिनकी उपज के साग
अन्य-पानी और भाजी-साग

फूल-फल और कंद-मूल, अनेक विध-मधु-मास
नागार्जुन जिनका ऋण संध सकता न मैं दशमास।

उक्त काव्य पंक्तियों को देखकर उनकी काव्य विषयक अनुभूति तो प्राप्त होती ही है साथ ही इस संवेदना में अलग भी खड़े मिलते हैं क्योंकि वे प्रकृति के ऋणी जो हैं। एक सच्चे कवि की विनम्रता का प्रमाण इससे अधिक क्या होगा।

व्यंग्यबोध

व्यंग्यबोध लाने के लिए भी संवेदनाओं का संतुलित होना आवश्यक होता है। वाक्चातुर्य न भी हो तो सरल-ईमानदार व्यक्तित्व तो आवश्यक है ही। कवि नागार्जुन इन्हीं शर्तों को पूरा करते हैं। जहां पर गलत को भाव है, दोगली नीतियां हैं, आवरण परस्ती है वहां व्यंग्यबोध तीखे रूप में प्रकट हुआ है। कवि जनकवि है, समाज का पक्षधर है। उसे जनता से कोई शिकायत नहीं है वह तो व्यवस्था से टकराता है, उसे विरोधी करार देता है और ऐसे में वह व्यक्ति विशेष का नाम लेने में भी पीछे नहीं हटता है। यह उसकी ईमानदारी का सबसे बड़ा प्रमाण है कि वह अपने अनुभूत सत्य को किसी बाहरी दबाव से प्रभावित नहीं होने देता। उनकी राजनीति से जुड़े बिंब दर्शनीय हैं–

हमें अंगूठा दिखा रहे हैं तीनों बंदर बापू के
सौवीं बरसी मना रहे हैं तीनों बंदर बापू के
बापू को ही बना रहे हैं तीनों बंदर बापू के।

'तुमने कहा था' काव्य संग्रह की कविता भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, जहां तुकबंदी करते हुए धारा-प्रवाह रूप से कवि सामाजिक व्यंग्य प्रस्तुत करता है–

कुत्ते ने कुत्ते पाले, देखो भाई।
पैदल चलने वालों की तो शामत आई।

बहुत-सी मनः स्थितियां कवि के भीतर रही हैं तथा बाहर की जटिल परिस्थितियों ने उनके भीतर व्यंग्य का उत्तरदायित्व सौंपा है। कई बार हास्य-व्यंग्य भी प्रस्तुत हुआ है जहां हंसी में आनंद की स्थिति नहीं है, पीड़ा है। कई बार कलम द्वारा विषमताओं पर प्रहार करने की स्थिति है। वैयक्तिक व्यंग्य, आर्थिक व्यंग्य, राजनैतिक व्यंग्य उनके काव्य में हैं। एक कविता में सरलता के साथ उपजा व्यंग्यबोध देखिए–

मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार
लिखवा लेगा घर वालों से
वह तो था बीमार।

महत्व की दृष्टि से नागार्जुन के व्यंग्य अपना एक अलग स्थान रखते हैं। इनके व्यंग्य जिम्मेदारी का एहसास कराते हैं जिनमें अपने युग की गहरी समझ है। व्यंग्य हल्के न होकर तीव्र एवं मारक हैं जिसको रचने का साहस करना नागार्जुन सरीखे किरदार के ही वश की बात है। देश-विदेश, छोटा-बड़ा, राजा-रानी, शासक अथवा गांधी के चेले हों या फिर इंदिरा गांधी, पूंजीपति हो या सामंती: कवि को इन सबके व्यवहारों के लिए व्यंग्य का स्वर याद आ गया। इसमें उनका जनवादी कद ऊंचा हो गया। निष्कर्षतः यह कहना होगा कि नागार्जुन का व्यंग्य चित्रण चुनौतीपूर्ण है।

भाषाशैली

नागार्जुन के काव्य की भाषा सरल व सुबोध है। उन्होंने अपना काव्य जन साधारण के लिए लिखा है जिसमें मुहावरों की प्रस्तुति करना उनके जीवन-अनुभव को दर्शाता है। 'हमला करे मुंह की खाएंगे, अंगूठा दिखाना, सांप सूंघना, बाल न बांका करना, तीसों दिन दिवाली है, गद्‌गद् होना, ताक लगाना, खून पसीना एक करना, आदि मुहावरे उनकी कविता को अनुपम वातावरण प्रदान करते हैं, जहां भाषा लोकभाषा एवं जनभाषा से जुड़ जाती है। बोलचाल की भाषा से दूर वे नहीं जा सके हैं - आंखें मेरी भर-भर आती / रोता हूं लिखता जाता हूं / कवि को बेकाबू पाता हूं।

कवि की सामान्य बोलचाल की भाषा कहीं-कहीं पर तो कविता के कवितापन से बाहर सरकती-सी लगती है जैसे- 'गंगा की मछली... जमुना की मछली.../ सहेली थी दोनों, हिल-मिलकर रही थी/ कभी-कभी निकल जाती थी दूर।' यह कविता के अंश सौंदर्य प्रतियोगिता शीर्षक में प्राप्त होते हैं। इसमें शब्दों की सरलता आरंभ में है किंतु यथार्थबोध की स्थितियां हैं। कवि की भाषा का सरल अंदाज इससे समझा जा सकता है। नागार्जुन ने भाषा के जितने प्रयोग किए हैं वह अन्य किसी कवि ने नहीं किए। कवि साधारण लोगों की जरूरत देखकर कविता लिखता है। इसी कारण बातचीत के बीच में प्रश्नमयी शैली आई है। जैसे 'कहां गिरेंगे ऐटम या हाइड्रोजन बम?' एवं 'रहोगे क्या तुम सदा गुलाम?' ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिनमें कवि अपनी अनुभूतियां व्यक्त करता है। 'अरे', 'हे', 'ओ रे' ! कहकर भी आत्मीय वस्तुओं अथवा व्यक्तियों के प्रति कवि ने अभिव्यक्ति दी है। 'कुर्सीधर प्राचार्य', 'दंतुरित मुस्कान', 'तिलकित भाल' जैसे नए शब्द भी वहां सजते हैं। कविता लय को प्रस्तुत करती है और लय की संगीतात्मकता के स्वर कुछ इस प्रकार बजते हैं; 'धिन धिन या धम-धमक/मेघ बजे/दामिनी यह गई दमक/मेघ बजे/दादुर का कंठ खुला/मेघ बजे।'

नागार्जुन की कविताओं में पारंपरिक छंदों के प्रति मोह का अंश है लेकिन आधुनिकता व नवीनता लाने में यह मोह अपने स्थान से विचलित भी हुआ है। तुकबंदी का इनके यहां सफल प्रयोग हुआ है। पूरी की पूरी कविता भी कहीं-कहीं सर्वांत्य तुक से भरी हुई है।

भाषा में संस्कृत से जुड़े तत्सम शब्दों का आगमन हुआ है। जैसे; दाहक, अम्ल, विगलन, क्षार, शुष्क, श्याम, उर्वरक, खचित, मत्स्य, चपल, प्रसाद आदि। अंग्रेजी शब्दों का भी कवि ने प्रयोग किया है।

नागार्जुन के काव्य की यह अन्य विशेषता है कि वह एक ही वस्तु को समझाने के लिए न जाने कितनी बार एक ही शब्द को दोहराने के प्रयास करते हैं।

जैसे - *शाबास !! शाबास !! शाबास !!*

यह, क्या खूब पका यह कटहल
अह, कैसे मह-मह करता है यह कटहल
अह, कैसे गिर पड़ा खुद कहीं गाछ से
अह, किस तरह पड़ा है चारों खाने चित्त।

इसी तरह कवि की कई कविताओं में संवेदनाओं का दोहराव है। 'चंदू, मैंने सपना देखा' कविता कुछ इसी प्रकार की है। प्रत्येक पंक्ति वहां इसी वाक्य को दोहराती है।

कवि ने अपनी कविता में बिंबों को अनेक रूपों में व्यक्त किया है। उनके काव्य-बिंब आसानी से देखे जा सकते हैं, महसूस किए जा सकते हैं, सुने, सूंघे व स्पर्श भी किए जा सकते हैं। इस प्रकार चाक्षुष, श्रव्य, आस्वाद्य, घ्राण एवं स्पर्श बिंबों की लंबी परंपरा उनके यहां प्राप्त होती है। सरल अनुभूति से विषम अनुभूति की तरफ बढ़ने की स्थिति में प्रतीकों का आगमन हुआ है। कुछ प्रतीक कथन को वजन देते हैं तो कुछ प्रतीक व्यंग्यबोध की स्थिति में आए हैं। जाने-पहचाने शब्द प्रतीक का आवरण लेकर विशेष वातावरण की सृष्टि करते हैं। जैसे-गांधी जी के बंदर, कुत्ते, लोकसभा, यम की नानी, खादी की धोती, हिमालय, नव दुर्वासा, शंकर पितामह, भुक्खड़, पंख, हरियाली, द्विपद भेड़िये इत्यादि। उदाहरण देखिए -

मांग रही तरुणाई वो हथियार
द्विपद भेड़िये दहलाये देख जिसकी पैनी धार
मांग रही तरुणाई वो हथियार।

मूल्यांकन

नागार्जुन के भाषा-सौंदर्य के संदर्भ में जितना भी कहा जाए उतना कम ही होगा। वह कविता करने वाले कवि नहीं बल्कि कविता में जिंदगी जीने वाले कवि थे। कविता तो उनकी जबान पर रहती थी। विषय मौजूद होना जिसकी शर्त थी, जो वातावरण व अनुभव मिला उसे शब्दों में अंकित कर दिया। इस रूप में उनका काव्य अपने समय के यथार्थ को भी बराबर उठाता आया है। कहीं भाषा नाटकीय प्रभाव में रहती है जिससे हास्य व रुदन की ध्वनि तक सुनी जा सकती है। यह उनके भाषा-कौशल का ही असर है कि आज भी उनकी कविता पढ़ने वाला उसी चाव से उसे पढ़ सकता है व लेखक की उस विशिष्ट अनुभूति को ग्रहण कर सकता है। यही उनकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष का सार है।

9.6 पाठांश

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआं उठा आंगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आंखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पांखें कई दिनों के बाद।

प्रसंग-विद्रोही शब्द-शिल्पी नागार्जुन कृत 'अकाल और उसके बाद' शीर्षक कविता की प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने बंगाल के अकाल के बाद के दृश्यों को उभारा है।

व्याख्या-कवि कहता है कि अकाल के बाद ऐसी दरिद्रता आ गई जिससे घरों में कई दिनों तक चूल्हा तक नहीं जलाया जा सका। जो अनाज पहले चक्की में पीसा जाता था वह भी न था जिस कारण चक्की भी अपनी गतिशीलता छोड़कर एक जगह पर स्थिर-उदास अवस्था में

दिख रही थी। मानो चक्की भी अकाल की भयावहता को सोचने समझने की स्थिति में आ गई थी। वह भी संवेदनशील हो गई थी। घर के जानवर भी बाहर निकलने से कतराने लगे और जो घर की कानी कुतिया थी वह भी इनसानों के बीच रहने लगी थी। कई दिनों तक घर की छिपकलियां भी घर की दीवारों के पास ही चक्कर काटती रही थी। अनाज वाले चूहे भी कई दिनों तक अनाज के एक-एक दाने के लिए तरस गए थे। अनाज के चक्कर में उन्हें भी पसीना बहाना पड़ा था मगर फिर भी कुछ नहीं मिला था। अर्थात, दाना भर भी अनाज नहीं था।

कविता के अगले खंड में कवि समयांतराल के बाद की स्थिति स्पष्ट करते हुए कहता है कि काफी दिनों बाद घर में अनाज का दाना देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। घर में अनाज पकाने की तैयारी होने लगी और आंगन में धुआं उठता हुआ दिखाई दिया। खुशी से घर में परिवार के सदस्यों की आंखें चमक उठी क्योंकि कई दिनों बाद उन्हें अनाज का मुंह देखने को मिला था। पक्षी जगत भी अकाल के बाद अपनी स्वाभाविक उड़ान भरने लगे थे। कौआ जो मानव जाति के आस-पास ही रहता है, वह भी अपने पंख फैलाने का प्रयास करने लगा था।

विशेष

1. अकाल के मार्मिक व पीड़ा भरे चित्र का अंकन।
2. जीव-जंतुओं की प्रस्तुति से जीवंत परिवेश की सृष्टि।
3. स्थिर एवं गतिशील बिंबों का मिश्रण।
4. 'चूल्हा रोया', 'चक्की रही उदास' में मानवीकरण।
6. करुण रस की अभिव्यंजना।

गतिविधि

नागार्जुन एवं कबीर के व्यक्तित्व की समानताओं व भिन्नताओं पर एक लेख लिखिए।

क्या आप जानते हैं?

नागार्जुन ने मैथिली भाषा में 'यात्री' नाम से लेखन किया है।

9.7 सारांश

नागार्जुन को घुमक्कड़ एवं फक्कड़ दोनों ही रूपों में देखा गया है। इसी घुमक्कड़ी के कारण उनकी कई रचनाएं गुम हो गईं। उन्हें किसी तरह के स्वार्थ से कोई मतलब नहीं था। फलतः उन्होंने अपने काव्य में कठोर एवं तीखी अभिव्यक्तियां भी प्रस्तुत कीं। वे मूलतः किसान थे और यथासंभव पिता की पुरोहिताई में भी हाथ बटाते थे। उनके काव्य में नारी-मुक्ति के स्वर मुखर हुए हैं। नागार्जुन तुच्छ-अतितुच्छ विषय पर कविता करने के साथ अंतरराष्ट्रीय राजनीति पर भी बेबाक संवेदना व प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले व्यक्ति थे। इस रूप में भी

दिसंबर, सन् 1929 को लखनऊ (उत्तर प्रदेश) में जन्मे श्री रघुवीर सहाय लेखक, कवि, अनुवादक, विचारक और पत्रकार रहे हैं। उन्होंने राजनीतिक पत्रिका 'दिनमान' में भी प्रधान संपादक के रूप में सन् 1969 से 1982 तक कार्य किया। उन्हें सन् 1984 में साहित्य अकादमी ने उनके चतुर्थ काव्य-संग्रह 'लोग भूल गए हैं' के लिए पुरस्कृत किया था। उनके अन्य काव्य-संग्रह जो काफी सराहे गए, वे हैं 'सीढ़ियों पर धूप में' (पहला काव्य-संग्रह), 'आत्महत्या के विरुद्ध' (दूसरा काव्य-संग्रह), 'हंसो, हंसो, जल्दी हंसो' (तीसरा काव्य-संग्रह) और 'एक समय था' (अंतिम काव्य-संग्रह)। इसके अतिरिक्त 'कुछ पते, कुछ चिट्ठियां' उनका पांचवा कविता-संग्रह है। उनके द्वारा रचित 'कविता कोश' तथा अन्य बहुतेरी रचनाएं, लेख और विचार आदि समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए हैं। पत्रकार के रूप में भी वे खासे प्रसिद्ध रहे हैं। रघुवीर सहाय 'दूसरा सप्तक' के कवि थे। उनका मिजाज एकदम अलग-थलग सा था। इसी कारण उन्हें नई कविता लिखने वालों ने भी पसंद किया। नई कविता पर अस्तित्ववाद और उसके क्षणवाद का जो थोड़ा-बहुत प्रभाव था, अपने स्वभाव के अनुसार सहाय ने उनका उग्रता से विरोध जताया। नई कविता को सिद्धहस्त बनाने वाले लक्ष्मीकांत वर्मा ने एक बार कहीं कहा था— "प्रारंभ से ही मैं सप्तक के कवियों से सहाय को अलग मानता रहा हूं क्योंकि मैं रघुवीर सहाय और अज्ञेय के सामान्य तत्व को नहीं समझ पाता। इसलिए यह भी नहीं समझ पाता कि उन्हें सप्तक में क्यों रखा गया है।"

रघुवीर सहाय ने हरिवंशराय बच्चन की वेदना और गिरिजाकुमार माथुर के रंग-संयोजन के प्रभाव में होकर लिखने की शुरुआत की परंतु जल्दी ही वे इस बंधन से अलग हो गए।

सहाय की जमीन गांव की नहीं थी, फिर भी उनकी शुरुआती कविताओं में ग्रामीण और शहरी दोनों वातावरण दिखलायी पड़ते हैं। देखा जाए तो ग्रामीण जीवन का यह आकर्षण ही

आगे चलकर उन्हें साधारण आदमी से जोड़ता है। उसके प्रति उन्होंने अपने कुछ दायित्व समझे परंतु यहां अस्तित्ववाद हवा हो गया।

रघुवीर सहाय ने एक स्थान पर कहीं लिखा है–'अज्ञेय और शमशेर को 'बौद्धिक आत्मानुभूति' और 'बोधगम्य दुरूहता' ने उन्हें अपनी आने वाली रचनाओं के लिए काफी तैयार किया।'

अपने पहले कविता-संग्रह, 'सीढ़ियों पर धूप में' उन्होंने अस्तित्ववाद से प्रभावित कवियों के दुखवाद पर चोट की। यहां उन्होंने कहा–अपने अथाह शून्य के समान दुख को मेरे छटंकी भर दुख से भर लिया करो। देखा जाए तो उनका दुख मध्यम वर्ग से जुड़ा है। वह उनका अपना दुख है।

अस्तित्ववाद से प्रभावित कवियों के दु:ख की भांति उन्होंने उनके क्षणवाद का भी उपहास किया।

क्षणवादी दावा करते थे कि जीवन से बहुत अधिक लगाव होने के कारण ही वे दु:ख की अनुभूति तीव्रता से करते हैं। इस दृष्टि से दु:ख उनकी जीवन आशा का दंड है। 'माथे मुकुट व्यथा का बांधे' पंक्ति के भाव पर भी ध्यान दें तो मुक्तिबोध ने कहा था–ये कवि अपने दु:ख को तमगे की तरह लिये रहते हैं। सहाय में वह तमगा मुकुट है अर्थात कवियों ने दु:ख से मुक्ति के लिए प्रयास न कर उसी को अपना ध्येय मान लिया है। 'पंडित के साथ खंडित' की तुकबंदी पांडित्य की पोल खोल देती है। इसी तरह 'शरणागत' उन्हें आत्मदया की स्थिति में पहुंचा देता है। तो उचित ही था कि ऐसे तेवर वाले कवि को न नई कविता के खेमे में स्थान मिला और न ही प्रगतिशील कविता के क्षेत्र में। उन्हें प्रगतिशील कवियों से भी शिकायत थी।

वे इस संदर्भ में कहते हैं–'ये वे लेखक हैं जो अपनी भौतिक ईमानदारी से प्रेरित होकर सत्य की खोज में निकले परंतु नजदीक ही जो भी दुकान मिल गई वहीं से उसे खरीद लिया।'

रघुवीर सहाय ने प्रेम और प्रकृति को भी अपनी कविता में स्थान दिया। उन पर भी नये ढंग से कलम चलायी। 'सीढ़ियों पर धूप में' काव्य-संग्रह में जो प्रेम कविताएं आयी हैं, उनमें विशेष बात यह है कि उनमें से फालतू की रोमानियत निकल गई है और उसके स्थान पर अनुभूति को बौद्धिकता अथवा चिंतनशीलता का सामीप्य मिल गया है। उससे कवि की अभिव्यक्ति भी चुस्त हो गयी है और साथ ही उसमें तीक्ष्णता भी आ गयी है। यह तीक्ष्णता कवि और पाठक दोनों को ही काटती है परंतु इससे कविता में नया रंग आ गया है, नया रस आ गया है। इन पंक्तियों पर ध्यान दें–

'तुम उसका क्या करती हो मेरी लाडली
अपनी व्यथा के संकोच से मुक्त होकर
जब मैं तुम्हें प्यार करता हूं.....'

इसमें 'लाडली' संबोधन परंपरागत प्रेम की कविता को एक झटका देता सा लगता है। साथ ही उसे अनुभूति के एक दूसरे स्तर पर ला पटकता है। इसी प्रकार सहाय ने अपनी एक और कविता में 'छोकरी' शब्द का प्रयोग कर एक नई प्रेम कविता को जन्म दिया है। यथा, 'इकली दुपहरी थी, हवा उठी शुरु की जनवरी/ हम दो जने थे, मैं सयाना दूसरी थी छोकरी।'

यहां कवि इस बात में सफल हुआ है कि प्रेम-कविता से प्रेमियों को निशाना बनाते हुए भी वह न तो प्रेम का उपहास करता है और न ही प्रेमिका का। इनका मूल्य और गरिमा गंभीर प्रणय-कविता लिखने वाले किसी भी कवि से कम नहीं।

रघुवीर सहाय ने प्रकृति की जो कविताएं रची हैं वे भी अभिनव और सूक्ष्म संवेदना का संप्रेषण करती हैं। इसके अतिरिक्त मध्य वर्ग का एक विषय सहाय के लिए विशेष महत्वपूर्ण है, और वह है–स्त्री। स्त्री उनके लिए उपेक्षितों की प्रतीक है। सहाय ने 'स्त्री' को लेकर जो कविताएं लिखी हैं, वे बोलती कविताएं हैं।

रघुवीर सहाय की कविताओं को पढ़कर लगता है कि वे अपनी बात को अपने ही मस्त-मौला ढंग से कहने के अभ्यस्त हैं। वे किसी भी प्रकार की सीमाओं में भी बंधना नहीं चाहते हैं। अब चाहे उसमें शब्द हों, भाषा हो, शैली हो, वाक्य हों या फिर विचार ही क्यों न हों। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि वे नये-नये प्रयोग, अपने ही ढंग से, अपनी अलग-अलग रचनाओं में करने को तत्पर रहे हैं। उन्हें अपने विचारों की आंधी में किसी भी प्रकार का परहेज, गुरेज स्वीकार नहीं है। ये ही सब उनकी कविताएं कहती प्रतीत होती हैं।

रघुवीर सहाय का देहांत 30 दिसंबर, सन् 1990 को दिल्ली में हुआ।

10.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- रघुवीर सहाय के जीवन व उनके काव्य में राजनीतिक चेतना से अवगत हो सकेंगे;
- रघुवीर सहाय के काव्य में भाषिक प्रयोग का विस्तृत आकलन कर पाएंगे;
- समकालीन कविता और रघुवीर सहाय की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन कर पाएंगे।

10.2 रघुवीर सहाय के काव्य में राजनीतिक चेतना

सन् 1960 के बाद की कविता के केन्द्र में राजनीति की आवश्यक स्थिति के दर्शन होते हैं। मनुष्य की नियति को चलाने वाली राजनीति बीसवीं सदी के हरेक व्यक्ति को हिलाकर रख देती है। कवि भी समाज का ही एक बहुत ही जागरुक व्यक्ति होता है। इसलिए वह भी निश्चित रूप से देश की राजनीति से प्रभावित होता है।

सन् 1960 के बाद की कविता में राजनीतिक व्यवस्था की स्थिति को लेकर असंतोष और जुझारूपन स्पष्ट रूप से जनता में भी दिखलायी देने लगा था। कवियों की इस प्रवृत्ति को दृष्टि में रखते हुए अशोक वाजपेयी के विचार भी उभरकर सामने आए–"राजनीति का दबाव इतना आक्रामक और तीव्र होता गया है कि कविता का उससे बचना मुमकिन नहीं रह गया है। समकालीन सच्चाई राजनीतिक कर्म, इच्छा और तथ्यों से उलझी सच्चाई है और बिना राजनीति से दो-चार हुए उसका साक्षात्कार अधूरा और अप्रमाणिक रहेगा। राजनीति से युक्त संसार इच्छित संसार है, अतीत-जीवी या भविष्यत् संसार है, समकालीन संसार नहीं, जिससे

चरितार्थ करने के लिए कवि नयी कविता, अगर उसकी मूल प्रतिज्ञाएं अभी भी सही हैं, प्रतिश्रुत हैं। राजनीति से अछूता काव्य-संसार कलात्मक ढंग से सार्थक हो सकता है, स्वायत्त भी, पर मानवीय ढंग से समृद्ध और तात्कालिक नहीं।"

मानव द्रोही राजनीति का विरोध एक जागे हुए संवेदनशील कवि के लिए अति आवश्यक है। जिन्दगी पर सही-सही बहस करने वाला कोई भी कवि इस प्रश्न से मुंह नहीं फेर सकता। इस विषय में नेमिचंद जैन लिखते हैं–"कवि सीधे राजनीतिक संसार की रचना भले ही न करता हो पर जो भी संसार वह कविता में रचता है, वह यदि सार्थक है तो राजनीति के अनुभव से और उसी के औजारों से बना हुआ संसार होता है। सारी सार्थक और समर्थ कविता किसी न किसी स्तर पर परिवेश से आदमी के संबंध को, आदमी-आदमी के संबंध को, अपने आपसे आदमी के संबंध को, नये सिरे से परिभाषित करती है, जो राजनीति से बचकर और बाहर रहकर नहीं किया जा सकता। एक पूरे लंबे दौर में हम एक गलतफहमी में पड़े रहे कि राजनीति के संदर्भ से कविता भ्रष्ट हो जाती है।"

ध्यानपूर्वक देखा जाए तो सन् 1960 के पश्चात् राजनीति पूर्णरूपेण कविता के केन्द्र में प्रवेश कर जाती है। इस समय के ज्यादातर कवियों ने राजनीति से पूरी तरह प्रभावित होकर उसे कविता का विषय बनाया और भारत की राजनीति की जटिल संवेदनाओं को अपनी-अपनी कविता में महत्वपूर्ण स्थान दिया। इन कवियों में विशेष रूप से रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, श्रीकांत वर्मा और धूमिल के नाम शीर्ष पर रखे जा सकते हैं। इन कवियों ने राजनीति का एक नया मुहावरा अपनी कविताओं में रखा। इनकी कविताओं में जुलूस, कर्फ्यू, वोट, बैलेट, मतदाता, चुनाव, मार्शल लॉ, संसद, लाठीचार्ज, आंदोलन, घेराव, षडयंत्र और पथराव जैसे मुहावरे उनकी राजनैतिक चेतना को उद्घाटित करते हैं।

जहां तक रघुवीर सहाय की बात है तो उनके अंदर छायावाद की रागधर्मिता की चेतना के साथ-साथ बदलते जीवन मूल्यों की आधुनिकतम राजनीतिक चेतना का अद्भुत रचनात्मक विनियोग मिलता है।

उनकी बाद की कविताओं में क्रूर यथार्थ के भी दर्शन होते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के सामाजिक जीवन में राजनीतिक हस्तक्षेप का जितना गहरा साक्षात्कार उनकी कविताओं में दिखता है, उतना और वैसा शायद ही किसी और कवि की रचनाओं में दिखता हो। आजादी की परिस्थितियों का प्रभाव रघुवीर सहाय की कविताओं में बखूबी दिखाई पड़ता है। आजादी मिली तो एक सपना आम आदमी की आखों में उतर आया था और वह था एक बढ़िया समाज का सपना, लोक कल्याण का सपना। किंतु व्यवस्था में कोई विशेष मूलभूत बदलाव न होने के कारण हिंदी और देश की सभी प्रांतीय भाषाओं के कवियों में एक प्रकार का गंभीर मोहभंग पनपा। हिंदी के कवियों में यह मोहभंग कुछ अधिक ही नजर आया। इसका एक जो विशेष कारण था वह था, हिंदी भाषी क्षेत्रों में स्वतंत्रता को लेकर संघर्ष भी अधिक था और उसी के अनुसार उनके सपने भी आजादी को लेकर कुछ अधिक ही थे। यहां यह बतलाना भी प्रासंगिक होगा कि शुरुआती दौर में हिंदी क्षेत्र से ही पहले-पहल अंग्रेजी शासन के प्रति विद्रोह की आवाज उठी थी। यह दूसरी बात रही कि सन् 1857 का विद्रोह उस समय किन्हीं कारणों से दब गया था। यह बात पूरे हिंदी भाषी क्षेत्रों में फैली हुई थी। फलतः हिंदी के कवियों में पूर्वोक्त निराशा से उत्पन्न मोहभंग अपने और

पनपने के अनुकूल परिस्थितियों के न बनने से तीक्ष्णता का तेवर लेकर, आगे चलकर गहराने लगा।

सन् 1952 में जब आम चुनाव हुए और राजनीति में कांग्रेस जम गयी तो पंडित नेहरू के प्रभाव की गरिमा से प्रभावित जनमानस अपने सपनों को स्वतंत्र भारत में खोजने को तत्पर हुआ। तभी से वास्तविकताओं की मार ने उसे निराश और कुण्ठित करना शुरू कर दिया। भारत के स्वतंत्र होने के बाद व्यवस्था में तो कुछ विशेष अंतर देखने को नहीं मिला पर हां, एक शब्द जरूर मिला–'आजादी', जिसे देश के झंडे के रंगों में ही देखा जा सकता था।

सन् 1962 में चीन का आक्रमण, राजनैतिक अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, नेताओं द्वारा दिये गये झूठे आश्वासन, उत्तरोत्तर बढ़ती हुई महंगाई, बेरोजगारी, भुखमरी, जातिवाद तथा भ्रष्ट प्रशासन इत्यादि ऐसे अनेक मुद्दे थे जिनसे जनता का मोहभंग हुआ। रघुवीर सहाय का राजनीतिक तेवर की कविताओं से ओत-प्रोत काव्य-संग्रह 'आत्महत्या के विरुद्ध' सन् 1967 में प्रकाशित हुआ था। उस समय तक आजादी मिले बीस वर्ष बीत चुके थे। जनता के सारे स्वप्न तार-तार हो चुके थे।

सन् 1960 के आसपास रघुवीर सहाय की कविता यथार्थ की जिस नयी जमीन को प्रस्तुत करती है वह अचानक ही नहीं बन गयी। सन् 1947 में कांग्रेस के सत्ता में आने के बाद के सालों में जटिल होता हुआ सामाजिक ढांचा सन् 1960 तक उस स्थान पर पहुंच गया था जहां लोगों का तेजी से मोह भंग होना शुरू हो गया था। आशाएं निराशाओं में बदलने लगी थीं।

देखा जाए तो सहाय की रचनाओं में राजनीति अपनी पूरी छवि के साथ उभरी है। रघुवीर जी ने अपने समय की परिस्थितियों को बड़ी गंभीरता से महसूस किया है। वे बड़े ही साहस के साथ राजनीतिक मुद्दों को अपनी कविताओं के विषय बनाते हैं। नेहरू युग के खोखलेपन, उनके कार्यकाल में देश की खराब दशा, लोगों के मोहभंग तथा साधारण मनुष्य की असुरक्षा को जगजाहिर करता हुआ कवि कहता है–

'दूर.....
राजधानी से कोई कस्बा दोपहर बाद छटपटाता है
एक फटा कोट एक हिलती चौकी एक लालटेन
दोनों, बाप मिस्तरी और बीस बरस का नरेन
दोनों पहले से जानते हैं पेंच की भरी हुई चूड़ियां
नेहरू युग के औजारों मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी देन
अस्पताल में मरीज छोड़कर आ नहीं सकता तीमारदार
दूसरे दिन कौन बतायेगा कि वह कहां गया।'

उपरोक्त कविता की व्याख्या करते हुए सुरेश शर्मा कहते हैं–इन पंक्तियों में रघुवीर सहाय नेहरू युग के भ्रम और खोखलेपन का बयान तो करते ही हैं, इसके साथ ही व्यवस्था के निरंतर मनुष्य विरोधी होते चले जाने की सूचना भी देते हैं, जो हमें एक अप्रत्याशित दहशत की दुनिया में ले जाती है।

'आत्महत्या के विरुद्ध' कविता की बनावट इस प्रकार की है कि कवि बार-बार अन्याय और घुटन की स्थितियों से बाहर आकर वहां लौटता है जहां उसका अपना समाज है।

राजनीतिक भ्रष्टाचार के खिलाफ रघुवीर जी की तीखी तथा स्पष्ट अभिव्यक्ति है। भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे अपने समय के पूरे यथार्थ को स्वर देते हुए कवि कहता है–

'बांध में दरार
पाखण्ड वक्तव्य में
मिलावट दवाई में
नीति में टोटका
अहंकार भाषण में
आचरण में खोट हर हफ्ते मैंने विरोध किया
सचमुच स्वाधीन हो जाने का इतना भय
एक दास जाति में!'

प्रस्तुत पंक्तियों में सहाय जीवन और उसकी राह में पड़ने वाले यथार्थ, परंतु कटु संघर्ष से सीधा आमना-सामना करते दिखाई देते हैं। इस कविता में कवि ने पूरी निर्भीकता से जिन्दगी के इस साक्षात्कार को अपनी कविता में उतारकर कविता के चौखटे में 'फिट' (जड़) कर दिया है।

रघुवीर सहाय की कविताओं में राजनीतिक संदर्भों और उनसे जुड़े प्रश्नों को बड़े ही स्पष्ट रूप से उठाया गया है। 'आत्महत्या के विरुद्ध' नामक उनके काव्य संग्रह में तो पूरा शासन-तंत्र नग्न होकर सामने आता है। संसद, लोकतंत्र, जनता और अश्रुगैस इत्यादि सभी संदर्भ कविता में उभरकर आए हैं। कवि की इन पंक्तियों को देखिए–

'हर संकट भारत में एक गाय होता है
ठीक समय ठीक बहस कर नहीं सकती है
राजनीति बाद में जहां कहीं से भी शुरू करो
बीच सड़क पर गोबर कर देता है विचार'

रघुवीर सहाय ने लोकतंत्र में आस्था होने के कारण इस क्रूर राजनैतिक व्यवस्था में मरते हुए मतदाता की समस्याओं को, उसकी चिंताओं और विसंगतियों को अपनी कविता का विषय बनाया है। हर रोज तिल-तिलकर मरता मतदाता उनकी कविता का केन्द्रबिंदु है। परंपरा से हटकर अपनी कविताओं की विषय-वस्तु की ओर इशारा करते हुए तथा छायावादी, प्रगतिवादी और गीतकारों को अच्छा कहते हुए कवि यह दिखाता है कि इस समाज में अपने को निपट अकेले पाते हुए सदैव बेचारा मतदाता ही मरता है, उसकी इच्छाएं दम तोड़ती हैं। इस स्थिति को दर्शाती उसकी धारदार कविता है–

'कितना अच्छा था छायावादी
एक दुख लेकर वह एक गान देता था
कितना कुशल था प्रगतिवादी
हर दुख का कारण वह पहचान लेता था
कितना महान था गीतकार
जो दुख के मारे अपनी जान लेता था
कितना अकेला हूं मैं इस समाज में
जहां सदा मरता है एक और मतदाता।'

इस क्रूर व्यवस्था में रोज-रोज, तिल-तिल कर मरते हुए लोगों का चित्र देखा जा सकता है–

'रोज-रोज थोड़ा-थोड़ा मरते हुए लोगों का झुण्ड
तिल-तिल खिसकता है शहर की तरफ
आगे भी–
मरते मनुष्यों के मध्य खड़ा मक्कार मंत्री
कहता है अविश्वास
सरकार सिंचाई करे
सुनते हैं लड़के, अधेड़ पढ़ते हैं, याद करते हैं बूढ़े
यह विचार, अखबार सीने पर धर जाता है लोहे के
अक्षरों में एक धौंस, कोई छटपटाता नहीं।'

सहाय मरते हुए लोगों के लिए कुछ करना चाहते हैं, व्याकुल हैं। इसी व्याकुलता में रची गई लोकतंत्र के ठेकेदारों की बखिया उधेड़ती यह कविता देखिए–

'कितना आसान है नाम लिख लेना
मरते मनुष्य के बारे में क्या करूं, क्या करूं मरते मनुष्य का
अंतरंग परिषद् से पूछकर तय करना कितना
आसान है कितनी दिलचस्प है नेहरू की
आशंका पाटिल की भर्त्सना की कथा
कितनी घुटन के अंदर घुटन के
घुटन से कितनी सहज मुक्ति
कितना आसान है रख लेना अपने पास अपना वोट
क्योंकि प्रतिद्वंदी अयोग्य है।'

कवि अपने को उन लोगों का हिस्सा मानता है जो व्यवस्था की हिस्सेदारी में सम्मिलित नहीं होते। उनकी एक कविता 'अपने आप और बेकार' की पंक्तियां देखिए–

'यही मेरे लोग हैं
वही मेरा देश है
इसी में रहता हूं
इन्हीं से कहता हूं
अपने आप और बेकार।'

इसके आगे की पंक्तियों में, कवि इस प्रजातंत्र में मतदाता की दयनीय स्थिति बयान करता है। वह मतदाता इतना निराश है कि अपना मत भी नहीं देता और कहता भी है 'किसी से नहीं डरता हूं। इस लोकतंत्र में, निरीह मतदाता की दशा का चित्र देखिए–

'देश की व्यवस्था का विराट वैभव
व्याप्त है चारों ओर
एक कोने में दुबक ही तो सकता हूं
सब लोग जो कुछ रचाते हैं उसमें

उल्लेखनीय है कि सहाय कवि और एक पत्रकार के रूप में सक्रिय रहे थे। बिहार, बंगाल, पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं पूर्वोत्तर राज्यों के संघर्षशील तबके मस्तिष्क में थे और राजनीतिक हलचलों का पूरा वातावरण उनके सामने था। देश में इंदिरा गांधी की चालाक राजनीति चल रही थी। लचीला समाजवाद बेमानी होता जा रहा था। फिर ऐसे कसैले वातावरण में एक जागरूक पत्रकार, एक सजग जनकवि कैसे चुपचाप सब कुछ सहन कर सकता था।

'आत्महत्या के विरुद्ध' रघुवीर सहाय का सबसे महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह है। वे कहते हैं-इस संग्रह की कविताएं अकविता की प्रतिक्रिया में लिखी गई हैं। परंतु इस संग्रह की अधिकतर कविताएं सन् 1967 की बदली हुई राष्ट्रीय राजनीति से सरोकार रखती-सी प्रतीत होती हैं। देखा जाय तो इस संग्रह की कविताएं नेहरू युग से मोहभंग को दर्शाने वाली रचनाएं हैं।

सहाय की राजनीति कविता में किसी दल की राजनीति न होकर, पूर्णरूपेण स्वतंत्र राजनीति है। उनके अनुसार दलीय राजनीति लेखक की स्वतंत्रता को कुंठित करती है। स्वाभाविक रूप से वे किसी राजनैतिक विचारधारा से बंधे हुए नहीं हैं। हां, जनता से वे अवश्य जुड़े हैं। जनता के साथ भी सहाय का जुड़ाव वीर पूजा वाला नहीं, अपितु यथार्थता से परा-पूरा है।

यहां इसका एक उदाहरण देखिए–
'एक मेरी मुश्किल है जनता
जिससे मुझे नफरत है सच्ची और निस्संग
जिस पर कि मेरा क्रोध बार-बार न्योछावर होता है'

जनता के प्रति यह नफरत निश्चय ही उसके प्रति अंधपूजा का भाव रखने वाले अनेकानेक रचनाकारों को उसके प्रति प्रदर्शित प्यार से अधिक प्रभाव डालने वाली है। उपरोक्त कविता की पंक्तियों में 'सच्ची नफरत' में 'सच्ची' का अर्थ उनके अनुसार है–'सद्भावना से युक्त' और आगे भी कहा है कि, जिस घृणा में यह सद्भावना नहीं है, वह वास्तव में भीड़ के प्रति नहीं अपितु अपने प्रति घृणा है। भीड़ के रहते हुए अपनी शक्ल भी भीड़ में देखना असंभव है।

सहाय की 'मेरा प्रतिनिधि' नामक कविता में भारतीय संसद का चित्रण देखिए–

सिंहासन से ऊंचा है सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओं के
एक परिवार के
मुंह बाए बैठे हैं लड़के सरकार के
लूले काने बहरे विविध प्रकार के
हल्की-सी दुर्गंध से भर गया है सभाकक्ष।
सुना वहां कहता है
मेरा प्रतिनिधि
मेरी हत्या की करुण कथा
हंसती है सभा
तोंद मटका

ठठाकर
अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर
फिर मेरी मृत्यु से डरकर चिचियाकर
कहती है
अशिव है अशोभन है मिथ्या है'

इस कविता में जो भारतीय संसद का चित्र खींचा गया है वह विसंगत है, विडम्बना है। त्रासद और वीभत्स तो है ही।

सहाय ने अपनी 'मैं' कविता में आज़ादी की बहुत अच्छी परिभाषा दी है। वे कहता है–

'बीस वर्ष / खो गए भरमें उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जनमी पलीपुसी क्लेश में
बेगानी हो गई अपने ही देश में
वह अपने बचपन की
आज़ादी
छीनकर लाऊंगा।'

देखा जाए तो बच्चा बचपन में जिस आज़ादी का सुख लेता है-वही आज़ादी का वास्तविक रूप है।

सहाय की एक कविता है–'फिल्म के बाद चीख।' देखिए इस कविता में सिनेमाघर को संसद के रूप में कैसा बदला गया है–

'एक बार जान-बूझकर चीखना होगा
जिंदा रहने के लिए
दर्शक दीर्घा में से
रंगीन फिल्म की घटिया कहानी की
सस्ती शायरी के शेर
संसद-सदस्यों से सुन
चुकने के बाद।'

'एक अधेड़ भारतीय आत्मा' नामक कविता की पंक्तियां देखिए–

'टूटते-टूटते
जिस जगह आकर विश्वास हो जाएगा कि
बीस साल धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जाएगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोलाभाला मंत्री
मामला बताओ हम कार्रवाई करेंगे
हाय-हाय करता हुआ हां-हां करता हुआ, हें-हें करता हुआ
दल का दल
पाप छिपा रखने के लिए एकजुट होगा
जितना बड़ा दल होगा उतना ही खाएगा देश को'

इस कविता में सहाय ने दलगत राजनीति का बेहतर चित्रण किया है। राजनीतिक समाजवाद की स्थिति यह है कि विरोधी दल की सरकार बन जाने पर उसमें सम्मिलित होने के लिए पहले वाले दल का महामंत्री लगातार घोषणा किए जा रहा है। जरा देखिए तो–

'गाकर सुनाता है
जनवादी वादों की घोषणा
महामंत्री
जनता के लिए नहीं
वह विरोधियों को प्रमाण दे रहा है
कि मैं दलबदल के लिए योग्य व्यक्ति हूं'
अब देखिए, शासक दल के अध्यक्ष का यह चित्र–
'महासंघ का मोटा अध्यक्ष
धरा हुआ गद्दी पर खुजलाता है उपस्थ
सर नहीं,
हर सवाल का उत्तर देने से पेश्तर
बीस बड़े अखबारों के प्रतिनिधि पूछें पचीस बार
क्या हुआ समाजवाद
कहें महासंघपति पचीस बार हम करेंगे विचार
आंख मार कर पचीस बार हंसे वह, पचीस बार
हंसे बीस अखबार'

शासक दल के अध्यक्ष का यह कितना वीभत्स चित्र इस कविता में उभर कर आया है- उसकी हंसी के साथ बीस अखबारों की हंसी भी कम भयावह नहीं है।

'आत्महत्या के विरुद्ध' कविता-संग्रह की सबसे अंतिम और सबसे लम्बी जो कविता है उसे स्वातंत्र्योत्तर भारत का सिनेमा कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। इस रूपहले पर्दे पर अनेक चित्र विभिन्न रंगों के आते रहते हैं और गुजरते रहते हैं। उनकी गति कभी मंद पड़ जाती है तो कभी तेज होती रहती है। इन प्रायः सभी चित्रों में स्वातंत्र्योत्तर समाज के राजनैतिक जीवन के ढकोसलेपन, स्वार्थपरता, अंतर्विरोध, हताशा और विद्रूपता के चित्र उभरते देखे जा सकते हैं।

'लोग भूल गए हैं' (चतुर्थ काव्य संग्रह) रघुवीर सहाय के इस काव्य-संग्रह की कविताएं भी राजनीति से अछूती नहीं हैं लेकिन इन कविताओं में कवि की सामाजिक चेतना खूब मुखरित हुई है और वह भी एक गहरी सामाजिक नैतिकता के रूप में। इस संग्रह की कविताओं को देखकर ऐसा आभास होता है कि राजनीति और साधारण जनता के विषय में वे अब तक जो लिखते रहे हैं वह भी पूरे विवरण को लेकर, वह सब एक सामाजिक चेतना में बदल कर अथवा उसका रूप लेकर सामाजिक नैतिकता में उभर आया है। अब शब्द केवल व्याख्यान नहीं बनते अपितु सीधे-सीधे पाठकों की नैतिकता को रास आते हैं। सहाय जनता से निराश नहीं हैं। इस संदर्भ में उनकी रचना 'मुआवजा' की पंक्तियों को देखिए–

'कौन है आदमी जो बचा रह जाता है
हर बार जब ताकतवर लोग अपने मन का

संसार रचने को सामूहिक हत्याएं करते हैं
कौन है जो बचा रहकर फिर पहचाना जाता है
और बचा रहता है
कौन है वह कि जो बचा तो रहता है
पर उसकी पहचान नहीं हो पाती है
और कौन है वह जो जैसे ही पहचाना जाता है
मार दिया जाता है'

तो यह है जनता के विद्रोह की परंपरा, जो विद्रोहियों की हत्या के पश्चात् भी चलती रहती है। इस परंपरा में कवि की पूर्ण निष्ठा है।

'एक यथार्थ' साधारण जन की इस विषम स्थिति को इस रचना में देखिए–

'हम सब पचास के हो गए एक दूसरे का मुंह ताकते खड़े हैं
हम बचे हुए हैं और इस पर हमें गर्व है कि
कोई डर नहीं है
जिससे डर था उससे दोस्ती कर ली है
लोग देखते हैं कितना सुरक्षित है
और सड़क पर एक हथियार बंद के हाथों लुटते हुए
मुंह से आवाज नहीं निकलती
क्योंकि वह कह चुका है कि कोई सुनेगा नहीं।'

जहां तक राजनीति का प्रश्न है तो 'कुछ पते कुछ चिट्ठियां' सहाय का ही संग्रह है। परंतु यह संग्रह राजनीति से कोसों दूर है। फिर भी कह सकते हैं कि साधारण जन की दृष्टि से ही वे किसी राजनैतिक घटना को देखने के अभ्यस्त थे।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि रघुवीर सहाय के काव्य में राजनीतिक चेतना के स्वर पुरजोर तरीके से गूंजते हैं। तब भी, जब वे राजनीतिक माहौल से संतुष्ट नहीं थे। उनकी यह असंतुष्टि उनकी कतिपय रचनाओं में देखते ही बनती है। यदि यह कहा जाए कि वे साफ-सुथरी राजनीति के पक्षधर थे, जनता के कवि थे और जनता की पीर को समझने वाले कवि थे, तो अतिशयोक्ति न होगी।

10.3 रघुवीर सहाय के काव्य में भाषिक प्रयोग

रघुवीर सहाय ने अपनी रचनाओं में भाषिक प्रयोग अपने ही निराले ढंग से किए हैं। उन्होंने स्त्री के लिए प्रयुक्त होने वाले प्रचलित शब्दों के स्थान पर ऐसे-ऐसे शब्द अपनी रचनाओं में लिए हैं जो शायद ही किसी कवि ने पहले अपनी रचनाओं में स्त्री के लिए प्रयोग किए हों। उदाहरण के लिए कुछ शब्द हैं–कंटीली, गीली, सीली, ढीली और पतीली आदि-आदि। इन शब्दों ने स्त्री की कल्पित मर्यादा की धज्जियां-सी उड़ा कर रख दी हैं। उनकी व्यंग्यात्मक मुद्रा स्त्री जाति के प्रति गहरी प्रतिबद्धता की देन कही जा सकती है। जाहिर है, जो जनता को चाहता है वह उसे फटकार भी लगा सकता है।

सहाय स्त्री जाति के प्रति भावुक नहीं हैं क्योंकि उसकी आज की दशा के लिए वे उसे भी जिम्मेदार ठहराते हैं और बस यहीं से उनकी रचनाएं धारदार हो जाती हैं। उन्होंने अपनी

कविता में जो 'क्षुधित' और 'मुदित' शब्द लिए हैं उनको 'पंत शब्दकोश' के शब्द कहा जाता है। किंतु यह भी कटु सत्य है कि भाषा और शब्दावली को सीमाओं में बांधकर नहीं रखा जा सकता। वस्तुत: सहाय की रचनाओं को पढ़ने से पता चलता है कि उनका विश्वास तोड़ने में रहा है। शायद इसीलिए उन्होंने नई कविता की प्रचलित और स्वीकृत भाषा पर कुठाराघात किया है। यह बात अलग है कि यह काम उन्होंने भिन्न प्रकार की शब्दावली और उसके प्रयोग-कौशल के द्वारा तो किया ही है, वाक्य-विन्यास तक को बदलकर भी किया है। नई कविता में वाक्य जिस तरह से लिखे और कविता में प्रयोग में लाये जाते थे, उन्होंने उसके कलेवर को ही बदल डाला है। इस बात का प्रमाण है कि उनके वाक्य कभी छोटे हैं, कभी बड़े हैं, कभी पूरे हैं तो कभी अधूरे भी हैं। विराम के चिह्नों को हटा देने से वे प्राय: एक-दूसरे में मिले हुए हैं। परिणामत: इससे वाक्यों की स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो जाती है और एक वाक्य दूसरे वाक्य में दखल देने लगता है। और तो और उनकी कुछ कविता की दूसरी पंक्ति 'कि' से शुरू होती है जो कविता नाम की 'विधा' का आनंद समाप्त अथवा छिन्न-भिन्न करती-सी प्रतीत होती है। वैसे देखा जाय तो इस नव प्रयोग से भी एक नई भाषा की सृष्टि में सहायता मिलती है, इजाफा होता है। यह नई भाषा मात्र कहने भर के लिए नई भाषा नहीं है। इसमें एक वाक्य की तरंगें दूसरे वाक्य में सीधे-सीधे प्रवाहित होती हैं। इससे पढ़ने में अलग ही प्रकार का आनंद आता है। अपनी इस उठापटक के विषय में रघुवीर सहाय कहते हैं–

वही तोड़ना तोड़ना है, जो साथ ही साथ बनता चला जाये। इससे स्पष्ट होता है कि इस तोड़ने के पीछे उनकी सृजनात्मकता की इच्छा छिपी होती है। ये सब उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से मिलता है।

'आत्महत्या के विरुद्ध' संग्रह की कविताओं में भी भाषा की चर्चा रही है। देखा जाए तो संरचना पर भी वही बात लागू होती है जो कमोबेश भाषा पर होती है। सहाय ने इस संग्रह की कविताओं में अब तक की चलताऊ काव्य-भाषा को तोड़ा है। सहाय शब्दों को फिजूल में ही खर्च नहीं करते हैं। उन्होंने कम से कम शब्दों में अर्थ से अधिक से अधिक संदर्भों को समेटना चाहा है। इसका उदाहरण इस कविता में देखें–

"हमने बहुत किया है/ जनता ने नहीं किया है/
हमने बहुत किया है/ हम फिर बहुत करेंगे/ हमने बहुत किया है/
पर अब हम नहीं करेंगे/ कि हम अब क्या और करेंगे/
और हमसे लोग अगर कहेंगे कुछ करने को/
तो वह तो कभी नहीं करेंगे।"

देखने में आता है कि सहाय ने कविताओं को बोलचाल की भाषा के साथ-साथ बोलचाल की लय में भी रचा है। यही कारण है कि इनकी रचनाओं का वास्तविक सौंदर्य इन्हें सुनने-सुनाने में खुलता है। भाषिक प्रयोग की दृष्टि से देखें तो कुछ कविताएं उन्होंने छंद में भी लिखी हैं लेकिन उनमें छंदों का प्रयोग उच्च कोटि के कौशल से जुड़ा है।

'हंसो हंसो जल्दी हंसो' (तीसरा काव्य संग्रह) में उनकी रचनाओं का शिल्प एकदम बदला हुआ है। इस संग्रह की 'चेहरा' जैसी कविताओं को अलग रख दें तो शेष सभी कविताएं एक बदले हुए शिल्प की कविताएं हैं। निश्चय ही यह शिल्प परिवर्तन सहाय में रचनात्मक

दबाव के कारण है। कुछ और दिखावे जैसा कोई कारण नजर नहीं आता। इन कविताओं में सरलता है और संप्रेषणीयता भी बढ़ गई है। इस संग्रह की ज्यादातर कविताओं को छंद में रचा गया है। सहाय छंदों का बहुत ही सधा हुआ प्रयोग करते रहे हैं। इस संग्रह की रचना का नायक वस्तुत: साधारणजन ही है।

रघुवीर सहाय के हृदय में राजनीतिक वातावरण को लेकर बहुत कुछ कड़वाहट भरी हुई थी। यह सोच उनकी अनेक कविताओं में उभरकर आई है। वास्तव में वे जनतंत्र के विरोधी नहीं थे। वे उसकी विडम्बनाओं को उभारकर प्रस्तुत करने में विश्वास रखते थे। इनकी यह एक विडम्बना यह है कि साधारणजन को यह संवैधानिक अधिकार प्राप्त है कि वे भी प्रधानमंत्री हो सकते हैं। इसी सोच को लेकर उनकी यह कविता देखें–

'इस जीवन में मैं
प्रधानमंत्री नहीं हुआ
इस जीवन में मैं प्रधानमंत्री के पद का
उम्मीदवार भी शायद हरगिज नहीं बनूं
पर होने का अधिकार हमारा है
भारत का भावी प्रधानमंत्री होने का
अधिकार हमारा है'
'तुम हंस सकते हो हंसो कि हां-हां
हो जाओ अधिकार तुम्हारा है
तो सुनो कि हां अधिकार हमारा है'

हमने देखा कि इस वाक्यांश में विडम्बना हेतु जितना इसका वस्तु-तत्व उभारता है, उतना ही इसकी अंतिम पंक्तियों में निहित संवाद की लय। ऐसी अर्थगर्भित, लचीली और संवाद की लय से मुखर भाषा उनके समय के कवियों में शायद किसी ने नहीं दी।

भाषा उतनी ही सार्थक होती है जितनी सघन होती है उसमें संप्रेषण की क्षमता। संप्रेषणीयता भाषा की सार्थकता के लिए अनिवार्य है, मुख्य शर्त है। अत: भाषा समय की आवश्यकताओं के अनुसार बदलती है। कवि को अपनी रचना की भाषा का निर्माण अनिवार्य रूप से परिवेश से ही करना होता है।

विजयदेव नारायण साही ने हिंदी कविता के सौ वर्षों में हुए तीन बड़े परिवर्तनों को लक्ष्य बनाते हुए कहा है–"हिंदी कविता की भाषा में पिछले सौ वर्षों में तीन बड़े परिवर्तन हुए हैं–एक तो तब जब, कविता की भाषा ब्रज भाषा की जगह खड़ी बोली बनी। दूसरे तब जब, इस भाषा में छायावाद ने प्रवेश किया और काव्य की भाषा अधिकाधिक संस्कृत गर्भित होती गयी। तीसरे आज से लगभग तीस-पैंतीस बरस पहले जब छायावाद की काव्य भाषा से असंतुष्ट होकर कवियों ने नये प्रयोग करने शुरू किए और तब नये ठेठपन का जन्म हुआ।

ऊपर लिखे कथन को धूमिल की कथा कविता में भी देखा जा सकता है। इस कविता से समकालीन कविता की भाषा विशेषता पर काफी प्रकाश पड़ता है–

'छायावाद के कवि शब्दों को तोड़कर रखते थे
प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोलकर रखते थे

नयी कविता के कवि शब्दों को गोलकर रखते थे
सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोलकर रखते हैं।'

आजकल के कवि बोलचाल की सहज भाषा को साहित्य की भाषा बनाने की दिशा में पहल कर रहे हैं। कवि को जीने के कर्म से और जनजीवन से जोड़ने वाले कबीर और निराला ने अपने समय में, भाषा के स्तर पर यही प्रयोग किया था। वस्तुत: काव्य भाषा की सार्थकता और सक्षमता इसी में छिपी है।

सन् 1960 का कवि मानव-नियति से सीधे साक्षात्कार करता है। रघुवीर सहाय साठोत्तरी कविता के प्रमुख कवि हैं। सहाय भाषा के प्रति एक अत्यंत जागरुक कवि हैं। रघुवीर सहाय अपनी प्रत्येक रचना में नये-नये शिल्प के प्रयोग की बात करते हैं। उन्हीं के शब्द हैं-'एक कविता में किसी शिल्प को सार्थक करके अब दुबारा उसी शिल्प में मन नहीं लगता और अब एक कविता से दूसरी में जीने के साथ एक शिल्प से दूसरे शिल्प में भी जीना चाहता हूं। एक शिल्पावस्था में अब पहले की तरह बहुत दिन तक मन नहीं रह पाता। मुझे याद है एक ही ढंग से कही कविताएं मैं लिख चुका हूं। अब शायद हर रचना का अपना एक अलग शिल्प है जो उसमें प्रतिफलित हो जाया करता है।'

रघुवीर सहाय की काव्य भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने काव्य भाषा के उपकरणों–बिम्ब, प्रतीक इत्यादि का कम से कम प्रयोग किया है। उन्होंने बोलचाल की भाषा को जो तरलता प्रदान की है, जो व्यंजकता प्रदान की है, वही उनकी काव्य भाषा की सबसे बड़ी ताकत है। उनकी कविता देखने में बहुत सामान्य लगती है किंतु उसके अर्थ कितने गूढ़ निकलते हैं यह उनकी इस कविता में देखा जा सकता है–

'चौड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अंत समय आ गया पास था
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी'

'रामदास' का उदास रह जाना ही उसके पूरे परिवेश को ध्यान में रखकर उसकी व्यंजकता को बढ़ा देता है।

प्राय: सभी बड़े कवियों ने अपने अनुभव को व्यक्त करने में भाषा की असमर्थता प्रकट की है। तुलसीदास जी ने भी कहा है–

'गिरा अनयन नयन बिनु पानी'

रघुवीर जी ने भी अपनी 'दो अर्थ का भय कविता' की निम्नलिखित पंक्तियों में भाषा की इसी असमर्थता की ओर इशारा करते हुए कहा है–

'मेरा सब क्रोध सब कारुण्य सब क्रन्दन
भाषा को शब्द नहीं दे सकता
क्योंकि जो सचमुच मनुष्य मरा
उसमें भाषा न थी'

सहाय ने इसी असमर्थ भाषा को अत्यधिक सामर्थ्यवान बनाया है। सपाट बयानी ही रघुवीर सहाय की कविता की सबसे बड़ी ताकत है। उन्होंने अपने समय के विषम सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ से साक्षात्कार करने के लिए इसे अपनाया। इस शैली का सौन्दर्य यह है कि कविता जहां आम जिन्दगी की अभिव्यक्ति लगती है वहीं इसके केन्द्र में सहज सम्प्रेषण का सारा स्वरूप दर्पण में चित्र के समान स्पष्ट दिखाई देने लगता है। लेकिन इसमें इतिवृत्तात्मकता नहीं होती। यह एक आंतरिक लयपूर्ण मानसिकता है।

रघुवीर सहाय की खूबी है कि वे सरल भाषा में कोई सरल बात नहीं करते, स्थिति की पेचीदगी से परिचित कराते हैं। स्थिति में छिपी विडम्बना को वे एकदम से पकड़ लेते हैं और उसकी भयावहता को भी सशक्त ढंग से चित्रित करते हैं। यथा–

'कुछ होगा कुछ होगा अगर मैं बोलूंगा
न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अंदर एक कायर–
टूटेगा टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट मत झूठमूठ अब मत रूठ
मत डूब सिर्फ टूट'

ऊपर लिखी पंक्तियां सीधी–सपाट पंक्तियां हैं, लेकिन इससे व्यक्ति का जो आत्मविश्वास और अपने व्यक्तित्व की कायरता को तोड़ने की जो आकांक्षा प्रकट हो रही है, वह सपाट कथन को भी एक खास भंगिमा, एक विशेष उदात्तता प्रदान करती है। टूट के साथ 'झूठमूठ' 'ऊब', 'रूठ' और 'डूब' का अनुप्रास यहां भी है और टूट की आवृत्ति भी, किंतु आवेशों के श्वास–प्रश्वास में शब्दों के प्रयोग में अन्तर्निहित कौशल डूब जाता है। यह कवि की सफलता है कि उनका प्रभाव ही शेष रह जाता है। कहना न होगा कि यह लय इस कविता का सबसे समर्थ तत्व है जो कविता के मूल अर्थ को सम्प्रेषित कर देता है।

सपाट बयानी में सिद्धहस्त कवि सहाय में बिम्बों की भी कमी नहीं है। उनकी कविताओं में चित्र–बिम्ब में काव्यार्थ को प्रसंग के अनुकूल बनाने की क्षमता है।

इसी प्रकार रघुवीर सहाय की 'पहला पानी' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में बिम्ब की जीवंतता के साथ ही साथ भाषा के सृजनात्मक प्रयोग का कौशल अलग से दृष्टव्य–

'खड़े–खड़े
चौपालों–बंगलों में बैठे
जन देख रहे जल का गिरना
चिड़िया चुनगुन से टुकुर–टुकुर'

रघुवीर सहाय की कविता में कुछ और चित्र–बिम्बों का प्रयोग हुआ है, जो उनके काव्य को अत्यधिक समृद्ध करते हैं। कुछ बिम्ब देखिए–

'जैसे एक उजाला उजाड़ सा शीतल
और उसमें एकहरा अंखुआ
और उस पर आकाश के रंगों की झलक
जैसे कोई एक आंख से हंसे एक से रोये।'

और भी–

'कितने सही हैं ये गुलाब
कुछ कसे हुए और कुछ झरने-झरने को
और हल्की सी हवा में और भी, जोखम से
निखर गया है उनका रूप जो झरने को है,

और ये भी–

'बच्चा गोद में लिए
चलती बस में चढ़ती स्त्री
और मुझसे कुछ तक घिसटता जाता हुआ'

गंध के बिम्ब–

भीड़ में मैलखोरी गन्ध मिली
भीड़ में आदिम मूर्खता की गन्ध मिली
भीड़ में मुझे नहीं मिली मेरी गन्ध
जब मैंने सांस भर उसे सूंघा'

गतिबोधक बिम्ब–

गतिबोधक बिम्ब मांसपेशियों के तनाव और आंदोलन के प्रति जागरुकता से जुड़ा होता है। इसके उदाहरण के लिए सहाय की ये पंक्तियां देखिए–

'निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तोलकर चाकू मारा
छूटा लहू का फव्वारा
कहा नहीं था उसने, आखिर उसकी हत्या होगी'

इन बिम्बों पर स्थानीय वातावरण की छाप देखी जा सकती है। इस संबंध में सहाय की कविता की पंक्ति है–

एक चीकट बिस्तरे पर एक गोला बेखबर तानलिया मैंने।

रघुवीर सहाय ने अपनी रचनाओं में भाषाई प्रयोग कदम-कदम पर किए हैं। रघुवीर सहाय की काव्य भाषा में नाटकीय गुणों का समावेश है। नाटकीयता इस कवि की अभिव्यक्ति को अतिशय शक्तिशाली बनाती है। डॉ. नामवर सिंह ने रघुवीर सहाय की प्रसिद्ध कविता 'आत्महत्या के विरुद्ध' को नाटकीय एकालाप कहा है। उनकी काव्य भाषा सरल साफ-सुथरी और सहज व्यवहार की भाषा है। अज्ञेय ने रघुवीर सहाय की भाषा को 'सहज प्रवाहमान' भाषा का नाम दिया है।

सारांश में कहें तो सहाय की काव्य भाषा बड़ी ही सशक्त है। रमेशचन्द्र शाह ने उनकी भाषा की विशिष्टता के संबंध में लिखा है–"रघुवीर सहाय की काव्य-भाषा इस मायने में अलग पड़ जाती है कि वह बिम्ब और लय के जाने-पहचाने उपकरणों से स्वतंत्र, उनके अलावा भी सर्जनात्मकता का एक धरातल पा लेती है। मात्र इस दृष्टि से भी यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि उन्होंने हिंदी में सामाजिक राजनीतिक काव्य को फिर से, बल्कि

सचमुच अब जाकर संभव बनाया है।'' डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने उनकी काव्य-भाषा के विषय में लिखा है–''रघुवीर सहाय की काव्य-भाषा हिंदी के किसी भी दूसरे कवि से तुलनीय नहीं है। उसका एक अलग काव्य-व्यक्तित्व है, काव्य-मुहावरा है, अर्थ-झंकार है, कहन की नुकीली कला है और गतिमान अदा है। कविता की सपाटबाजी में तुकों का उपयोग मदद बैठता है जो कथ्य के तनाव को कविता के अंतिम बिन्दु तक स्खलित नहीं होने देता। नई कविता में बोलचाल की भाषा का सरल व सहज उपयोग भवानी प्रसाद मिश्र ने किया है और उसी तरह का उपयोग सहाय कर सके हैं। फिर भी दोनों भाषा की अलग-अलग भाव-स्थितियां हैं। भवानी भाई भाषा को आत्मरस से भर देते हैं, किंतु रघुवीर सहाय उससे काफी तटस्थ व्यवहार करते हैं। यह तटस्थता एक ऐसी अनोखी मौलिकता बन जाती है जिसे नयी काव्य-भाषा की नयी उपलब्धि माना जा सकता है। दैनिक जीवन के चलते शब्दों से कविता को पुनः संभव बनाने की कला रघुवीर सहाय के आगे की कवियों के सीखने की चीज है।''

सबसे बड़ी बात यह है कि यह भाषा पुरानी काव्य-भाषा के रचनात्मक छल और तिलिस्म को निर्ममता से तोड़ती है। यहां भाषा मात्र माध्यम ही नहीं है। वह सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों को, संदर्भों तथा दृष्टिकोणों की 'समझ' का पर्याय है जिसमें कवि शब्द के पुराने अर्थ को धोकर नया अर्थ निष्पन्न करता है। इसलिए बेबाक तरीके से कहा जा सकता है कि रघुवीर सहाय ने अपने काव्य में भाषायी प्रयोग खुलकर किए हैं और आने वाले कवियों को एक नयी राह भी दिखलायी है।

10.4 समकालीन कविता और रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय की काव्य चेतना नयी कविता के अन्य समकालीन कवियों की तुलना में कहीं अधिक सामाजिक है क्योंकि उनकी संपूर्ण रचना यात्रा का 'प्रस्थान बिन्दु' आम आदमी कहा जा सकता है। रघुवीर सहाय के समकालीन कवियों में विशेष हैं–सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, श्रीकांत वर्मा और धूमिल इत्यादि।

रघुवीर सहाय स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के एक महत्वपूर्ण कवि, लेखक तथा विचारक हैं। उनके लेखन में साहित्य और समाज के बुनियादी सरोकारों पर विशेष ध्यान दिया गया है। कविता को कला का नहीं बल्कि जीवन का पर्याय मानने वाले रघुवीर सहाय की काव्य-चिंता सहज, सजीव और ठेठ मध्यवर्गीय भारतीय जन साधारण की चिंता है। उनकी कविता देश, समाज, राजनीति और संस्थाओं की मूल चेतना और भारतीय परिवेश में उनकी वर्तमान चेतना के विरोधाभास को उजागर करती है।

रघुवीर सहाय व्यंग्य और विसंगति की भाषा को जो सहजता देते हैं और उससे जो अनेक अर्थ निकलकर सामने आते हैं। उससे उनकी कविता अपने समकालीनों में अलग दिखाई देने लगती है। जटिल यथार्थ को उसकी समग्रता में पकड़ने तथा जाहिर करने की कला रघुवीर सहाय की मुख्य विशेषता रही है।

समकालीन समाज में लगातार बढ़ते जा रहे विवेक क्षय और संवेदन ह्रास को उनकी कविता की मुख्य चिंता के रूप में रेखांकित किया जा सकता है– जीवन और समाज में जो

अलग-थलग है, पिछड़ा हुआ है, कमजोर है, प्रताड़ित है अथवा जो सताये जाने के लिए बने हैं उन सभी के प्रति रघुवीर सहाय पूरी तरह सहानुभूति रखते हैं। मन से उनके पास हैं, उन्हीं के कवि हैं, उन्हीं के विषय में सोचते हैं, उन्हीं को अपनी रचना के विषय बनाते हैं। स्थितियों का तटस्थ और प्रथम दृष्टि में ठंडा लगने वाला जो भाव चित्र रघुवीर सहाय की रचनाओं में मिलता है व पाठक और श्रोता की संवेदना को जिस ढंग से झकझोरता है वह अद्वितीय है।

रघुवीर सहाय का जीवन प्रायः पत्रकारिता में ही बीता। इसी से लगता है कि अपने अनुभवों को बिना किसी लाग-लपेट के तुरंत ही व्यक्त कर देने की एक सहज प्रवृत्ति उनकी कविता की शक्ति है। उनकी कविताओं में जो अनगढ़पन, सादगी, जैसा-का-तैसा यथार्थ है, वह उनके व्यंग्य को ज्यादा उभारता है, निखारता है। उनकी कविता को अधिक संप्रेषणीय बनाता है और उनके अनुभव को उसकी पूर्णता के साथ व्यक्त करता है। यह रघुवीर सहाय की शक्ति है। उन्होंने स्वयं को अपने ही मुहावरों में कैद नहीं किया है। जब भी उन्हें लगा कि उनकी कविता का कोई मुहावरा बन रहा है, कोई एक सांचा तैयार हो रहा है तो उन्होंने सतर्कतापूर्वक इस मुहावरे और इस ढांचे को तोड़ डाला। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण रघुवीर सहाय की काव्यभाषा, उनका काव्यशिल्प, उनका व्यंग्यबोध, उनकी स्पष्टवादिता, और ऊबड़-खाबड़पन सृष्टि अपने समकालीनों के मध्य उन्हें एक अलग महत्व का अधिकारी बनाती है, करार देती है। साथ ही युवा रचनाशील पीढ़ी को अपनी रचनाओं की ओर खींचती है।

रघुवीर सहाय ने अपने निबंधों, काव्य-संग्रहों की भूमिकाओं तथा साक्षात्कारों के समय कही गयी बातों में कविता की आवश्यकता, अपनी रचना-प्रक्रिया, समकालीनता, कविता में क्रांति, परंपरा और प्रगति, यथार्थ, कविता के अमरत्व, प्रयोगवाद और नई कविता आदि के विषय में विस्तार से अपने विचार रखे हैं।

सन् 1951 से 1978 तक की अवधि में अपने लिखने के कारण पर प्रकाश डालते हुए सहाय ने कविता की आवश्यकता के विषय में भी अपने विचार दिए हैं। कविता की उपयोगिता के बारे में उनके विचार हैं–'बार-बार ऐसा वक्त आता है कि कवि के जीने का उद्देश्य समझ में नहीं आ रहा होता है। उसी वक्त कवि को कविता की जरूरत होती है। कविता उसे जीने का उद्देश्य बताती नहीं बल्कि स्वयं उद्देश्य बन जाती है।

कह सकते हैं कि वह खुद एक जीवन बन जाती है, जिसका उद्देश्य वह स्वयं होती है। तो कहते हैं-'कविता खुद एक जीवन बन जाती है', के क्या मायने? इस जीवन में जो भी रहस्य बोध, जिज्ञासा, रागविरक्ति, भय और साहस वह सब कविता में एक दर्जा फ़र्क हो जाता है–उसमें से ममत्व छूट जाता है। कविता नामक जीवन में मृत्यु न होती: मृत्यु तो ममत्व का ही दूसरा नाम है।'

अपनी कविता में विषय में और भी विचार प्रकट करते हुए सहाय बतलाते हैं–'जब मैं अपनी कविता, जो लिखी जा चुकी है, पढ़ता हूं तो मुझे एक नाटक के पात्र की तरह जीने का अनुभव होता है, वह कविता उस पात्र की भूमिका है और उसे मैं पढ़कर अदा कर रहा हूं और हो सकता है कि अच्छी तरह भी कर रहा होऊं, पर मेरे लिए वह कविता लिखी जाकर खत्म हो चुकी है। मैं उसका लिखा जाना दोहरा नहीं सकता।'

'यह अनुभव कविता लिखने के अनुभव से बिल्कुल भिन्न है। कविता लिखने का (और करने से ज्यादा मैं लिखने पर जोर दे रहा हूं) अनुभव एक नये जीवन को बनाने का अनुभव है जिसका हम सिर्फ आरंभ या कभी-कभी यह भी नहीं सिर्फ मध्य जानते हैं, अंत भी नहीं जानते। लिखना ही उसका अंत अर्थात उसकी संपूर्णता खोजना है और जितनी देर हम यह खोज कर रहे होते हैं हम कविता लिख रहे होते हैं। जब यह खोज पूरी हो जाती है हम कहते हैं कि कविता पूरी हो गयी।'

रघुवीर सहाय कविता को एक नये जीवन की खोज कहते हैं और कविता के उद्देश्य को जाहिर करते हुए कहते हैं–"अगर कविता एक नया जीवन उसकी खोज नहीं बल्कि इस जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति का साधन है तो वह एक अलग यथार्थ नहीं है और उस पर अलग से बहस नहीं हो सकती: परंतु कविता एक साथ नये जीवन की खोज, एक नया जीवन, एक नये जीवन का उद्देश्य–और एक अपूर्ण कर्म और एक यथार्थ है: वह नहीं है, जो इस जीवन के किसी कर्म की एवजी नहीं है और इस जीवन के गुण-दोष की समीक्षा नहीं है।"

इस प्रकार वे कविता को जीवन से जोड़ते हैं। आगे भी रघुवीर सहाय ने अपनी रचना के मूल उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा है–"नया समाज बनाना चाहिए, यह मैं जानता हूं पर यह दंभ मैं नहीं कर सकता कि मेरी हर रचना नया समाज बनाती है। यह आत्मविश्वास मैं दिखा सकता हूं कि मेरी हर रचना जिसे मैं प्रकाशित करता हूं नये मनुष्य को या मनुष्य के नये संबंध को खोजती है।"

अपने कविता संग्रह 'लोग भूल गये हैं' के निवेदन में उन्होंने लिखा है–"आज अन्याय और दासता की पोषक और समर्थक शक्तियों, ने मानवीय रिश्तों को बिगाड़ने की प्रक्रिया में वह स्थिति पैदा कर दी है कि अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले जन मानवीय अधिकार की अपनी हर लड़ाई को एक पराजय बनता हुआ पा रहे हैं। संघर्ष की रणनीतियां उन्हीं के आदर्शों की पूर्ति करती दिखायी दे रही हैं जिनके विरुद्ध संघर्ष है, क्योंकि संघर्ष का आधार नये मानवीय रिश्तों की खोज नहीं रह गया है। नएपन और बराबरी के लिए हम जिस समाज की कल्पना करते हैं उसमें मानवीय रिश्तों की शक्ल क्या होगी यह उस समाज के लिए संघर्ष के दौरान ही तय होना चाहिए। कवि इस संघर्ष में बार-बार मानवीय रिश्तों की खोज करेगा और उनको जांचेगा, सुधारेगा, बनाएगा और फैलायेगा।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि नये मनुष्य, नये संबंधों, मानवीय रिश्तों की तलाश रघुवीर सहाय की रचना का मूल उद्देश्य है।

कविता के अमरत्व के बारे में कवि की धारणा यह बनी हुई है कि कविता अमर नहीं होती अपितु लिखी जाने के पश्चात वह एक जीवन जीती है तथा कभी-कभी उसका जीवन लंबा भी हो जाता है। कवि ने कविता को लिखी जाते ही मर जाने वाली भी कहा है।

एक स्थान पर सहाय ने कहा है कि रोज-रोज का सहा हुआ दर्द, एक लंबा अनुभव काल के विस्तार के किसी क्षण में रचना का रूप ले लेता है। प्रतिदिन के जो अनुभव हैं वह सृजन के क्षणों में दीप्त होकर रचना का निर्माण कर देते हैं। यह कलाकार की लम्बी साधना का परिमाण है। अचानक ही रचना नहीं हो जाती। इसी विचार को साहित्यकार यतीन्द्र नाथ गौड़ ने अपनी इन पंक्तियों में कुछ इस प्रकार कहा है–

'आज का कवि है भोगी
भोगकर मिलता उसे जो ज्ञान।
भावना के ज्वालामुखी से फूट,
बन जाता वही कविता का प्राण

अर्थात आज का समय राजा-रजवाड़ों का समय नहीं है जब कवि राजा के 'मूड' को देखकर उनको खुश करने के उद्देश्य से कविता रचा करते थे। आज के समय में कवि जो अपने आस-पास के वातावरण में अपने अनुभवों से लेता है, जीवन में जो भोगता है, उसे ही अपनी रचना का विषय बना लेता है।

विष्णु नागर, प्रयाग शुक्ल, मंगलेश डबराल और अपद जैदी से की गई बातचीत के क्रम में रघुवीर सहाय ने अपनी कुछ महत्वपूर्ण कविताओं के विषय में अपने बेबाक विचार दिये हैं जो उनकी सृजन प्रक्रिया के संदर्भ में बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। अत: कहा जा सकता है कि सहाय ने अनुभूति के धरातल पर जिसको महसूस किया, उसी को अपनी कविता में वाणी दी। उनके अनुभव ही कविता के रूप में सामने आते हैं।

सभी कवियों ने अपने लिखने के विषय में अपने-अपने अलग-अलग विचार दिए हैं। सहाय ने भी लिखने के विषय में अपने विचार कुछ यूं रखे हैं–"सबसे बड़ा आत्महनन जो किया जा सकता है वह है लिखना। अब हम कैसे बताएं कि लिखना कितना बड़ा दर्द है, कितना बड़ा त्याग है। बताना मुश्किल है, क्योंकि वह कई एक ऐसी वस्तुओं का त्याग है जिन्हें साधारणतया कोई महत्व नहीं दिया जाता।"

रघुवीर सहाय ने कविता में ईमानदारी को 'मौलिक' और 'निरपेक्ष' गुण घोषित करते हुए 'अविभाजित बुद्धि' के एक ऐसे स्तर के रूप में परिभाषित किया है जो वास्तविकता के संदर्भ में सार्थक है।

कविता में क्रांति के विषय में अपने विचार सहाय ने कुछ इस प्रकार दिए हैं–कविता में क्रांति क्या है? वह समाज में एक नया मानव संबंध पहचानने के परिणाम में अभिव्यक्ति का विस्फोट है। मानव राग-विराग में कुछ भी नया नहीं है। नया केवल मानव संबंध में है, जिसे हम बार-बार पहचानते हैं और एक ऐसा सत्य पाते हैं जिसके लिए भाषा को तोड़ने की और फिर बनाने की जरूरत पड़ती है। ऐसे सत्य को पाने के लिए इस धरती की प्राकृतिक संपदा के साथ मनुष्य क्या कर रहा है और ऐसा करते हुए मनुष्य को कितना मुक्त कर रहा है या कितना पराधीन कर रहा है, यह जानना जरूरी होता है। किंतु इतना जान लेने से ही कवि सुनिश्चित नहीं कर सकता कि दो मनुष्यों में से किसके साथ उसका संबंध होगा। एक मौलिक चिंता मनुष्य की बराबरी, न्याय, अधिकार, स्वतंत्रता और प्रेम के पक्ष में होनी चाहिए। यह चिंता कवि को उन अन्य प्राणियों से विशिष्ट बनाती है जो इन मान्यताओं के विरुद्ध सक्रिय शक्तियों का जाने-अनजाने साथ देते हैं। यह चिंता कवि को उन पक्षधरों से भी विशिष्ट बनाती है, जो संगठित होकर इन्हीं मान्यताओं के पक्ष में आग्रह करते हैं और अपने संगठन की सीमाओं में स्वयं को बांध लेते हैं।

रघुवीर सहाय कवि होने के साथ ही एक साहित्य चिंतक भी हैं। अपने कविता लिखने के आरंभ और अपने ऊपर पड़े हिंदी के विशिष्ट कवियों के प्रभाव की चर्चा करते हुए दूसरा सप्तक के अपने वक्तव्य में उन्होंने माना है–"मैंने 1947 में एक बार 'बच्चन' की कविताएं

पढ़ीं और उनकी वेदना से मेरा कंठ फूटा। तभी से लिखना आरंभ किया। कुछ समय बाद माथुर के कुछ सफल और कुछ असफल रंगों ने मुझे अपनी थोड़ी-बहुत सामर्थ्य का बोध कराया और मैंने अपनी कला के प्रति सजग होकर लिखने की कोशिश की।''

पंत और निराला की कविताओं ने भी सहाय को प्रभावित किया था। अज्ञेय और शमशेर बहादुर की बौद्धिक आत्मानुभूति और बोधगम्य दुरूहता ने भी किसी हद तक सहाय को प्रभावित किया। उन्हें कविता लिखने के लिए तैयार भी किया।

उनकी शुरुआती दौर की एक कविता है। इसे कविता न कहकर 'नमूना' भी कह सकते हैं–कविता का नमूना। यहां उनका संदेश है–यदि कवि बनना है, कविता लिखना है तो परंपरा से आगे निकल कर चलो– कुछ नया सीखो–कुछ नई बात बोलो। एक तरह से देखा जाए तो उनकी यह सीख नई कविता के लिए एक मंत्र-वाक्य सरीखी है–

कविता देखिये–

'अगर कहीं मैं तोता होता
तोता होता तो क्या होता?
तोता होता
होता तो फिर?
होता, फिर क्या?
होता क्या?
मैं तोता होता।'

सारांश में कहें तो छायावादोत्तर वैयक्तिक काव्य से लेकर नयी कविता तक के सभी अग्रणी कवियों का किसी-न-किसी रूप में सहाय के कवि मन पर प्रभाव छाया रहा।

सुरेश शर्मा ने रघुवीर सहाय द्वारा लिखित 'कामना' शीर्षक कविता को उनकी पहली कविता कहा है। यह कविता 7 अक्टूबर, सन् 1946 को लिखी गयी थी किंतु यह कहीं प्रकाशित नहीं हुई थी। उनकी प्रकाशित होने वाली पहली कविता 'आजकल' पत्रिका की है जो अगस्त, 1947 के अंक में प्रकाशित की गई थी। इसका शीर्षक था, 'आदिम संगीत।'

सन् 1951 में उनके महत्वपूर्ण कवि रूप को स्वीकार करते हुए अज्ञेय जी ने भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता और धर्मवीर भारती जैसे कवियों के साथ रघुवीर सहाय को 'दूसरा सप्तक' में सम्मिलित किया था। इस सप्तक में रघुवीर सहाय की छोटी-बड़ी चौदह कविताएं ली गई थीं जिसमें उनकी एक गजल भी है। परंतु कुल मिलाकर 'दूसरा सप्तक' में ली गई रघुवीर सहाय की कविताएं काव्य विकास की दृष्टि से कवि का आरंभ ही कहीं जाएंगी।

काव्य-साधना के अंतिम दौर में या पड़ाव में रघुवीर सहाय ने 'कुछ पते, कुछ चिट्ठियां' कविता संग्रह के निवेदन में लिखा है–''कविता का आज का संकट नया नहीं है। नया केवल संघर्ष के पिछले दौर में पराजय का बोध है और साथ ही यह प्रश्न भी कि अन्याय और दासता की पोषक और समर्थक शक्तियों में जब ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि मानवीय अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले अपनी हर लड़ाई में उन्हीं के आदर्शों की पूर्ति करते दिख रहे हैं, जिनके विरुद्ध संघर्ष है, तब रचनाकार इस संघर्ष में अपनी हिस्सेदारी कैसे निबाहे।''

'एक समय था' रघुवीर सहाय का अंतिम काव्य-संग्रह था। इस संग्रह को सहाय की मृत्यु के उपरांत सन् 1995 में राजकमल प्रकाशन ने प्रकाशित किया था। इस संग्रह के संकलनकर्ता और संपादक हैं–सुरेश शर्मा। इस संग्रह में कुल 78 कविताएं संग्रहित हैं। ये प्राय: सभी कविताएं रघुवीर सहाय के जीवन के अंतिम चार-पांच वर्षों के दौर की ही हैं।

इन पंक्तियों में सहाय की मृत्यु के कुछ पहले की सोच को रेखांकित किया जा सकता है। एक तरह से इस संग्रह में कवि के व्यक्तित्व की संपूर्णता को लक्ष्य किया जा सकता है। कुछ नयापन भी इस संग्रह की कविताओं में देखा जा सकता है।

10.5 पाठांश

10.5.1 तोड़ो

तोड़ो तोड़ो तोड़ो
ये पत्थर ये चट्टानें
ये झूठे बंधन टूटें
तो धरती की हम जानें
सुनते हैं मिट्टी में रस है जिससे उगती दूब है
अपने मन के मैदानों पर व्यापी कैसी ऊब है
आधे आधे गाने

तोड़ो तोड़ो तोड़ो
ये ऊसर बंजर तोड़ो
ये चरती परती तोड़ो
सब खेत बना कर छोड़ो
मिट्टी में रस होगा ही जब वह पोसेगी बीज को
हम इसको क्या कर डालें इस अपने मन की खीज को?
गोड़ो गोड़ो गोड़ो

प्रसंग

कवि रघुवीर सहाय की प्रस्तुत कविता उनके कविता-संग्रह 'सीढ़ियों पर धूप में' से ली गई है। 'सीढ़ियों पर धूप में' सहाय का प्रथम काव्य संग्रह है। इसमें उनकी शुरुआती कविताएं अधिक हैं। इस संग्रह में प्रकृति से संबंधित कविताएं बहुत ही सशक्त बन पड़ी हैं। उन्हीं में से एक कविता 'तोड़ो' भी है। इस कविता में कवि ने बंजर और पथरीली जमीन को खेती योग्य जमीन में बदलने की बात कही है।

व्याख्या

कवि कहता है कि इस पथरीली बेकार जमीन को तोड़-तोड़कर समतल करो। जब हम ऐसा कर पाएंगे तभी तो इस धरती की अंदरूनी विशेषताओं को, इसके गुणों को समझ पाएंगे, देख पाएंगे। आगे कवि कहता है कि अब तक हम सुनते आए हैं कि मिट्टी में रस होता है जिससे धरती में दूब घास उगती है। फिर कवि धरती को मन की उपमा देते हुए आगे कहते हैं कि हमारे मन की भी लगभग ऐसी ही दशा है, तभी तो हमारा मन उबाऊ होता है अथवा रहता

है। आधे-अधूरे हमारे कर्म रहते हैं। इसलिए इन बंधनों को तोड़ो तोड़ो और तोड़ डालो। जो तक पुराना नहीं हटेगा अथवा उसे नहीं हटाओगे तब तक नया नहीं पा सकोगे। इसलिए ऊसर बंजर को खेती योग्य जमीन में बदलना आवश्यक है। इस चारागाह, इस बेकार पड़ी जमीन को उपज योग्य बनाओ। तभी तो ये धरती हमें बहुत कुछ दे पाएगी। इसलिए सारी जमीन को खेतों के रूप में बदलने का श्रम कर डालो। जब खेत में बीज डाला जाएगा तब वह अपने अंदर के रस से बीज को प्रस्फुटित करेगी ही। जब ऐसा होगा तब ही हमारे मन में जो ऊहापोह की स्थिति है, असमंजस की स्थिति है उसका निवारण हो पायेगा। इसलिए कवि बार-बार खेत योग्य जमीन बनाकर उसमें गुड़ाई करने की बात को दोहराता रहता है। कवि का मानना है कि धरती अन्न, फसल देने योग्य हो पाएगी, सोना उगलेगी। इसलिए जमीन की गुड़ाई का काम तो करना ही होगा।

विशेष

1. श्रम करने पर बल एवं उसके फल की महत्ता का प्रतिपादन।
2. धरती को मनरूपी बताकर मन को धरती की तुलना में रखकर धरती की उपमा मन से भी करना।
3. मन को भी कर्म का पाठ पढ़ाने का प्रयोग।

10.5.2 पढ़िए गीता

पढ़िए गीता
बनिए सीता
फिर इन सब में लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घर-बार बसाइए।

होंय कँटीली
आँखें गीली
लकड़ी सीली, तबियत ढीली
घर की सबसे बड़ी पतीली
भरकर भात पसाइए।

प्रसंग

प्रस्तुत कविता रघुवीर सहाय के कविता-संग्रह 'सीढ़ियों पर धूप में' से ली गयी है। इस कविता में मध्यवर्गीय नारी की विवाह के बाद की जिन्दगी का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। मार्मिक स्थिति में भी कवि ने अपनी व्यंग्यात्मक शैली की पकड़ ढीली नहीं होने दी है।

व्याख्या

कवि का घर के चहारदीवारी में घुट-घुटकर बेबसी में जीवन काटती युवा स्त्री की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए कहना है कि–चाहे धार्मिक रहिए, चाहे समाज में भले और सज्जन

बनने का ढोंग करते रहिए किंतु इन सबमें पलीता (आग) लगा दीजिए। युवती को परिणय-सूत्र में बांधकर पत्नी का रूप देकर घर में ले आइए। आगे कवि व्यंग्य के बाण चलाते हुए मार्मिकता का दामन छोड़ते हुए कहता है–चाहे पत्नी गुस्सैल हो, चाहे रोती रहे, कुढ़ती-दबती, मरती-खपती रहे, अंदर ही अंदर सिंदड़ती रहे, इसकी आप तनिक भी चिंता मत कीजिए। चाहे वह बीमार हो जाए, आपको क्या? आप इसकी चिंता तनिक भी मत कीजिए, क्योंकि आपके घर-परिवार की सबसे बड़ी कार्य करने वाली पात्र तो वह ही है जिसे जैसे भी चाहो, उसके मन-गुन की जाने बिना आप अपना मतलब निकालिए, अपना उल्लू सीधा कीजिए। उससे उसी हालत में पूरा खाना बनवाइए और फिर दाल-भात बनवाकर चौड़े होकर खाइए। उसकी तनिक भी परवाह मत कीजिए चूंकि वह आपकी परिणीता जो है और आप उसके? आपके उसके प्रति कोई कर्तव्य हो ही नहीं सकते।

विशेष

1. मध्यवर्गीय नारी की दयनीय और कुंठित-लुंठित जिंदगी का अनूठा वर्णन।
2. स्त्री के लिए अभिनव किंतु अब तक अप्रयुक्त होने वाले विशेषणों का प्रयोग।
3. व्यंग्यपूर्ण शैली का स्वस्थ दर्शन।
4. पुरुष-प्रधान समाज की मानसिकता का चित्रण।

गतिविधि

रघुवीर सहाय द्वारा रचित काव्य-संग्रह 'आत्महत्या के विरुद्ध' में सहाय ने संपूर्ण शासन तंत्र पर करारा व्यंग्य किया है। उनके इस काव्य-संग्रह का अध्ययन कर आज के राजनीतिक यथार्थ के साथ उसकी तुलना कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

रघुवीर सहाय 'नवभारत टाइम्स' के सह-संपादक रहे। प्रसिद्ध टी.वी. न्यूज रीडर मंजरी जोशी इनकी पुत्री है।

10.6 सारांश

रघुवीर सहाय 'दूसरा सप्तक' के कवि थे। उनका मिज़ाज एकदम अलग और अपनी ही तरह का था। वे तोड़ने और फिर साथ-साथ नया जोड़ने में विश्वास रखते थे। रघुवीर सहाय ने हरिवंश राय बच्चन और गिरिजा कुमार माथुर के रंग संयोजन के प्रभाव में आकर लिखना शुरू किया परंतु जल्दी ही वे इस बंधन से मुक्त होकर अपनी ही नयी राह पर चल पड़े। उनका पहला काव्य संग्रह, 'सीढ़ियों पर धूप में' था।

रघुवीर सहाय ने प्रेम और प्रकृति को भी अपनी कविता में स्थान दिया। उन पर भी नये ढंग से कलम चलायी। 'सीढ़ियों पर धूप में' काव्य-संग्रह में जो प्रेम कविताएं आयी हैं, उनमें विशेष बात यह है कि उनमें से फालतू की रोमानियत निकल गई है और उनके स्थान पर अनुभूति को बौद्धिकता अथवा चिंतनशीलता का सामिप्य मिल गया है। रघुवीर सहाय की

बाद की कविताओं में क्रूर यथार्थ के दर्शन होते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के सामान्य जीवन में राजनीतिक हस्तक्षेप का जितना गहरा साक्षात्कार उनकी कविताओं में दिखता है उतना और वैसा शायद ही किसी और कवि की रचनाओं में दिखता है। रघुवीर सहाय ने अपने समय की परिस्थितियों को बड़ी ही गंभीरता के साथ महसूस किया है। उन्होंने लोकतंत्र में क्रूरता होने के कारण इस क्रूर राजनैतिक व्यवस्था में मरते हुए मतदाता की समस्याओं को, उसकी चिंताओं को, विसंगतियों को अपनी कविताओं का विषय बनाया है। यह रोज तिल-तिलकर मरता मतदाता उनकी कविता का केंद्र बिंदु है। इन्होंने अपनी साठोत्तरी कविताओं में बर्बर व्यवस्था के मनुष्य विरोधी दुहरे चरित्र को नग्न करने का प्रयास किया है।

सहाय स्त्री जाति के प्रति भावुक नहीं हैं। वे स्त्री की आज की दशा के लिए उसे ही जिम्मेदार ठहराते हैं। रघुवीर सहाय की खूबी है कि वे सरल भाषा में कोई सरल बात नहीं करते, स्थिति की पेचीदगी से परिचित कराते हैं। स्थिति में छिपी विडंबना को वे एकदम से पकड़ लेते हैं और उसकी भयावहता को भी सशक्त ढंग से चित्रित करते हैं।

रघुवीर सहाय ने अपनी कविता में राजनीतिक चेतना खूब उजागर की है। उन्होंने पुरानी भाषा, पुराने शब्दों को तोड़कर नयी भाषा और नये शब्दों एवं वाक्यों को गढ़ा है। सहाय जन-साधारण के कवि थे। इसलिए उन्होंने आम आदमी की हर पीड़ा को जी भरकर समझा और उसे अपनी कविता में भरपूर स्थान दिया है। आज के पतनशील समाज के प्रति कवि की दृष्टि विरोध की रही है। यही कारण है कि नयी कविता के खेमे में सहाय को भी सशक्त स्थान मिला है।

10.7 मुख्य शब्दावली

- **छोकरी** : लड़की
- **सयाना** : समझदार
- **क्षुधित** : भूखी/भूखा
- **गीली** : पानी में भिगोयी हुई, नम
- **सीली** : सीलन युक्त
- **कंटीली** : कांटों वाली

10.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. 9 दिसंबर, सन् 1929 को लखनऊ में।
2. 'दूसरा सप्तक' के।
3. सन् 1962 में।
4. आत्महत्या के विरुद्ध।
5. हर रोज तिल-तिलकर मरता मतदाता।
6. 'हंसो हंसो जल्दी हंसो' काव्य-संग्रह की कविता 'आने वाला खतरा' से।

7. 'एक अधेड़ भारतीय आत्मा' में।

8. 'लोग भूल गए हैं'।

9. 'क्षुधित' और 'मुदित' शब्दों को।

10. सपाटबयानी।

11. गतिबोधक बिंब

12. डॉ. नामवर सिंह ने।

13. 'सहज प्रवाहमान' भाषा।

14. आम आदमी को।

15. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, श्रीकांत वर्मा और धूमिल।

16. नये मनुष्य, नये संबंधों और मानवीय रिश्तों की तलाश।

17. 'कामना' कविता को।

18. 7 अक्टूबर, सन् 1946 को।

19. चौदह कविताएं।

20. एक समय था।

10.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. रघुवीर सहाय के कार्यकाल से क्या समझते हैं?
2. 'संग्रह' से काव्य-जगत में क्या तात्पर्य है?
3. 'संकलन' से आप क्या समझते हैं?
4. आपके अनुसार 'कविता' किसे कहते हैं?
5. 'भाषा' से क्या तात्पर्य है?
6. 'हास्य' और 'व्यंग्य' में अंतर स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. रघुवीर सहाय किस-किस प्रतिभा के धनी थे?
2. रघुवीर सहाय के काव्य में 'राजनैतिक कड़वाहट' के कारणों को रेखांकित करते हुए उन पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
3. रघुवीर सहाय के भाषा-प्रयोग की विवेचना कीजिए।
4. रघुवीर सहाय अपने समकालीन कवियों से किस प्रकार भिन्न थे?
5. रघुवीर सहाय की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

6. सप्रसंग व्याख्या कीजिए-

(क) ये ऊसर बंजर तोड़ो.....गोड़ो।

(ख) होंय कँटीली पढ़िए गीता.....भात पसाइए।

10.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. नन्दकिशोर नवल, *आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास*, भारतीय ज्ञानपीठ, 2012.
2. डॉ. अनंतकीर्ति तिवारी, *रघुवीर सहाय की काव्यानुभूति और काव्यभाषा*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1996.

इकाई 2 महेश्वर तिवारी एवं दुष्यंत कुमार

2.0 परिचय

महेश्वर तिवारी का जन्म ग्राम मलौली, जनपद बस्ती (संत कबीर नगर), उत्तर प्रदेश में दिनांक 22 जुलाई, सन् 1939 को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री श्याम बिहारी तिवारी था। वे लगभग दो दशकों तक प्राध्यापन तथा पत्रकारिता से जुड़े रहने के बाद स्वतंत्र लेखन में व्यस्त हो गए। उनकी कुछ प्रमुख कृतियां हैं–हरसिंगार कोई तो हो, नदी का अकेलापन, सच की कोई शर्त नहीं, फूल आए हैं कनेरों में (सभी नवगीत संग्रह)। आपकी रचनाएं प्रमुख राष्ट्रीय समाचार पत्रों, साहित्यिक पत्रिकाओं तथा अनेक समवेत संकलनों में प्रकाशित हुई। दूरदर्शन दिल्ली, लखनऊ तथा आकाशवाणी, रामपुर व बरेली से अनेक बार कविता-कार्यक्रम भी प्रसारित हुए।

आपके नवगीतों का विभिन्न भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी में भी अनुवाद अस्तित्व में आया। वीनस कम्पनी द्वारा कैसेट काव्य-माला भी बाज़ारों तथा साहित्यिक संस्थाओं में उपलब्ध कराई गई है।

महेश्वर तिवारी को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान सहित शताधिक संस्थाओं की ओर से सम्मानित किया गया है।

इनका मुख्य सृजन नवगीत ही रहा है। वैसे इन्होंने साहित्य की अन्य विधाओं जैसे-गज़ल व नई कविता आदि का भी सृजन किया है।

तिवारी जी ने विभिन्न नगरों (गोरखपुर, बनारस, होशंगाबाद, विदिशा आदि-आदि) में अपने दीर्घकालिक प्रवास की अवधि में न केवल गीत-नवगीत के परचम को फहराये रखा बल्कि मुरादाबाद में स्थायी रूप से रच-बस जाने के पश्चात भी उनकी यह साधना अनवरत अभी भी जारी है।

इनके नवगीत समय-समय पर जिन महत्वपूर्ण संकलनों में प्रकाशित होते रहे हैं उनमें से कुछ ये हैं–'पांच जोड़ बांसुरी, एक सप्तक और, नवगीत दशक दो, यात्रा में साथ-साथ, गीतायन, स्वान्तः सुखाय आदि-आदि।

जब उन्हें बरेली से 'विष्णु प्रभाकर स्मृति साहित्य सम्मान-2011' से विभूषित किया गया तो वे अत्यंत भाव-विभोर हो गए। कारण, वे अपने प्रारंभिक काल से विष्णु प्रभाकर एवं शरद जोशी के अत्यंत प्रशंसक रहे हैं। उनके नाम से यह सम्मान मिलना उनके लिए बड़े ही गौरव की बात थी। आपके कुछ प्रमुख नवगीत हैं–सोये हैं पेड़, झील का ठहरा हुआ जल, याद तुम्हारी, आओ हम धूप-वृक्ष काटें, सारे दिन पढ़ते अखबार, गहरे-गहरे से पद-चिह्न, मन है, मुड़ गए जो, टूटे खपरैल-सी, फागुन का रथ, चिरंतन वसंत, गया साल आदि।

11.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- नवगीत परंपरा में महेश्वर तिवारी के योगदान व उनके स्थान का अध्ययन कर पाएंगे;
- महेश्वर तिवारी के नवगीतों में भाव-सौंदर्य व शिल्पगत वैशिष्ट्य की विस्तृत विवेचना कर पाएंगे;
- महेश्वर तिवारी की कविताओं की व्याख्या व उनके शिल्प का विश्लेषण कर पाएंगे।

11.2 नवगीत परंपरा में महेश्वर तिवारी का स्थान

महेश्वर तिवारी हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। उन्होंने साहित्य की अन्य विधाओं में भी उत्तम स्तर का लेखन किया है परंतु उनका नाम, उनका लेखन एक मधुर स्वर, पैनी दृष्टि और लोकधर्मी नव गीतकार के रूप में शीर्ष स्थान पर है। भाषा का विलक्षण और सटीक प्रयोग व जीवंतता में बिम्बों की उद्भावना उनकी निजी विशेषता है। उनकी जड़ें अपनी परंपरा और जमीन में बहुत गहरे तक मजबूती के साथ धंसी हुई हैं, जहां से उनकी रचनाओं को अक्षय जीवनी-शक्ति प्राप्त होती रहती है। उनके रस का स्रोत लोक हृदय है जो अथाह और अपार है।

काव्य-प्रवृत्तियों की दृष्टि से महेश्वर तिवारी को नवगीत के प्रतिनिधि कवियों में सम्माननीय स्थान प्राप्त है। उनकी कविता यात्रा पिछली शताब्दी के छठे दशक से शुरू होकर अनवरत् गतिशील है। यह दशक हिंदी कविता के अति संकुल परिवेश का प्रतिनिधित्व करता है। यह काल कविता की भिन्नता का काल भी कहा जा सकता है। तब नयी कविता अपने पांव जमा चुकी थी। गीत का विरोध चल रहा था। उसका काया-कल्प एक युगीन जरूरत बन चुका था। निराला जी अपने ढ़ंग से गीत को नयी-नयी छवियों से समृद्ध करने में जुटे थे। एक नई जन-चेतना गीत के साथ जुड़ रही थी। नवगीत इसी काया-कल्प का परिणाम बनकर सामने आया। इसके उद्भव की प्रासंगिकता को नकारते हुए इसके विरोधियों ने एक भ्रामक तस्वीर बनाने की कोशिश भी की लेकिन इस भ्रमजाल को तोड़ते हुए महेश्वर तिवारी जी ने साफ किया है–'नवगीत नई कविता से मुकाबले के लिए ओढ़ा गया कोई आवरण नहीं है। कविता के इतिहास में यथार्थ के दबाव से इसका जन्म हुआ है। तब स्वच्छंदतावादी धारा में

तिजलिजी भावुकता या देहवादी आकुलता से सराबोर रोमानियत के गीत लिखे जा रहे थे जो गाने के लिए तो ठीक-ठाक कहे जा सकते हैं परंतु जीने के लिए नहीं। जब पूर्ववर्ती परंपरावादी गीत जीवन-यथार्थ, ऐसा यथार्थ जो बेडरूम के यथार्थ से अलग त्रिलोचन शास्त्री के शब्दों में-'मुझे जगत जीवन का प्रेमी/बना रहा है प्यार तुम्हारा।' वाला यथार्थ अपना मुंह फिराकर खड़ा था। तब नई कविता के लोग जिस गीत को केंद्र में रखकर गीत-कविता को धकियाते और गरियाते रहे वह नई कविता को ललकारने की मजबूत स्थिति में ही कहां था।''

आरंभ से ही महेश्वर जी के गीतों की जमीन अनेक विशिष्टताएं लिए रही है। कृत्रिमता और बड़बोलेपन से दूर वे जीवन के ऐसे सहज चित्र उकेरते रहे हैं जिनमें पाठक के साथ चलने की, उसकी संवेदना का हिस्सा बनने की अद्‌भुत क्षमता है। यह शक्ति उनकी काव्य भाषा की बिंबात्मकता में शुमार है। महेश्वर जी तो नवगीत की काव्य-भाषा की विशिष्टता को भी बिम्बात्मकता ही मानते हैं। उनका तो साफ-साफ मानना है कि-''नवगीत एक बिंब प्रधान काव्य-रूप है। उसमें सहजता तो अभिप्रेय है लेकिन सपाटबयानी नहीं। सपाट सिर्फ गद्य हो सकता है कविता नहीं। सहज होने और सपाट होने में अंतर है। कविता की एक विशेषता यह भी कही जाती है कि वह जितना व्यक्त करती है उतना ही अनकहा भी छोड़ देती है। दरअसल यह अनकहा ही तो कविता है।''

अपनी काव्य-रचना प्रक्रिया का बहुत ही सार्थक परिचय देते हुए तिवारी जी ने कहा है-''मैं अपने कथ्य अपने समकालीन जनजीवन से उठाता हूं। मुझे बिंब और भाषा के लिए किसी द्रविड़ प्राणायाम की आवश्यकता नहीं होती। हमारे आस-पास होती बतियाहट, जीवन के रस में डूबी शब्द-संपदा स्वयं यह मिठास भर देती है। कविता में मैंने भवानी प्रसाद मिश्र और ठाकुर प्रसाद सिंह से मिठास को पहचानना और अपनाना सीखा है। मैंने कुमार गंधर्व, पं. जसराज, किशोरी अमोनकर से संगीत की मिठास को अपने में महसूस किया है और फिर उसे अपने शब्दों में और बिंबों में पिरोने का प्रयास किया है। जिस तरह गन्ने से ऊपर का सख्त छिलका एवं गांठे हटाकर मिठास पायी जाती है, उसी तरह मैंने जीवन के खुरदरेपन में भी मिठास पाने का प्रयत्न किया है। मैंने जीवन में रिश्तों को बहुत महत्व दिया है। सबको प्यार, अपनापन देने और सबसे यह पाने का आग्रही रहा हूं। यह मिठास वहां से भी मिलती है। मेरे लिए घर मिठास का सबसे बड़ा स्रोत है। वहां से भाषा भी मिलती है और विचार भी।''

आधुनिक हिंदी कविता के सहयात्री इस सत्य को खूब जानते हैं कि महेश्वर तिवारी को नवगीत छठे दशक से ही 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' जैसी प्रमुख पत्रिकाओं में तथा समय-समय पर निकलने वाले नवगीतों के प्रतिनिधि संकलनों में प्रकाशित होते रहे हैं। 'पांच जोड़ बांसुरी', 'एक सप्तक और', 'नवगीत दशक दो', 'यात्रा में साथ-साथ', 'गीतायन' आदि में तो वे प्रकाशित हुए ही हैं। उनके 'हरसिंगार कोई तो हो', 'सच की कोई शर्त नहीं', 'नदी का अकेलापन' और 'फूल आए हैं कनेरों में' तथा नवगीत संग्रह भी समकालीन कविता में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

देखने में यह भी आया है कि कम ही गीतकार जिंदगी के उतने निकट हैं जितने तिवारी जी। अति साधारण दृश्यों और घटनाओं के बीच से असाधारण संवेदनाओं को व्यंजित करने वाले गीतों की रचना उनकी मौलिकता का सुदृढ़ आधार है। उनकी अग्रलिखित पंक्तियों पर ध्यान दें-

उंगलियों से कभी
हल्का-सा छुएं भी तो
झील का ठहरा हुआ जल
कांप जाता है।
मछलियां बेचैन हो उठतीं
देखते ही हाथ की परछाइयां।
एक कंकड़ फेंक कर देखो
कांप उठतीं हैं सभी गहराइयां
और उस पल
झुका कंधों पर क्षितिज के
हर लहर के साथ
बादल कांप जाता है।
जानते हैं हम
जब शुरू होता है कभी
कंपकंपाहट से भरा यह गंदुभी बिखराव
टूट जाता है अचानक बेतरह
एक झिल्ली की तरह पहना हुआ ठहराव
जिस तरह खूंखार
आहट से सहमकर
सरसराहट भरा जंगल कांप जाता है।

यह तो जगजाहिर है कि हम बहुत ही खूंखार समय में जीवन जी रहे हैं अथवा जिंदगी को ढो या काट रहे हैं। सत्ता और व्यवस्था के दानवी शिकंजे चारों ओर से हमें कसे हुए हैं, जकड़े हुए हैं। ऐसे भयावह वातावरण में कविता का काम सर्वाधिक जटिल और कठिन बन जाता है। तिवारी जी इस जटिल और कठिन चुनौती को अदम्य साहस के साथ स्वीकार करते हैं और बहुत ही धारदार शैली में, अपने समय के दानवी चेहरे के नकाब को उतार फेंकते हैं। भय का जो वातावरण हमारे सामने है उसका एक चेहरा भी अपने पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं। विशेषता यह है कि न तो यह नारेबाजी है और न ही नक्काशी। अब अगर यह कहें कि अनिवार्य उपस्थिति का नाम ही महेश्वर तिवारी है, तो कुछ गलत न होगा। इसके लिए इस कविता पर ध्यान दें–

"हम पसरती आग में
जलते शहर हैं
एक बिल्ली
रात भर
चक्कर लगाती है
और दहशत
जिस्म सारा
नोच जाती है
हम झुलसते हुए

बारूदी सुरंगों के
सफ़र हैं
कल उगेंगे
फूल बनकर हम
जमीनों में
सोच को
तब्दील करते
फिर यकीनों में
आज तो
ज्वालामुखी पर
थरथराते हुए घर हैं।"

अब यदि हम नवगीत की रचना प्रक्रिया की बात करें तो हम कह सकते हैं कि बिंबात्मकता के अतिरिक्त भाषा का रूपात्मक तथा प्रतीक गर्भित प्रयोग इसकी नयी शैली को बनाता है। देखने वाली बात यह है कि जहां यह प्रयोग सहज तथा संवेदना मिश्रित है, वहां वह नवगीत की उपलब्धि बना है और जहां उसे चमत्कार का बाना पहनाया गया है, वहां वह खेल और मजाक बनकर रह गया है।

जहां तक तिवारी जी की बात है तो उनके काव्य में प्रकृतिधर्मी प्रतीकों का जो अद्‌भुत प्रयोग किया गया है वह उन्हें नवगीत ही नहीं, समूची हिंदी कविता में एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी बनाता है। ऊपर दिए गए गीत में, कल जमीनों में फूल बनकर उगने और सोच को यकीनों में परिवर्तित करने का जो हल्का-सा इशारा है, उस जिजीविषा और संघर्ष को प्रकृतिधर्मी प्रतीकों का सहारा लेकर तिवारी जी ने निम्नांकित अद्‌भुत गीत रचा है–

"कुहरे में सोये हैं पेड़
पत्ता पत्ता नम है
यह सबूत क्या कम है
लगता है लिपटकर टहनियों से
बहुत बहुत
रोये हैं पेड़
जंगल का घर छूटा
कुछ कुछ भीतर टूटा
शहरों में
बेघर होकर जीते
सपनों में खोये हैं पेड़।"

यह सच है कि महेश्वर तिवारी ने रुमानियत को अभिव्यक्ति देने वाले कालजयी गीतों की भी रचना की है किंतु उनके सारे-के-सारे रचना कर्म में एक बहुत बड़ी संख्या ऐसे गीतों की भी है जिनमें अपने समय की गूंज गूंजती प्रतीत होती है। अपनी सारी सौंदर्य चेतना के चलते भी आज कविता यदि गूंगों की जुबान नहीं बन पाती तो उसकी प्रासंगिकता तो संदेह के दायरे में ही मानी जाएगी। यहां गूंगों से तात्पर्य मौन व्रत धारण करने वालों से है। मूक

दर्शकों से है, जो सब कुछ सहते हुए भी कुछ भी बोलने का साहस नहीं जुटा पाते। वह साहस जुटाने का साहसी-कर्म महेश्वर तिवारी सरीखे रचनाकार करते हैं, वह भी निर्भीक होकर।

तिवारी जी के गीतों में एक ऐसा गहरा चिंतन रचा बसा है जो स्थिति की प्रामाणिक तस्वीर ही प्रस्तुत नहीं करता अपितु वह सामाजिक संघर्ष का दस्तावेज भी सिद्ध होता है। इस दृष्टि से निःसंकोच कह सकते हैं कि महेश्वर तिवारी के गीत अपने समय के जुझारूपन के प्रमाणिक सबूत हैं। यहां यह बात भी द्रष्टव्य है कि समय के दर्द को आवाज देना पलायन का स्वर नहीं माना जाता। वह तो मानवता-विरोधी शक्तियों को पहचानकर आम आदमी (जन साधारण) को इस सुन्न कर देने वाले दर्द का अनुभव भी कराता है जिसका प्रतिकार जरूरी है। यह तथ्य महेश्वर जी के इस गीत में साकार हुआ है–

''मुड़ गए जो रास्ते चुपचाप
जंगल की तरफ,
ले गए वे एक जीवित भीड़
दलदल की तरफ।
आहटें होने लगीं सब
चीख में तब्दील,
हैं टंगी सारे घरों में
दर्द की कन्दील,
मुड़ गया इतिहास फिर
बीते हुए कल की तरफ।
हैं खड़े कुछ लोग इस
अंधे कुएं के पास,
रोज जिससे है निकलती
एक फूली लाश,
फेंक देते हैं उठाकर
जिसे हलचल की तरफ।''

ऐसे नवगीतों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि महेश्वर तिवारी ने नवगीत परंपरा को अपने बड़े ही पैने कुशाग्र कौशल से आगे बढ़ाया है। उन्हें सकारात्मक राह दिखलायी है। नवगीत परंपरा में चार चांद लगाये हैं और इस प्रकार से स्थायी रूप से अपना स्थान नवगीतकारों की श्रेणी में सुनिश्चित कर लिया है।

इसी संदर्भ में देखने वाली बात यह भी है कि नवगीत दशक-2, सन् 1983 में प्रकाशित किया गया था। उसके पहले गीतकार कुमार शिव का एक गीत था–'रुमाल-से दिन'। उसकी पंक्तियां देखिए–

''लोग पारस पत्थरों से जो लगे थे
कंकड़ों से भी गए बीते
कलश जो हमको लगे थे, जल भरे से
थे सभी प्रारंभ से रीते।''

ये पंक्तियां आज के परिदृश्य में बिल्कुल 'फिट' बैठती हैं। वैसे भी ये पंक्तियां नवगीत के विकास की दिशा और उपलब्धियों की ओर संकेत करती हैं।

हिंदी साहित्य का लिखित रूप में आरंभ 'विद्यापति' से होता है लेकिन उसकी मौखिक परंपरा हिंदी भाषा की सहजन्मा है। विद्यापति राधाकृष्ण राग-रस के साथ नग्नतम यथार्थ के गायक हैं किंतु गीत परंपरा में केवल कोमल, करुण, शृंगार-विनय को ही बार-बार दर्शाया गया है। आधुनिक युग में छायावादी गीतों ने इस पर 'ठप्पा' लगा दिया कि गीत का संबंध कटु यथार्थ से इतना नहीं है, जितना कोमल भावनाओं के साथ से है। हां निराला के कुछ गीत इसके अपवाद भी कहे जा सकते हैं।

नवगीतकारों ने गीत के क्षितिज का भरपूर विस्तार किया है और उसे कोमल भावनाओं से निकालकर संपूर्ण यथार्थ का वाहक बना दिया है। यही तो नवगीत की सबसे बड़ी उपलब्धि रही है। इन्हीं नवगीतकारों में अत्यंत महत्वपूर्ण गीतकार एवं लोकप्रिय गायक हैं–महेश्वर तिवारी। इनके प्राय: सभी गीत श्रोताओं के कंठ में आकर बस गए हैं। सच पूछा जाए तो नवगीत महेश्वर जी जैसे गीतकारों के माध्यम से ही संपूर्ण यथार्थ का वाहक बन सका है। यह अतिशयोक्ति बिल्कुल भी नहीं है। महेश्वर जी के गीत कथ्य और कला के सुघड़ मेल के लिए बार-बार दोहराये जाते हैं। महेश्वर जी अपने छोटे-छोटे गीतों में जीवन के राग-रस का भरपूर गायन करते हैं। एक तरफ ये गीत घर-आंगन, द्वार-देहरी, खेत-बागों में बिखरे झरते जीवन-मधु की मिठास से भरे हुए हैं तो दूसरी तरफ इनमें यह बताने की शक्ति भी है कि हमारा सहज जीवन-प्रवाह कहां से और क्योंकर प्रदूषित होता जा रहा है। घर-गांव को गहरी तड़प से याद करते ये गीत सीमित दायरा नहीं रखते बल्कि उसके आगे तथा और आगे भी दूर तक इनकी पहुंच दिखती है। मूलत: प्रेम संवेदना के अधिकांश गीत अपनी अर्थ-छवियों में पूरा जीवन-दृश्य उपस्थित करने में सफल रहते हैं–

स्मृति का एक गीत देखिए–

"याद तुम्हारी
जैसे कोई कंचन कलश भरे
जैसे कोई किरन अकेली पर्वत पार करे।"

कंचन कलश का भरना अभिनव प्रयोग है। मनुष्य की आदिम स्मृतियों में से एक है–नदी या झरने से मिट्टी के घड़े में जल भरने का संगीत।

महेश्वर जी का एक और गीत देखिए–

"जब इकला कपोत का जोड़ा
कंगनी पर आ जाए
दूर चिनारों के वन से
कोई वंशी स्वर आए।"

हमारी काव्य परंपरा में वंशी स्वर प्राय: तमाल वन और कदंब वृक्ष से आता है। जो राधा-कृष्ण की यादों के साथ अभिन्न भाव से जुड़ा हुआ है। यहां वह स्वर चिनार के वनों से आ रहा है।

चिनार अपने देश में केवल कश्मीर घाटी में पाये जाते हैं। कश्मीर के लोकगीतों की मिठास अद्‌भुत है, अपार है। कश्मीर की सुषमा के साथ लोक धुन की अतुलनीय मिठास भी इस वंशी की धुन के साथ लिपटी हुई है। तो ऐसा गाढ़ा रस लेकर आता हुआ यह स्वर अभिशप्त है, सूखी टहनी पर अधर रखकर सो जाने के लिए लेकिन केवल अवसाद-विषाद महेश्वर जी की प्रकृति में नहीं। इसलिए ठीक उसी क्षण वह याद आती है और सारी प्यास बुझ जाती है। प्यास बुझने की प्रक्रिया गीत की पूर्णता के क्षणों में इस प्रकार आती है कि पाठक व श्रोता के मन में अपनी अमिट छाप छोड़ जाती है–

'लगता है जैसे रीते घट से
कोई प्यास हरे।'

रीते घट (घड़े) की पूरी प्यास क्षण भर में ही कोई हर ले। वैसी ही याद है यह। गीत की पूर्णता के क्षण में पहली पंक्ति पर ध्यान दें। तब कवि का सिद्ध कौशल दिखाई पड़ता है–

"याद तुम्हारी
जैसे कोई कंचन कलश भरे।"

कंचन कलश भरने की ध्वनित रंगमयी प्रक्रिया की परिणति है– प्यासे घट। ('घट' शब्द की परंपरागत अर्थव्यंजना को स्मरण कर लें तो गीतशृंगार से आगे बढ़कर ऊर्ध्वमुखी दिखेगा।)

स्मृति का एक सिरा महेश्वरी जी ने ऊपर के गीत में रचा है। दूसरा सिरा खुलता है नाम लेकर पुकारने के बाद–

"टूटती शिराओं में तैर गया पारा–
शायद तुमने मेरा नाम ले पुकारा।
सीप और शंखों के ज्वार से लदी
कंधों तक चढ़ आई बाढ़ की नदी।
डूब गया बांहों के पुल का अँधियारा।
शायद तुमने मेरा नाम ले पुकारा।।"

कुहासे का भरना पहली किरण का स्पर्श लेकर आता है। लहरों से पांव छू जाने पर तार-तार की गुनगुनाहटें फूट उठती हैं। पहला पानी भरते ही पुरवाई डोल कर हल्दी न्यौत जाती है। डबडबायी आंखों वाली नदी बतला देती है कि बादल आ गए। सुबह-सवेरे की पवन अंगोछे में पीली धूप रख आती है।

महेश्वर तिवारी के गीत, नवगीत की उपलब्धियों को अपनी निजी कलात्मक सुघराई के साथ रेखांकित करते हैं। उनके गीत उत्कृष्ट आशा, विश्वास और जिजीविषा से भरे हुए हैं। उनके सारे-के-सारे बिंब नितांत ताजे और अछूते हैं। प्रतीकों का प्रयोग भी वे बड़े ही निराले ढ़ंग से करते हैं। वे शब्दों को पूरे संदर्भों के साथ पकड़ते हैं, इसलिए उनके गीतों में हरेक शब्द अपनी सार्थकता सिद्ध करता है।

सारांशत: कह सकते हैं कि नवगीत परंपरा में महेश्वर तिवारी का स्थान अपनी वरिष्ठता ही सिद्ध करता है।

11.3 महेश्वर तिवारी के नवगीतों का भाव-सौंदर्य एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य

समकालीन जीवन के नक्कारखाने में जहां सभ्य भाषा द्वारा महत्तर असभ्यताएं की जा रही हैं, वहां कोमल संवेदना की ध्वनियां क्या मायने रखती हैं। अगर आज की कविता का युग धर्म-संघर्ष है तो वह कितनी दूर तक अपना धर्म-निर्वाह इन कोमल नम्र ध्वनियों के सहारे कर सकेगी? किंतु ऐसे चिंतकों की कमी नहीं है जो कविता को व्यापक सामाजिक संघर्ष में अग्रणी खड़ी करके उसे आगामी मनुष्य की अग्रधाविका सिद्ध करना चाहते हैं। वे ही सामाजिक संघर्ष में कविता की भूमि को अव्यावहारिक घोषित करते हैं।

जहां तक नवगीत की बात है तो नवगीत के पास चमत्कार अभी छंद, लय और तुक के भी हैं। महेश्वर तिवारी में वे हमें अधिक मर्यादित और परंपराधर्मी दिखते हैं। जिन छंदों और लयों को तिवारी जी रचते हैं वे बेहद सुडौल और स्निग्ध होते हैं। उनमें अतिक्रामकता नहीं है। वे अपनी सीमा में ही सुंदर हैं और सुंदरता बंधनों से जन्मी है। खुलकर शायद बिखर जाए, इसलिए महेश्वर तिवारी की काव्य-भूमि उस बगीचे की तरह है जहां हर वृक्ष अपनी जगह है। उनका अपनी जगह होना ही इस बगीचे की खूबसूरती भी है। उनकी कविता का यह संदर्भ-औचित्य ही उन्हें शक्ति संपन्न कराता है। वे शाख से गिरे हुए फूलों को उठाकर फिर से शाख पर लटकाने की अतिरिक्त बुद्धिमानी नहीं दिखाते और न ही चीजों और स्थितियों में हेर-फेर की गुंजाइश खोजते हैं। वे तो चीजों को वहीं से पकड़ते हैं जहां वे हैं। उनके पांव धूप में जलते हैं, नाव रेते में थकती है, अकेली किरण पर्वत पार करती है, रिश्ते-नाते घुटनों के बल घिसटते हैं। उनकी कड़वी नीम डालों-पातों पर गहरा कर फलती-फूलती है। लहरें चांद पकड़ती हैं और शाम अंधियारा उलीचती है। और तो और तिवारी जी के पास तो ऐसे भी प्रसंग हैं जब दिन तौलिए की तरह लिपटता है, आगत मुट्ठी में पारे की तरह कांपता रहता है, लोग नकली तमगों वाले चमकदार सुलगते फरेबों में रिलते-मिलते रहते हैं।

अनुभवजन्य उपमा और संवेदनाजन्य बिंबों का यह रिश्ता-नाता महेश्वर तिवारी के गीतों में यथार्थता का बोध जताता है। भले ही यह रोमानी स्वभाव की देन ही क्यों न कही जाए लेकिन महेश्वर तिवारी ही क्यों प्रायः सभी नवगीत कवि रोमानियत के ज्यादा नजदीक हैं। ये सब गीतकार प्यारी सुषमा के गायक हैं। उमाकांत मालवीय जब गणेश चौथ के चन्द्रमा को पद करते हैं या शलभ श्रीराम सिंह सांझ के समय फूंके जाने वाले शंख के बहाने घरेलू वातावरण का चित्र अंकित करते हैं तब वे बीते दिनों की उष्ण सुंदरता में अपने कवि मन को स्नान कराते हैं। महेश्वर जी में यह उष्ण स्नान अधिक है। आधुनिक जीवन की उपमाओं, थकानों, व्यस्तताओं के निर्मम प्रहारों को भेदकर वे इस उष्ण-नहान की प्रक्रिया तक पहुंच जाते हैं। इस कविता को देखिए–

"वे पल
जो नहीं रहे पल से
जीवित हैं/आंखों के
गहरे सूनेपन में।"

तिवारी जी इस पल के लिए कितने बेचैन हैं, इसका अंदाजा सहज ही इन पंक्तियों से लगाया जा सकता है–

''सिर से पांवों तक नहला दे
मूर्छित विश्वासों वाले पठार ढंक जाएं
हाथों से आकर सहला दे
शोर-शराबों वाली भीड़ में
हरसिंगार कोई तो हो।''

उष्णता का यह आकाश उनकी व्यथा और थकान को उतना नहीं खोलता जितना कि उनके मन की सरल भावना का संसार इसके आर-पार झांकता होता है। इसे इस कवि का, गीतकार का भोलापन ही माना जा सकता है परंतु क्या इस हरसिंगार के सहलाव की अपेक्षा हममें से प्रत्येक को नहीं है। विचार जगत की कौन-सी नैतिकता है जो हमें यह कहने को विवश करती है?

कोई भी गीतकार यदि होश-औ-हवाश में रचना करता है तो वह शायद रचना के बजाय कुछ और ही लिखता है। यदि होश में वह लिखे तो भवानी भाई को कहने की जरूरत क्यों पड़ी कि जिस तरह तू लिखता है, उसी तरह दिख भी। लिखने और वैसा दिखने का जो प्रश्न है उसका सही उत्तर अभी दिया नहीं जा सका है। तब भी एकाध लोग इस साधना में लगे हुए हैं। कवि हमेशा अपने 'आत्म' को होश में रखे, कविता लिखने के पश्चात भी, तब कहीं यह उस तरह दिख भी सकता है। फिर जो अपने 'आत्म' के विस्मरण पर खड़ा है वह कब तक कवि/रचनाकार बना रह सकेगा, किंतु आज का कवि आत्म सजग कवि ही होगा। उसके चारों तरफ चुनौतियां ही चुनौतियां हैं। उसे उनसे जूझना पड़ेगा। इनसे जूझते हुए वह जिस व्यूह में उलझा रहता है, वहां रोमानियत, यथार्थ, अयथार्थ जैसे शब्द कहां ठहर सकते हैं। वह तो मानव के विश्वासों और लोक-मूल्यों की लड़ाई में ही उलझा रहता है। उसे कोई पंडिताऊ शब्दों के आतंक से विचलित नहीं किया जा सकता। महेश्वर तिवारी की कल्पनाएं हमारी सामान्य पहुंच के भीतर हैं। वे हमारी जागरुक दिलचस्पियों को लेकर खड़ी होती हैं।

महेश्वर तिवारी के कुछ गीत अपनी मानसिक स्थिति में जयशंकर प्रसाद जी की याद ताजा करते हैं। प्रसाद जी अपने प्रगीतों और नाटकीय गीतों में किसी मोहक विगत तान के प्रति द्रवणशील हैं। महेश्वर तिवारी के यथार्थ धरती की ओर लौटते हैं, इसलिए उनकी कविताएं गहरे तक प्रभावित करती हैं। उनके अवसाद का कारण जितना व्यक्तिगत है उससे कहीं अधिक सामाजिक है। उनकी कविता अपने दायित्व के बोध पर बहुत ही जागरुक है। उनकी रचनाओं के यथार्थ में शामिल हैं- नदी, सागर, दक्खिनी हवा, महकता महुआ, दहकता पलाश वन, भटकते परवेरू, गोरी किरन, आंगन में हंस का उतरना, इकले कपोत जोड़े का कंगनी पर बैठना, चौकड़ी मारता हुआ मेमना, दिन कनेरों की भुजाओं में बंधे सारे त्वचा के स्पर्श, सुर्ख गुलाबों वाला वन, गीत भरे दिन और गंध में डूबी रातें आदि-आदि।

महेश्वर तिवारी के काव्य-संसार के कुछ खूबसूरत चेहरे हैं जो कविता पढ़ते हुए हमारे हृदय को सारे आंधी-बवंडर के बीच से उठा ले जाते हैं। परंतु कविता समाप्त होने पर वे कहीं भी दिखाई नहीं देते। दिखाई देती है तो कवि की वह विवश, संकोचयुक्त मुद्रा जो अपनी कल्पनाओं की सुषमा पर गदगद किंतु ऑलपिन की तरह जीवन की चुभती हुई वास्तविकत

को लेकर बेहद परेशान है। सचमुच ही उनकी कविता एक शरण देती है, परंतु कितनी देर तक? उसके चारों ओर तो भीषण गहमागहमी है। इस कविता को देखिए–

"नदी के
इस छोर से
उस छोर तक
हम-तुम अकेले
जी रहे हैं
अनमने संबंध,
कस्बे, शहर, मेले
मुट्ठियों में दाबकर फिर
बबूलों की शाख
बादल आ गए।

× × ×

सुबह से जी मन हुआ जाता
अंधेरा पाख,
बादल छा गये।"

एक ओर तो यह जीवन की वास्तविकता है और दूसरी ओर स्मृतियों के कल्पना-लोक में डूबा हुआ कवि मन। इन दोनों में कोई तालमेल बैठे, यह हमारी जातीय चिंता है। हम तर्क और आस्था को एक घाट पर पानी पिलाना चाहते हैं क्योंकि शेर और मेमने हमारे तपोवन में इस प्रकार का अद्‌भुत सामंजस्य प्रदर्शित करते रहे हैं। महेश्वर तिवारी की कविताएं शायद इसी अद्‌भुत सामंजस्य की टोह में हैं।

जहां तक उनके शब्द-कला और कविता के व्याकरण का सवाल है तो महेश्वर तिवारी शब्दों को उनके समूचे संदर्भ के साथ पकड़ते हैं। इसलिए उनके शब्द स्वयं में कोई महत्व नहीं रखते। हां, उनके संदर्भ महत्वपूर्ण अवश्य होते हैं। उनकी भाषा इसी संदर्भ को उभारने और प्रामाणिक बनाने में दत्तचित्त है। उनका एक गीत देखिए–

"दिन मुट्ठी में बंद
पसीज रहा
टहनी-टहनी पंजा दाबे
हारिल भीज रहा
बादर-बादर
हवा-हवा में
करइल गोहुंवन
रवा-रवा में
मन के भीतर कोई
मन को
ऐसे भींज रहा।"

यहां शब्दों का होना उतना मायने नहीं रखता जितना कि उनका आपसी लगाव मायने रखता है। कुछ लोग इस गेयता को व्यावसायिकता से जोड़कर देखने लगते हैं किंतु महेश्वर तिवारी की गेयता उनके अतिरिक्त स्वर माधुर्य और सम्मोहक शक्ति पर टिकी हुई है। कविता उस पर लेशमात्र भी निर्भर नहीं करती। इस बात को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। कविता भला संगीत के संबल को पाकर कब तक जीवंत रहेगी। उसमें स्वर जैसी कोई बात आती ही नहीं। इससे उलट उसका संबंध अर्थ की रमणीयता और उसके विलक्षण प्रति-ध्वनन से है। यही प्रति-ध्वनन उस संसार का अहसास दिलाता है जो कवि के रचना क्रम का अभिप्रेत है। महेश्वर तिवारी ही नहीं और भी न जाने कितने नये-पुराने कवि अपनी ऐसी संगीतिक क्षमता के साथ आत्म रचना में रत हैं।

वस्तुत: वह रचना मूल्यवान है जो कविता के नाम से जानी जाती है। गेयता तो उसका अतिरिक्त संसार है। इसके बिना भी रचना जीवित ही रहेगी। रचना, रचना ही रहेगी जबकि सामाजिक अवसरों पर गाये जाने वाले लोक अंचलों में प्रचलित गीत यदि वे गाये नहीं गए तो वह अपनी सार्थकता ही खो देंगे। इसलिए तो वे शुद्ध गीत हैं। हां, गायन उनकी मूल शर्त है क्योंकि वे गीत हैं। साहित्यिक गीत या नवगीत इस शर्त में नहीं बंधा है। वह तो गाकर भी पढ़ा जा सकता है, परंतु इसे उसकी विवशता न समझकर शौक भर मानना ही बेहतर होगा।

जहां तक महेश्वर तिवारी के नवगीतों के भाव-सौंदर्य एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य का सवाल है तो तिवारी जी की अपने प्रियजनों से बिछोह की तड़प जब बहुत ज्यादा बढ़ जाती है तब उनकी स्थिति विद्यापति और सूरदास की उस राधा के समान हो जाती है, जब वह माधव-माधव रटती हुई स्वयं माधव बन जाती है। महेश्वर तिवारी जी अपने गांव के लिए इतना तड़पते हैं कि उनका सारा गांव उनके मन में आकर रहने लगता है। पूरा गांव उनके भीतर पानी की मानिंद बहने लगता है। पूरा का पूरा गांव उनके रोम-रोम में रम जाता है। निम्नांकित गीत इसका जीता-जागता प्रमाण है–

"मैं जिन्हें पिछले सफर में छोड़ आया था
लोग अब रहने लगे मुझमें।
कोयलों के बोल/पपिहे की रटन
पिता की खांसी/थकी मां के भजन
बन गये थे जो कभी/शापित पिता
पानियों की तरह हैं
बहने लगे मुझमें।"

अपने परिवेश से इस प्रकार का आंतरिक लगाव जहां एक ओर महेश्वरी जी को हरदम तरोताजा और हरा-भरा रखता है, वहीं संस्कृति और परंपरा में पैदा हो रही विकृतियां, बिखराव का भटकाव उन्हें पीड़ित और बेचैन कर देते हैं। धीरे-धीरे हमारे श्रेष्ठ जीवन-मूल्य तथा संवेदनाएं हमारे जीवन से ओझल होती जा रही हैं। संवादों की मिठास और सांस्कृतिक प्रवाह में अब पहले जैसी बातें नहीं रही। इस गंभीर स्थिति और व्यथा को तिवारी जी ने बहुत ही सुंदरतम् ढंग से कुछ यूं प्रस्तुत किया है–

"पढ़ने-लिखने का काशी में
नहीं रिवाज रहा।

उजड़ चुकीं संगीत सभाएं ठहरे हैं संवाद
लोग-बाग मिलते आपस में कई दिनों के बाद
गंगा सूख रही लहरों का टूटा साज रहा!
श्रेष्ठिजनों, भूखों में बस्ती का है बंटा समाज
सड़कों गलियों में शव रखकर भाग रहे सब आज
पहले जैसा अब काशी का नहीं समाज रहा।''

लोक जीवन और परिवेश से जुड़ाव का ही एक रूप महेश्वर तिवारी के प्रकृति-चित्रण संबंधी गीतों में देखने को मिलता है। वे प्रकृति प्रेमी हैं। खेत, नदी, बाग-बगीचे, जंगल, पहाड़ और पशु-पक्षी आदि सभी से उनका गहरा जुड़ाव है। विविध ऋतुओं में होने वाले परिवर्तनों के साथ उनके भीतर भी बहुत कुछ बदलता और बनता-बिगड़ता रहता है। उनके प्रकृति संबंधी गीतों में झीलों में डूबती हुई शाम है। मछुआरी किरने हैं, खरगोशों के नन्हे पांव हैं, कस्तूरी हिरनों की आंखे हैं; दिसम्बर की धूप है, मूंगिया हथेली पर लिखी जाती शाम है, आमों के बौर हैं, सीढ़ी-दर-सीढ़ी उतरता हुआ पहला पानी है, हल्दी न्योतती पुरवाई है, नदी की डबडबाई आंख है, मयूर पंख वाले दिन हैं, मीठे रस के बोल बोलती चिड़िया है, घर-आंगन को महकाते पेड़ हैं, उत्सव मनाती दूब है और सोनपंखी नन्हीं गौरेया है। इन सबका बड़ा ही सजीव चित्रण तिवारी जी ने बड़ी ही भाव-प्रवणता से किया है।

'छुवनों की थरथर' के साथ 'गहरे सामीप्य का नशा' सा चढ़ने लगता है। ऐसा गीत भी उनसे फूटता है–

''दिन हुए मयूर पंख वाले।
हंसते-हंसते चुप हो जाना/चुप्पी पहने-पहने बोलना
पलकों पर कांपते बसंत की/पंखुरी-पंखुरी थमकर खोलना
उलझनों, उदासी वाला जीवित वर्तमान
कर दें हम टीलों के, ताल के हवाले।''

मानव मन के भावों से एकाकार होकर दूब भी हरियाली के गलीचे बिछाकर उत्सव मनाती है। चिड़िया भी उल्लसित होकर मधुर गीत गाने लगती है–

मीठे रस के बोल बोलती चिड़िया चली गई।
पंखों पर आकाश तोलती चिड़िया चली गई।

आज के आत्म-केंद्रित मनुष्य की प्रकृति विमुखता से रचनाकार चिंतित है। जब वह कहता है कि–'अपने भीतर कैद हुए हम, कितना कुछ बाहर है', तो उसकी प्रकृति से न जुड़ पाने की छटपटाहट प्रकट होती है।

महेश्वर तिवारी की ख्याति प्रेम के एक मधुर गीतकार के रूप में है। उनके हृदय के साज पर प्रेम का राग बहुत संतुलित, संयमित और मधुर स्वर में बजता है। इन गीतों की विशेषता यह है कि तीव्र आकर्षण, आवेग, उल्लास, तनाव और तड़प से भरे होने पर भी ये बेहद संयमित और मर्यादित बन पड़े हैं।

यह मानव स्वभाव है कि संयोग के दिनों में प्रकृति के सौंदर्य के जो विविध उपादान मन को अच्छे लगते हैं, वियोग के दिनों में वे दुःख देने लगते हैं। पीड़ा एवं उदासी को और

गहराने लगते हैं। नवगीतकार महेश्वर तिवारी के ज्यादातर गीत युग की विसंगतियों और विडंबनाओं से बावस्ता हैं। उनकी दृष्टि समय की हर घटना पर रहती है। सन् 1960 से लेकर सन् 1980 के बीच रचे गए उनके सभी गीतों में यद्यपि उस समय की कविता और कहानी में चल रहे आंदोलनों का असर स्पष्ट दिखाई देता है तथापि ये गीत अनुभव और यथार्थ की प्रामाणिकता तथा अभिव्यक्ति की कलात्मकता की दृष्टि से काफी अच्छे बने हैं।

आज के परिवेश में बढ़ती हुई संवादहीनता और अकेलापन इतना त्रासद हो गया है कि किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को व्यथित करने के लिए काफी है। यह पीड़ा का भाव तिवारी जी के इस गीत में भी देखा जा सकता है–

"अकेलापन कहां से आ गया है।
झील-जल जो मछलियों से हिल रहा था।
बर्फ-सा जमकर अभी पथरा गया है।

× × ×

तना जाले-सा अकेलापन
कहां तक झेले अकेलामन?

महेश्वर तिवारी जनवादी विचारधारा के कवि रहे हैं। उनकी प्रतिबद्धता शोषित समुदाय के साथ हैं लेकिन विचारधारा उनके लिए बंधन नहीं, वह तो एक दृष्टि है।

इस नये ढंग के जंगली युग में मानवीय संबंध अपना मूल्य लगभग खो चुके हैं। बस मानव जैसे-तैसे करके जीवन की गाड़ी को खींच भर रहा है। कुछ एकदम नये बिंबों के माध्यम से महेश्वर जी ने इस यथार्थ को इस प्रकार देखा है–

"आसपास जंगली हवाएं हैं, मैं हूं।
पोर-पोर जलती समिधाएं हैं, मैं हूं।
अगले घुटने मोड़े, झाग उगलते घोड़े,
जबड़ों में कसती वल्गाएं हैं, मैं हूं।"

नारी जीवन सदियों से अंतहीन यातना का पर्याय बना हुआ है। स्त्रियां जीवन को सृजित करने से लेकर उसे पग-पग पर सजाती-संवारती रहती हैं। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक, बेटी, बहन, मां और अनेक रूपों में वे सतत् अपनी भूमिका का गंभीरता से निर्वाह करती हैं। वे कदम-कदम पर बंधन और वर्जनाओं को सहन करती रहती हैं। महेश्वर जी के दूसरे संग्रह 'नदी का अकेलापन' में तीन ऐसे गीत हैं- जिनका शीर्षक लड़की–1, 2, 3 है। उनके कुछ अंश देखिए–

"घर के बड़े कथानक में
बस क्षेपक या आमुख है लड़की।
मान रही है इनका कहना, उनका कहना
इतना झुककर चलने पर भी, उसको पड़ता है सब सहना।

× × ×

फूलों के पौधों-सी उगती हैं लड़कियां।
खिलती तो घर-आंगन दूर तक महकता है

पूरा पौधा खुलकर देर तक चहकता है
रेत की बुनावट को दुखती है लड़कियां।

× × ×

मां के तलुओं को सहलाती
जैसे नर्म घास है लड़की।
और पिता के पके बाल-जैसी
कुछ-कुछ उदास है लड़की।
पानी लाई, बासन मांजे। उठा कहतरी दही बिलोई
दिन चढ़ने तक साफ-सफाई/ में ही रहती अकसर खोई...
घर के बाहर जाती भी तो/घर उसके अंदर रहता है
कानाफूसी और फब्तियां/मन चुपचुप रहकर सहता है
जब से होश सम्हाला तबसे/लगती बदहवास है लड़की।''

भूमंडलीकरण और बाजारवाद उत्तर-आधुनिकता के नख-दंत हैं। अमेरिका और उसके कुछ पिछलग्गू देश सारी दुनिया पर अपना वर्चस्व स्थापित कर उसे आर्थिक उपनिवेश बनाने की प्रक्रिया में लगे हैं। महेश्वर तिवारी इस खतरे से अनभिज्ञ नहीं हैं। इसलिए वे सतर्क करते हुए कहते हैं–

''आने वाले हैं, ऐसे दिन आने वाले हैं
जो आंसू पर भी पहरे बैठाने वाले हैं।....

× × ×

पंख नोचकर चिड़ियों को ले जाने वाले हैं।

हमारे समाज में लंबे समय से चली आ रही और लगातार गहराती हुई समस्याएं हों या फिर आसन्न खतरे, सबके लिए यह जन विरोधी व्यवस्था उत्तरदायी है। महेश्वर तिवारी के नवगीतों में आज के जीवन के ताप से कोमल संवेदनाओं के खत्म होने की पीड़ा अधिक है। उन्हें लगता है कि पांव के तले पहले जैसी मुलायम घास अब नहीं रही। उनके नवगीतों में शहरी जीवन के तनावों से परेशान मध्यवर्ग का एक ऐसा आदमी है जो थक-हार कर भी अपने को बचाने के लिए छटपटा रहा है। उसका अकेलापन भी उसे खोखला बना रहा है। उसके मन के दरवाजे बंद हैं। आकाश भी बंधा हुआ है। महेश्वर तिवारी के पास संवेदनाओं और मूल्यों का गुलाब है, किंतु उसे नागफनी ने घेर रखा है। इस संदर्भ के शब्द देता उनका गीत देखें–

नागफनी से घिरे
गुलाबों का क्या करें।
हम अपने आदमकद

× × ×

ख़्वाबों का क्या करें।
चीलों ने डैनों से
आसमान घेरा

दुबका है गौरेया सा
नया सवेरा!
गोली की हद में
सुर्खाबों का क्या करें!

महेश्वर तिवारी संवेदनशून्यता, सांस्कृतिक संक्रमण, मूल्यहीनता, युग के तनाव और संघर्ष, व्यक्ति के अंतर्विरोधी चरित्र को देखकर परेशान हैं। वे थकते हैं, हार भी जाते हैं लेकिन वे पूरी तरह निराश होते हैं और न ही टूटते हैं। वे कहते हैं कि आज की ऑक्टोपस सभ्यता अपने विविध रूपों वाली टहनियों से व्यक्ति और समाज को घेरने के लिए प्रयत्नशील है। ऐसे में हमारा दायित्व और बढ़ जाता है। अतः तिवारी जी नवगीत को, आज के व्यक्ति और समाज के अस्तित्व को बचाने के लिए पहल करने वाली साहित्यिक विधा मानते हैं।

परंतु आपकी काव्य-यात्रा का उत्कर्ष नवगीत में ही दिखलाई देता है। जन-गीत ने इनकी गीत-यात्रा को एकदम दूसरी ओर मोड़ दिया है। महेश्वर तिवारी का बोध अधिकांश नवगीतकारों से थोड़ा हटकर है। नवगीत के जिन रचनाकारों ने शहरी मध्यवर्ग के अकेलेपन और आत्मयंत्रणा को अभिव्यक्ति दी है, उनमें महेश्वर तिवारी विशिष्ट हैं।

महेश्वर तिवारी का गीत-शिल्प अनूठा है। गिने-चुने नवगीतकार ही इस प्रकार की व्यंजना का संयोजन कर पाते हैं। उनकी लयात्मकता, शब्द योजना और अर्थ की संकेतिकता की गहराई अद्वितीय ही मानी जायेगी। महेश्वर तिवारी के गीत थोड़े से शब्दों, बिम्बों और प्रतीकों में अर्थ और ध्वनि को दूर तक ले जाने वाली अनुगूंज उत्पन्न करने में पूर्णरूपेण समर्थ हैं।

महेश्वर तिवारी के गीतों की अंतिम और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है–यथास्थिति को बदलने का प्रयत्न। वे सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ की विद्रूपताओं का चित्रण करके ही कर्तव्य मुक्त नहीं हो जाते अपितु वे इस बात के लिए भी सतत् प्रयत्नशील दिखते हैं कि इन सबसे मुक्त कैसे हुआ जाए? तिवारी जी वैज्ञानिक- दृष्टि संपन्न रचनाकार हैं, इसलिए जानते हैं कि अकेले-अकेले मुक्ति संभव नहीं है। वे सामूहिक मुक्ति में विश्वास रखते हैं। उनके गीतों में आशा और विश्वास का स्वर भी बड़े ही कांटे का है। एक क्षण वे जीवन की विभीषिका का वर्णन करते दिखते हैं किंतु दूसरे ही क्षण उद्दाम आशा का स्वर उनसे फूट पड़ता है–

"कल उगेंगे फूल बनकर हम जमीनों में
सोच को तब्दील करते फिर यकीनों में
आज तो ज्वालामुखी पर थरथराते घर हैं।"

महेश्वर जी परिवर्तन की आकांक्षा को बड़े कलात्मक और रचनात्मक ढंग से संघर्ष की मंजिल तक ले जाते हैं। वे इस बात के लिए भी चेताते हैं कि लोग व्यवस्था की फूट डालने वाली चालों से सावधान रहें और कुछ टुकड़ों के प्रलोभन में पड़कर अपनी आजादी को गिरवी न रखें।

सबसे खास बात जो तिवारी जी के नवगीतों में देखने को मिलती है, वह है–उनकी भाषा का भावों के अनुरूप परिवर्तित होना। बिना किसी रुकावट के उनकी भाषा सतत् बहती हुई चलती है। तथ्यों और उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि महेश्वर तिवारी के

नवगीतों का भाव-सौंदर्य जितना अनूठा है, हटकर है, मार्गदर्शी है उतना ही उनके नवगीतों का शिल्पगत वैशिष्ट्य भी अपने तरीके का, अपने ही ढंग का अनूठा है। उनके गीतों में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की गूंज सुनायी पड़ती है।

11.4 पाठांश

11.4.1 आस-पास जंगली हवाएं हैं

आसपास जंगली हवाएं हैं,
मैं हूं
पोर-पोर
जलती समिधाएं हैं
मैं हूं
आड़े-तिरछे
लगाव
बनते आते
स्वभाव
सिर धुनती
होठ की ऋचाएं हैं
मैं हूं
अगले घुटने मोड़े
झाग उगलते
घोड़े
जबड़ों में
कसती वल्गाएं हैं
मैं हूं

प्रसंग

प्रस्तुत गीत महेश्वर तिवारी के दूसरे नवगीत-संग्रह 'नदी का अकेलापन' से लिया गया है।

गीतकार ने इस आधुनिक युग को 'नये ढंग के जंगली युग' का नाम दिया है। क्योंकि यहां सारे मानवीय संबंध और मूल्य चरमरा कर रह गए हैं। अर्थ और स्वार्थ के समीकरणों से सभी प्रकार के संबंध आड़े-तिरछे बन और बिगड़ रहे हैं। आम आदमी बड़ी कठिनाईयों से वास्तविक जीवन को ढो रहा है। इसी जीवन का चित्र इस गीत में खींचा गया है।

व्याख्या

गीतकार कहता है कि आज के समाज का वातावरण बिल्कुल प्रदूषित हो चुका है। चारों तरफ हवाएं बेईमान होकर जंगलीपन पर उतर आयी हैं। ऐसे में मैं अकेला रह गया हूं। चारों तरफ नैतिकता की अस्थियां समिधा की मानिंद जल रही हैं। मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में स्वयं को असहाय और निपट अकेला पा रहा हूं। कहीं कुछ व्यवस्थित नहीं है। स्थिरता का नाम

नहीं रहा है। अच्छी बातें भी बुरी मानी जा रही हैं। ऐसे में मैं स्वयं को पूरी तरह असहाय पा रहा हूं। ऐसे वातावरण में मेरा साहस, साहस छोड़ चुका है। मेरे हौसले पस्त हो चुके हैं। सिद्धांत चरमराने लगे हैं। ऐसे में मैं कुछ करना चाहते हुए भी, कुछ भी करने में असमर्थ हूं। इसलिए कि, ऐसे वातावरण में मैं बिल्कुल अकेला पड़ गया हूं।

विशेष

1. तिवारी जी ने अपने इस नवगीत में एकदम नये बिम्बों के माध्यम से आज के यथार्थ को अपने ही ढंग से प्रस्तुत किया है।

11.4.2 धूप में भी जले हैं पांव

धूप में जब भी जले हैं पाँव
घर की याद आई
नीम की छोटी
छरहरी छाह में
डूबा हुआ मन
दुवार का आधा झुका
बरगद : पिता
मां : बँधा आगन
सफर में
जब भी दुखे हैं घाव
घर की याद आई।
यह शहर का
शोरगुल
वह गाँव का
सूता-परेता
आग में झुलसी
हुई तुलसी
धुए में जया-जेता
रेत में
जब भी थमी हैं नाव
घर की याद आई

प्रसंग

वक्त की नब्ज पहचानने वाले चर्चित शब्द-शिल्पी महेश्वर तिवारी जी का यह नवगीत उनके नवगीत-संग्रह 'हरसिंगार कोई तो हो' से लिया गया है।

परंपरागत सामाजिक मान्यताएं, पारिवारिक प्रेम-संबंध और लोक-संस्कार महेश्वर तिवारी जी के मन-प्राणों में इतने रचे-बसे हैं कि गांव-घर से बहुत दूर चले जाने पर भी उनका साथ नहीं छोड़ते। 'परदेश' में जब दु:ख-दर्द घेरता है और कठिनाईयां सामने आने लगती हैं तब घर की, गांव की याद सताने लगती है। ऐसे में गीतकार का मन कह उठता है–

व्याख्या

परदेश में, शहर में जब भी मैं तारकोल की पक्की सड़कों पर चला हूं। जब भी मेरे पांव गर्मी से जलने लगे हैं। तब मैं अपने घर की यादों से सताया जाता रहा हूं। घर के आंगन में लगे नीम के पेड़ की ठंडी छांव मुझे याद आने लगी है। घर के द्वारे पर बरगद का झुका पेड़ जो पिता के समान मुझे आश्रय देता रहा है, घर का आंगन जो मां की ममता के समान मुझे बांधे रहा है: मुझे याद आता है। यहां जब-जब भी मेरे पांव सफर में दुखने लगते हैं, तब-तब मुझे घर की याद सताने लगती है।

आगे की पंक्तियों में गीतकार अपने विचारों को ऊंचाइयां देता हुआ कहता है कि गांव का शांत एवं प्रदूषण रहित वातावरण मुझे तब बहुत याद आने लगता है जब शहर का शोरगुल और भीड़ भरा परिवेश मुझे परेशान करने लगता है। गांव के घर का लिपा-पुता आंगन, उसमें लगा तुलसी का पौधा और वहां का पूरा दृश्य मेरी आंखों के सामने तैरने लगता है। और तो और जब भी नाव यहां जल की कमी के कारण रेत में धंस जाती है, रुक जाती है तब भी मुझे गांव की, अपने घर की याद सताने लगती है और मैं परेशान हो उठता हूं।

विशेष

1. गीतकार ने गांव और वहां का वातावरण, शहर तथा उसके परिवेश का तुलनात्मक वर्णन किया है।
2. ऐसा लगता है जैसे मन गांव और शहर के झूले में झूल रहा हो।

11.4.3 अंधी सुरंग पर लेटा हुआ शहर

कोई चोर पाँव कमरे में
टहल रहा घंटों से
मन में कहीं बहुत भीतर
जीवित है यह खटका
ढूँढ हर जासूसों-सा
रिश्तों के दस्तावेज
पड़ा मेज वाली दराज में
यादों वाला पेज
आईना जो खेल-खेल में
गिरा और चटका
दहशत नींद जेब में भरकर
चली गई बाहर
सर्दियों की अंधी सुरंग पर
लेटा हुआ शहर
भीतर ज्वालामुखी कहीं पर
देता है झटका।

प्रसंग

प्रस्तुत गीत सामयिक और कालातीत यथार्थ के शब्द-चितेरे महेश्वर तिवारी के गीत-संग्रह 'हरसिंगार कोई तो हो' से लिया गया है।

इस गीत में गीतकार ने मनुष्य के अकेलेपन को विभिन्न कोणों से दिखाने का प्रयास किया है। अंधेरे को चोर की उपमा देकर गीतकार कह रहा है कि-

व्याख्या

पूरे शहर में सन्नाटा छाया हुआ है। घोर अंधकार रूपी सुरंग में कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। निपट अंधेरा हर ओर पसरा हुआ है। अंधकार चोर की मानिंद बंद कमरे में टहल रहा है। उसके मन में भय भी छाया हुआ है, जो उसे भयभीत किए हुए है। अंधेरी सुरंग और कोई नहीं बल्कि आज के मनुष्य का अकेलापन है जो उसे भयभीत किये जा रहा है। इसी अकेलेपन में वह रिश्तों की तलाश भी कर रहा है क्योंकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे समाज ही जीवित रखने में सहायक सिद्ध होता है। अन्यथा अकेलापन मनुष्य को खा जाता है। उसे अंधकार की गर्त में डाल देता है। एक ऐसी गर्त, जहां अंधेरी सुरंग उसके भीतर तक, बहुत भीतर तक बन जाती है। उस मनुष्य की यादें अकेलेपन में अपनों को तलाशती रहती हैं, जिससे उसका अंधकार रूपी अकेलापन समाप्त हो सके और वह अपनों के बीच बैठकर सुखमय जीवन व्यतीत कर सके। यह अंधेरापन, अकेलापन उसने स्वार्थवश, अहंकारवश स्वयं ही सृजित कर लिया है और अब उससे पीड़ित होने पर वह घबरा गया है। ऐसे में उसकी रात की नींद और दिन का चैन भी भयभीत होकर उससे कोसों दूर चले गए हैं।

यह अकेलेपन का घोर अंधियारा सर्दियों की ठिठुरती रातों में और भी भयावह रूप धारण कर लेता है। लगता है इस अंधी-अंधेरी सुरंग में पूरा शहर ही समा गया है। उसके अंदर का ज्वालामुखी उसे चैन से रहने नहीं देता और सोने भी नहीं देता जिससे इस अंधियारे अकेलेपन की सुरंग में इस आधुनिक मानव का मन घुटने को हो जाता है। उसे लगता है कि यह अंधी सुरंग उसे निगल जाएगी। इसी कारण से वह इस अंधियारे को दूर करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है।

विशेष

1. अंधेरे, अकेलेपन को विभिन्न कोणों से चित्रित किया गया है। सभ्यता के संदर्भ में यतीन्द्रनाथ गौड़ की ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं-

दुनिया का मेला है, फिर भी मन अकेला है।
आया था अकेला ही, जाना भी अकेला है।

और ये पंक्तियां भी-

भीड़ आगे भीड़ पीछे, भीड़ ही बस भीड़ है,
भीड़ ही में खो गया है, अब कहीं वह आदमी।
आज की इस ज़िंदगी में बन गया क्या आदमी,
शक्ल से है आदमी की पर कहां वो आदमी।

2. स्वयं स्वार्थ में सृजित किए गए अकेलेपन का अंधकार मनुष्य को खलता, व्याकुल करता और अनुत्तरित प्रश्न पूछता है। जयशंकर प्रसाद के शब्दों में-

दुष्यंत कुमार 'परदेशी' का जन्म बिजनौर जिले के ग्राम राजपुर नवादा में दिनांक 27 सितंबर, सन् 1931 में हुआ था। स्कूल रिकॉर्ड में उनकी जन्मतिथि 1 सितंबर, सन् 1933 है। अतः आगे चलकर इसी जन्मतिथि को मान्यता प्रदान की गई अर्थात 1 सितंबर, सन् 1933। उनका परिवार सामंती ठाट-बाट वाला धनाढ्य परिवार था। उन्होंने इलाहाबाद से हिंदी में एम.ए उत्तीर्ण किया था।

दुष्यंत कुमार ने हिंदी गज़ल और नई कविता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान बनाया है। हिंदी गज़ल को नया जोश, नई दिशा और नया मोड़ दिया है। वैसे उन्होंने उपन्यास, संस्मरण, कहानी, लघु-कहानी, रेडियो-रूपक, नाटक एवं एकांकी-कविता की रचना भी की थी। देखा जाए तो दुष्यंत कुमार को जो प्रतिष्ठा मिली वह विशेष रूप से उनकी बहुत ही लोकप्रिय रचना 'साये में धूप' की गज़लों के कारण ही मिली। कबीर, मीर और गालिब की तरह ही दुष्यंत कुमार की रचनाओं में भी सच्ची, अच्छी, टिकाऊ और जमीनी बातों की गंध देखी जा सकती है महसूस की जा सकती है।

उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा इलाहाबाद से ही शुरू की थी। प्रारंभ में तो उन्होंने एक, कविता, गज़ल और लघु कहानियां ही लिखीं। बाद में समय और आवश्यकता के साथ-साथ उन्होंने अपने रचना संसार को नया और विस्तृत संसार दिया। वे परिमल साहित्य अकादमी की संगोष्ठियों में भी भाग लेते थे। उस समय उन्होंने एक विशेष भारतीय समाचार-पत्र 'नये पत्ते' में भी कार्य किया था। मध्य प्रदेश के आकाशवाणी और राज्य सभा के विभाग में भी उन्होंने कार्य किया था। कविवर सुमित्रानंदन पंत को वे अपना सच्चा और अच्छा काव्य गुरु मानते थे। वे पंत जी को काव्य समर्पित करते हुए लिखते हैं–

"कि जिनके पद-चिह्नों को देख
हुआ है चलने का अभ्यास

उन्हीं के चरणों में सस्नेह
समर्पित मेरा प्रथम प्रयास।''

एकलव्य के गुरु द्रोणाचार्य के समान अपने गुरु श्रद्धेय श्री मुनिलालजी पंत के कमलों में यह अकिंचन भेंट सादर समर्पित–'परदेशी'।''

'सूर्य का स्वागत' उनका पहला बहुचर्चित व बहुप्रशंसित कविता-संग्रह है। दुष्यंत कुमार कृष्ण कौल द्वारा संपादित 'गज़ल सप्तक' के एक महत्वपूर्ण गज़लकार भी रहे। दुष्यंत कुमार त्यागी 'परदेशी' का देहांत 30 दिसंबर सन् 1975 को भोपाल (मध्य प्रदेश) में हुआ था।

दुष्यंत एक बहुआयामी व्यक्तित्व के व्यक्ति थे। कैसे अपने बलबूते पर आम से खास बना जाता है–इस बात को भली प्रकार से दुष्यंत जानते थे। कष्टों में रहकर ही प्रतिभा अपने निखार पर आती है।

दुष्यंत ने आने वाले कवियों के लिए भी एक प्रेरक का कार्य किया था। उन्होंने स्कूली शिक्षा की अपेक्षा जीवन के अनुभवों से अधिक सीखा था। इन्हीं अनुभवों ने उनके व्यक्तित्व निर्माण में बड़ा योगदान दिया था। पिता को काव्य गुरु मानने वाले दुष्यंत कुमार ने छोटी उम्र से ही कविता लिखना शुरू कर दिया था। युवावस्था में ही उनके बड़े भाई महेन्द्र की मृत्यु ने उन्हें हिला कर रख दिया। तब उनके लेखक मन ने पीड़ा और दर्द का सच्चा इतिहास अपनी कहानी 'आघात' में रचा। यह कहानी वास्तविकता के अधिक समीप थी।

दुष्यंत का प्रारंभिक जीवन भटकाव भरा था। उन्होंने मुरादाबाद में रहकर 'कोरेनशन हिंदू कॉलेज' से अप्रैल, सन् 1958 में बी.टी. उत्तीर्ण किया था। दुष्यंत के सामने आजीविका की समस्या जस-की-तस ही रही। दुष्यंत मुरादाबाद छोड़कर इलाहाबाद इस आशा में आये थे कि यहां उनको पहचानने वाले वरिष्ठ कवि, मित्र हैं जो उन्हें कहीं न कहीं काम दिला ही देंगे। वे कवि थे–सुमित्रानंदन पंत, हरिवंशराय बच्चन और रामधारी सिंह दिनकर। दिनकर जी कुछ कारणवश दुष्यंत कुमार से नाराज चल रहे थे। उन्होंने उस संबंध में प्रकाश डालते हुए लिखा भी है कि– 'मैं नौकरी के चक्कर में था और मुझे पंडित इलाचंद जोशी ने एक सिफारिशी चिट्ठी देकर दिनकर जी से मिलने की सलाह दी थी। जहां तक मुझे याद है नौकरी के मामले में दिनकर जी ने मेरी कोई मदद नहीं की। बल्कि पंडित सुमित्रानंदन पंत और जगदीश चंद्र माथुर की कृपा से मुझे आकाशवाणी में नौकरी मिली थी। कविवर हरिवंशराय बच्चन का भी उसमें काफी हाथ था। उनसे मुझे विशेष स्नेह मिला।' कुल मिलाकर दुष्यंत ने जीवन में बहुत कष्ट सहे।

12.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- दुष्यंत कुमार के जीवन व हिंदी गज़ल में दुष्यंत कुमार के स्थान का अध्ययन कर पाएंगे;
- दुष्यंत के काव्य में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन के यथार्थ का विस्तारपूर्वक वर्णन कर पाएंगे;

- दुष्यंत के काव्य-सौष्ठव का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- 'हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए' कविता के भावार्थ को आत्मसात कर पाएंगे;

12.2 हिंदी गज़ल और दुष्यंत कुमार

हिंदी साहित्य और हिंदी जगत में गज़ल एक लोकप्रिय काव्य विधा के रूप में स्थापित है। हिंदी में गज़ल लिखने की परंपरा का श्रेय कबीर, अमीर खुसरो, भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रसाद और निराला आदि को दिया जाता है। हिंदी साहित्य में गज़ल की परंपरा अरबी, फारसी और उर्दू से आई है। हिंदी गज़ल का लेखन उसी रूमानी सौंदर्य तथा प्रणय के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करना था। प्रत्येक युग में गज़लें लिखी गई मगर गज़ल का लक्ष्य मात्र प्रेमी-प्रेमिका तक ही सीमित था। युगीन समाज प्रणय भावना को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं था, इसलिए यहां गज़लों को जो सम्मान मिलना चाहिए था वह नहीं मिल रहा था। गज़ल मात्र कोठों पर गायी जाने वाली नुमाइश की चीज़ बनकर रह गई थी।

हिंदी गज़ल की परंपरा को शुरू करने वाले सभी शुरुआती कवियों ने अपनी कविता में गज़ल को लिखा। कविता उस समय से विभिन्न प्रवाहों से गुजरती हुई लोगों को प्रभावित करती रही थी। आधुनिक काल में कविताओं में भाव-कथ्य की दृष्टि से नये परिवर्तन हुए। छंद के स्थान पर अछंदस रचनाओं में बौद्धिकता से कविता हिन्दुस्तानी समाज से दूर भागी जा रही थी। स्वयं दुष्यंत कुमार आधुनिक कविता के प्रमुख कवियों में रहे हैं। उन्होंने स्वयं अनुभव किया है कि कविता और भीतर का आक्रोश अभिव्यक्त नहीं हो पा रहा है। तब उन्होंने नई कला शैली 'गज़ल' सही माध्यम समझकर इसे चुना। गज़ल में वही भाषा प्रयोग में लाई जाये जिसे जनता समझ सके। जो सामान्य जन की भाषा हो। इस विषय में दुष्यंत कुमार का मानना है–"उर्दू और हिंदी अपने-अपने सिंहासन से उतरकर जब आम आदमी को पास लाती है तो उसमें अंतर कर पाना बहुत कठिन हो जाता है। मेरी नीयत और कोशिश यह रही है कि इन दोनों भाषाओं को ज्यादा से ज्यादा करीब ला सकूं। इसलिए ये गज़लें उन भाषाओं में कही गई हैं जिन्हें मैं बोलता हूं।"

"जिंदगी में कभी-कभी ऐसा दौर आता है जब तकलीफें गुनगुनाहट के रास्ते बाहर आना चाहती हैं। उस दौर में फंसकर गमें जानां और गमें घेरों तक एक हो जाते हैं। ये गज़लें असल में ऐसे ही एक दौर की देन हैं।"

दुष्यंत कुमार ने जब हिंदी कविता से हिंदी गज़ल लिखने में कदम रखा तब गज़ल तथा रचनाओं का माहौल ठीक नहीं था। कविता मर रही थी। गज़लों में वहीं प्रेमी-प्रेमिका की बात थी गज़ल एक नया रास्ता ढूंढ़ रही थी जो रास्ता स्वयं दुष्यंत कुमार ने निकाला। सौंदर्य की पुरानी गलियों में भटकी हुई गज़ल को दुष्यंत कुमार ने आदमी की तकलीफों और इच्छाओं की सुलझी हुई वाणी बनाया।

दुष्यंत कुमार ने हिंदी गज़ल को पुरानी परंपरा से नवीन दिशा में काव्य, भाव, भाषा, बिंब, प्रतीक एवं शैली की दृष्टि से नया मोड़ दिया। दुष्यंत कुमार की गज़लों के संग्रह 'साये में धूप' ने हिंदी साहित्य में हंगामा खड़ा कर दिया। इस संग्रह की गज़लों ने लाखों-करोड़ों

की संख्या में लोगों को प्रभावित किया। गज़ल की दुनिया में दुष्यंत कुमार को जो नाम और प्रसिद्धि मिली वह शायद बहुत ही कम गज़ल लेखकों को मिली हो।

दुष्यंत की गज़लों के माननीय, सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनैतिक सरोकार बहुत गहरे थे। उनके गीतों, कविताओं और गज़लों ने प्रत्येक अवसर पर इन संबंधों और सपर्कों को बनाये रखा। समयानुसार क्रांति का परचम भी फहराया और दारूण, चिंतनीय, अमानवीय, विसंगत स्थितियों को रेखांकित भी किया। विभिन्न क्षेत्रों के संघर्षरत लोगों द्वारा दुष्यंत कुमार का यह शेर कहते सुना जा सकता है–

कैसे आकाश में सुराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो।

× × ×

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है ये सूरत बदलनी चाहिए।

× × ×

हमको पता नहीं था, हमें अब पता चला,
इस मुल्क में हमारी हुकुमत नहीं रही।

× × ×

यहां तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियां,
मुझे मालूम है पानी कहां ठहरा होगा।

× × ×

खंडहर बचे हुए हैं इमारत नहीं रही,
अच्छा हुआ हमारे घर पे कोई छत नहीं रही।

× × ×

एक गुड़िया की कई कठपुतलियों में जान है,
आज शायद ये तमाशा देखकर हैरान है।

देखा जाये तो दुष्यंत कुमार ने हिंदी गज़ल की प्रकृति को ही बदल डाला है। इस प्रकार सच्चे अर्थों में उन्होंने साहित्यकार का दायित्व निभाया है। इंसानी जिंदगी की तकलीफों एवं यातनाओं को उन्होंने करीब से देखा, महसूस किया। फिर चुप न रहकर उन्होंने सत्ताधीशों की नींदें उड़ाकर रख दी।

उनका एक शेर है जो ऊपर लिखे विचार को आधार देता है–

मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूं।
अब हर गज़ल सल्तनत के नाम एक बयान है।

सच पूछा जाये तो हिंदी गज़ल आज आम जनता की बात कहती नज़र आती है। गज़ल में सच्चाई के साथ अभिव्यक्ति को चोटदार रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता हिंदी गज़लकारों की पहचान बन चुकी है। सच कहा जाए तो आज हिंदी गज़ल ने विश्व स्तर की गज़ल में

अपना नया मुकाम बना लिया है। दुष्यंत कुमार की गज़लों के अनुशीलन द्वारा एक युग की समस्याओं से गुजरने और समझने का ये गज़लें माध्यम बनी हैं।

दुष्यंत कुमार ने पहले-पहले 'धर्म युग' और 'सारिका' पत्रिका के माध्यम से अपनी गज़लों में युग की तड़प का अंकन किया। 'साये में धूप' गज़लों के संग्रह के बीसियों संस्करण हाथों-हाथ बिक गये। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि 'साये में धूप' के प्रकाशन के बाद 'बेस्ट सैलर' पुस्तक के रचनाकार होने का गौरव भी दुष्यंत कुमार को मिला। दुष्यंत कुमार के बहुत पहले हिंदी में गज़लें कहने वालों में निराला, शमशेर, त्रिलोचन, शंभूनाथ 'शेष', विरंजीत एवं हरिकृष्ण प्रेमी जैसे कई बेहतरीन गज़लें कहने वालों के बाद भी उन्हें इतनी प्रसिद्धि नहीं मिली जितनी कि बलबीर सिंह रंग, बालस्वरूप राही और सूर्य भानु गुप्त को मिली। किंतु दुष्यंत कुमार ने गज़ल को हिंदी कविता की मुख्य धारा में सम्मिलित करने का प्रत्यक्ष अभियान चलाया। छंद में लिखने वाले अधिकांश कवि गज़लें कहने की दिशा में स्वयं को ले गये। परिणामस्वरूप साहित्यिक पत्रिकाएं गज़लें छापने में रूचि लेने लगीं। कवि सम्मेलनों में गज़लें प्रस्तुत की जाने लगीं। गज़ल लिखना और गज़ल प्रस्तुतीकरण मान-सम्मान का रचना-कर्म माना जाने लगा। देखा-देखी हर नया-पुराना कवि गज़लें कहने लगा। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि उर्दू की अत्यंत लोकप्रिय शैली को हिंदी कवि और गीतकार ले उड़े। इसका परिणाम देखने में यह भी आया कि उर्दू रचनाकारों में हिंदी गज़ल के प्रति उपेक्षा भाव भी दिखलायी देने लगा। दूसरी ओर कविता में नये प्रयोगों को करने वाले कवियों को यह शैली बहुत ही सीमित लगी और आलोचकों ने भी इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। इसके बाद भी हिंदी में गज़ल लिखने की गति में कमी नहीं आई। दुष्यंत इस मामले में शीर्ष पर ही रहे। आज स्थिति यह है कि आज हर दूसरा हिंदी गज़लकार दूसरा दुष्यंत बनने की दौड़ में शामिल हो रहा है। ऐसे ही सैंकड़ों गज़लकारों को देखकर अकबर इलाहाबादी की ये पंक्तियां दिमाग की दहलीज पर दस्तक देती-सी नज़र आती हैं–

बढ़ाई शेख़ ने दाढ़ी हज़ार सन की-सी
मगर वो बात कहां मौलवी मदन की-सी।

'साये में धूप' की विलक्षण ख्याति और केवल 52 चुभती, कुरेदती मार्मिक गज़लों के रस पर लगभग विश्वव्यापी यश पा जाने वाले दुष्यंत की लोकप्रियता ने नये उत्साही गज़लकारों को दिग्भ्रमित सा कर दिया। वे सब गज़ल कहने की धुन में यह भी भूल गए कि सफलता की इस मंजिल तक पहुंचने के लिए दुष्यंत किन-किन और कैसी-कैसी राहों से गुजरकर इस मुकाम तक पहुंचे हैं। उनकी पच्चीस वर्षीय रचना यात्रा में कौन-कौन से पड़ाव आए थे और उनकी दूसरी उल्लेखनीय रचनाएं कौन-कौन सी हैं। किंतु उत्साहियों को तो 'साये में धूप' की मात्र 52 गज़लें ही दिखाई दे रही थीं। इस भ्रम में पड़े वे धड़ल्ले से गज़लें कहने लगे। बहुतेरों ने तो एक नहीं, दो नहीं बल्कि पांच-पांच, छः-छः गज़ल संकलन प्रकाशित करा लिये थे और फिर दुष्यंत जैसी ख्याति की भी प्रतीक्षा करने लगे।

वास्तविकता यह है कि दुष्यंत कुमार के मानवीय, सामाजिक, साहित्यिक तथा राजनैतिक संपर्क बहुत ही गहरे थे। उसका भी उन्हें हर कदम पर भरपूर लाभ मिला। साथ ही उन्होंने क्रांति का झंडा भी फहराये रखा। दारूण, चिंतनीय, अमानवीय एवं विसंगत स्थितियों को रेखांकित भी किया।

इसी प्रकार सभा-समारोह, साहित्यिक गोष्ठियों तथा व्यक्तिगत बातचीत तक में दुष्यंत कुमार के ये अश्आर अब भी सुनने को मिल जाते हैं, यथा–

हमने तमाम उम्र अकेले सफर किया,
हम पर किसी खुदा की इनायत नहीं रही।
हमारा कद सिमट कर घट गया है,
हमारे पैरहन झोले हुए हैं।

और भी–

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कंवल के फूल मुरझाने लगे हैं।
ये सारा जिस्म झुककर बोझ से दोहरा हुआ होगा,
मैं सजदे में नहीं था आपको धोखा हुआ होगा।
यहां तो सिर्फ गूंगे और बहरे लोग बसते हैं,
खुदा जाने यहां पर किस तरह जलसा हुआ होगा।
कहां तो तय था चिराग़ां हरेक-घर के लिए,
कहां चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए।

वास्तव में 'साये में धूप' संकलन की हरेक गज़ल अपने अंदाज़ में निराली है। अलग-अलग लंबी-चौड़ी टिप्पणी की मांग करती प्रतीत होती है। ये गज़लें स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनैतिक, नैतिक अथवा सामाजिक स्थितियों की गज़लें नहीं हैं अपितु आपातकाल के दौर में फैली ऊहापोह, बौखलाहट की रचनाएं हैं। इन गज़लों में आम आदमी का दर्द, उसकी आकांक्षा उसकी पीड़ा और बेचैनी को आम आदमी की जुबान में ही प्रस्तुत करने वाला दस्तावेज है ये संग्रह। यही कारण है कि जनसाधारण दुष्यंत को अपना और सिर्फ अपना हमदम और मित्र मानने के साथ-साथ उन्हें अपना कवि भी स्वीकारता है।

इलाहाबाद में कमलेश्वर और मार्कण्डेय के साथ मिलकर दुष्यंत एक ऐसी शानि तिकड़ी बनाये हुए थे जो उस समय की साहित्यिक दुनिया में अपनी शरारतों, मनोविनोद, लतीफेबाजी तथा प्रतिभा संपन्नता के कारण बहुत ही विख्यात थी। यह वह समय था जब डॉ. हरिवंश राय बच्चन, धर्मवीर भारती, उपेन्द्रनाथ अश्क, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे अनेक साहित्यकार इलाहाबाद में छाए हुए थे।

दुष्यंत कुमार को विशेष रूप से गज़ल कहने के लिए जनसाधारण का गज़लकार माना गया। कारण उनकी रचनाओं में जनसाधारण की भाषा ही अधिक प्रयोग में लाई गई थी।

यह भी कहना उचित होगा कि दुष्यंत अपने व्यक्तित्व में इतने सघन, इतने जाबांज, इतने फक्कड़ और इतने जीवंत थे कि इसका दूसरा उदाहरण मिलना बहुत कठिन क्या असंभव है। वे जिस सभा में बैठते थे वह जीवंत हो उठती थी। उनका सुंदर खिला चेहरा मनहूसियत का सबसे बड़ा शत्रु था। शरद जोशी के शब्दों में–"लतीफे को सत्य घटना और सत्य घटना को लतीफा बना उड़ा देना, किसी अनजान पर मुग्ध हो उसकी प्रशंसा गाते जाना और इन सबके साथ बार-बार लौटकर बार-बार कविताएं या गज़ल लिखना, अपने बच्चों पर प्यार उड़ेलते हुए अति कर जाना, निरंतर दोस्तों को याद करना बल्कि साहित्य को कुल

अलावा कर चंद दोस्तों और दुश्मनों की गतिविधियों से अधिक न मानना और इन सबके बावजूद किसी श्रेष्ठ तथा महान लेखक के सपने संजोना दुष्यंत का स्वभाव था। मेरी इस बात पर बड़ा प्रसन्न होता था कि तू कविता समाप्त करते ही गुंडा हो जाता है।"

नियति का कैसा व्यंग्य है कि अनेक प्रतिभाएं अपने जीवन के चरमोत्कर्ष काल में ही और बहुत कम आयु में इस संसार से विदा हो गईं। हिंदी के अनेक कालजयी रचनाकार बहुत शीघ्र ही काल के गाल में समा गए। उदाहरण के लिए–भारतेंदु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, दुष्यंत कुमार और धूमिल कुछ ऐसे नाम हैं जो 40-45 वर्ष की आयु में ही दिवंगत हो गए। दुष्यंत कुमार का केवल 42 वर्ष की आयु में ही निधन हो जाना किसी वज्रपात से कम नहीं था किंतु इतनी कम उम्र में ही दुष्यंत कुमार बेजुबान, सताए हुए जनसामान्य के दुख-दर्द को वाणी देकर सदा-सदा के लिए साहित्यिक संसार में छा गए, अमर हो गए। उनकी रचनाएं मस्तिष्कों पर दस्तक देकर झकझोरती हैं। जीवित रहने, संघर्ष करने तथा अन्याय के विरुद्ध आवाज ऊंची करने की प्रेरणा देती हैं।

दुष्यंत की स्मृतियों का सबसे प्रखर दस्तावेज है, उनके मरणोपरांत उनके हमदम और मित्र जाने-माने साहित्यकार कमलेश्वर द्वारा संपादित पत्रिका 'सारिका' का 'दुष्यंत कुमार स्मृति अंक' में प्रकाशित दुष्यंत कुमार संबंधी शामी, दामोदाशर सदन, नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी, कैलाश शुंगलु और राजेश्वरी त्यागी जैसे परम आत्मीयों के संस्मरण। इसके अलावा अप्रतिम हैं वे दो पृष्ठ जिनमें दुष्यंत के दाहिने हाथ को अंधेरे से सवाल करता हुआ और बाएं हाथ को अंधेरे को रोकता हुआ बतलाया गया है। यह एक प्रतीक भी है और एक चमचमाता हुआ यथार्थ भी। सचमुच दुष्यंत कुमार आजीवन अंधेरों से सवाल करते रहे और उन्हें रोकने की फौलादी कोशिश भी। ये दुष्यंत कुमार के कुछ ऐसे पहलू थे जो बतलाते हैं कि वे जुझारू जीवन को जीने के कारण ही इतने सशक्त गज़लकार बन पाए। उनकी कुछ विशेष गज़लों के शीर्षक हैं–(1) कहां तो तय था (2) कैसे मंजर (3) देख दहलीज से, (4) कहीं पे धूप की चादर (5) मत कहो आकाश में (6) खंडहर बचे हुए हैं (7) हो गई है पीर पर्वत सी (8) जिंदगी का कोई मकसद (9) बाढ़ की संभावनाएं (10) ये धुएं का एक घेरा (11) मैं जिसे ओढ़ता-बिछाता हूं (12) होने लगी है जिस्म में.....(13) तुम्हारे पांव के नीचे (14) बहुत संभालकर रखी....., आदि-आदि।

सारांश में कहा जा सकता है कि हिंदी गज़ल और दुष्यंत कुमार एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं।

12.3 दुष्यंत के काव्य में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन का यथार्थ

हिंदी कविता में ऐसा बहुत कम हुआ है कि कोई रचनाकार अपने लेखन की शुरुआत गीतों से करे, फिर नई कविता लिखने की दिशा में रुख कर ले और युग की आकांक्षाओं, विडंबनाओं और मन की स्थितियों का चित्रण करके बहुत बड़ा यश अर्जित करने के पश्चात फिर गीत की एक शैली गज़ल कहते हुए सफलता के शिखरों को छू करके सारे परिदृश्य की सूरत को ही बदल डाले। दुष्यंत कुमार ने कुछ ऐसा ही संसार रचकर समूचे साहित्य जगत को अचंभे में डाल दिया था।

बीसवीं सदी के छठे दशक में दुष्यंत कुमार 'परदेशी' ने अपनी काव्य रचना का आरंभ गीतों से किया था। प्रेम गीत रचने के साथ-साथ उन्होंने कविता के नये रुझानों को विस्तार देते हुए कई श्रेष्ठ नयी कविताएं भी लिखीं। उनका पहला काव्य संकलन 'सूर्य का स्वागत' कविता-क्षेत्र में सुखद स्वागत का पात्र बना। फिर 'आवाजों के घेरे' के माध्यम से उन्होंने अपने अंदाज को नयी बुलंदियों पर पहुंचाया। 'एक कंठ विषपायी' काव्य नाटक दुष्यंत की प्रतिभा को नया रंग देता दिखलायी दिया, सामने आया। यहां यह बतलाना भी उचित ही रहेगा कि 'अंधा युग' के बाद दूसरा काव्य-नाटक 'एक कंठ विषपायी' को ही माना गया था। इस काव्य-नाटक का मंचन सैंकड़ों-सैंकड़ों बार हो चुका है। 'जलते हुए वन का वसंत' दुष्यंत की काव्य-यात्रा का एक उल्लेखनीय सोपान प्रकाशित होते ही साहित्य जगत में छा गया।

'आवाजों के घेरे' काव्य संकलन में दुष्यंत की आगे की कविताएं हैं। इन कविताओं के बारे में डॉ. हरिवंशराय बच्चन की टिप्पणी पढ़ने योग्य है–"रचनाएं मुझे बहुत पसंद आयीं। सोचने लगा कि किसको ज्यादा अच्छी कहूं। फैसला नहीं कर सका। फालतू की कोई चीज नहीं। व्यक्ति और समष्टि की वेदनामयी किंतु आस्थावान अनुभूतियों की ऐसी अभिव्यक्ति आज दुर्लभ है।"

अगर पैनी दृष्टि से देखा जाए तो दुष्यंत के काव्य में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन का यथार्थ छिपा हुआ है। कविवर अज्ञेय ने लिखा है–"दुख सबको मांझता है। चाहे स्वयं को मुक्ति न दे सके मगर जिन्हें मांझता है उन्हें ये सीख देता है कि दूसरों को मुक्त रखें।" इस उदाहरण को दृष्टि में रखते हुए हम कह सकते हैं कि दुष्यंत कुमार की दृष्टि जीवन के विषय में बहुत साफ थी। दुष्यंत के जीवन में अनेक तूफान आए। सच पूछा जाए तो दुष्यंत तूफान का दूसरा नाम ही थे। दुष्यंत न तो भगवान में विश्वास रखते थे और न ही उनकी उनमें श्रद्धा थी। वे समाज को, व्यक्ति को मानकर चलते थे। उनके जीवन पर बुद्ध और मार्क्स का काफी प्रभाव था। जहां गौतम बुद्ध ने कहा कि, तुम दूसरों पर आश्रित मत रहो, खुद पर जियो। अपना दीपक स्वयं बनो। इस दर्शन को दुष्यंत ने अपने जीवन में उतारकर जीवन को उसी शैली से जिया। उनका विश्वास था कि भविष्य और भूतकाल से अधिक वर्तमान है। जीवन में किसी का साथ मिले या न मिले फिर भी जिंदगी की जंग में निरंतर लड़ते रहना चाहिए। ऐसा मानने वाले कवि दुष्यंत ने जिंदगी को उसी शान-औ-शौकत से जिया। उन्होंने जिंदगी में कभी 'समझौते' को स्थान नहीं दिया। अपने आत्मविश्वास के बलबूते पर उन्होंने कठिन से कठिन परिस्थिति का सामना किया। दुष्यंत अभिमन्यु की भांति चक्रव्यूह में गिरकर भी सभी प्रकार के प्रहारों का सामना आखिरी सांस तक बिना अस्त्र-शस्त्रों के करते रहे। उन्होंने कभी भी अपने आपको निर्दोष या अपने ऊपर लगाए गए आक्षेपों को गलत ठहराने की कोशिश नहीं की। वे इतना ही कहते थे, "मैं बहुत गलत समझा गया आदमी हूं।"

दुष्यंत को शांत बैठना, सीधी-सरल जिंदगी जीना पसंद नहीं था। इस विषय में दुष्यंत के छोटे भाई प्रेम नारायण त्यागी लिखते हैं–"शमां हर रंग में जलती है सहर होने की तरह भैया जी हर रंग में, जिंदादिली से जिए।" फिर प्रेम नारायण जी आगे भी बतलाते हैं–पिताजी अक्सर एक शेर कहा करते थे–'जिंदगी जिंदादिली का नाम है, मुर्दादिल क्या ख़ाक जिया करते हैं।"

भैया ने जिंदगी को भरपूर जिया। पूरे ऐश्वर्य में जिया। अपनी मर्जी से जिया। वे बने-बनाए रास्ते पर नहीं चले। लीक से हटकर चले। व्यवस्था और क्रम से उन्हें नफरत थी। आगे भी वे बतलाते हैं–"भैया ने जीवन में जो भी किया, ठीक मानकर किया। उन्हें जो मिला

उसे सहज रूप में स्वीकारा। उस पर कभी अफसोस नहीं किया। वे न तो कभी अतीत पर पछताये और न ही कभी भविष्य के लिए चिंतित हुए। वर्तमान से बड़ा उनके लिए कुछ नहीं था। इसलिए वे अच्छा-बुरा सब कुछ सहज ढंग से स्वीकार करते चले गए। परिणाम की चिंता में उन्होंने रुपहले सुनहरे क्षणों को कभी हाथ से गंवाया नहीं। यों जिंदगी की किताब बहुत बड़ी है, पर उन्होंने यथा संभव हर पृष्ठ को पढ़ने की कोशिश जरूर की। हर नयी चीज को पाने के लिए वे बच्चों की तरह ललकते। दस झूठ-सच बोलते और पाने की कोशिश करते। इसी तरह हर नये आदमी से आत्मीयता से मिलते। बड़ी तेजी से करीब आते और जब यह जान जाते कि सामने वाला एकदम खोखला है वे उससे कुछ नहीं पा सकेंगे तो तेजी से पीछे हट जाते। जिंदगी में वे जो कुछ भी तलाश करते रहे हों उसके लिए महानगर से कस्बे तक, शहर से लेकर गांव तक, अमीर से लेकर गरीब तक भटके।''

आम आदमी का 'प्रतिनिधि' बनकर दुष्यंत समाज में अपनी रचनाओं के बल पर उभरे। उनके व्यक्तित्व की संपूर्ण ताकत, ऊर्जा, कविता ही दुष्यंत को दुष्यंत कुमार की पहचान दिलाती है। कभी उनका स्वयं का कवि 'सर्जनहार' के रूप में उपस्थित होकर रचनात्मक आयाम से बाहर आता जिससे व्यक्ति दुष्यंत को गर्व होता था। ढ़ोंगी, प्रपंची समाज के सामने प्रेम और शांति के दूत बनकर दुष्यंत जिए मगर इस समाज ने उनकी कद्र नहीं की, उनको पहचाना नहीं। इसका दर्द उन्हें जीवन भर सताता रहा। वे लिखते हैं–

''रोज जब रात को बारह का गजर होता है,
यातनाओं के अंधेरे में सफर होता है।''

दुष्यंत अपनी मंजिल स्वयं तय करते थे। वे एक युगदृष्टा कवि रहे हैं। सामाजिक जीवन की विभिन्न कमजोरियों और उसकी भीतरी पीड़ा को वे भली प्रकार जानते हैं और उसका ही वह रूप क्रांति के रूप में बाहर आता है। अंग्रेजों के चले जाने के बाद देश के नेताओं ने देश की हालत को बिगाड़कर रख दिया था। भारतीय जनता के सपनों को रौंद दिया था। सत्ता प्रेमी, कुर्सी के लालची सत्ताधीशों द्वारा प्रजा का शोषण हो रहा था। देश की जनता के सामने अंग्रेजी शासन और सन् 1962 तथा सन् 1971 में हुए पाकिस्तान के साथ युद्ध के कारण देश के अर्थतंत्र पर विकट संकट गहराया। देश में बेरोजगारी, महंगाई और जीवन में उपयोग होने वाली दैनिक वस्तुओं के दाम बेहिसाब बढ़ने लगे थे।

सत्ता में आए लोग धनवानों का हित ही सोचते रहे। गरीब और अधिक गरीब होते गए। समाज में असंतुलन छा गया। देश में भ्रष्टाचार, बेईमानी, काला धंधा, गुंडागर्दी, अंधश्रद्धा, धर्म के नाम पर लोगों का शोषण, लालच में आकर धनवान बनने के चक्कर में लोग कर्जदार होते गए। देश के युवाओं की हालत दयनीय थी। उनमें असंतोष और निराशा बढ़ने लगी थी। उनको अपना भविष्य अंधकारमय दिखने लगा था। कानून और अनुशासन का मजाक बनाया जा रहा था। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भी समाज अपनी प्रतिष्ठा खोता जा रहा था। ऐसी विषम परिस्थिति में कोई तो सही आईना दिखाने वाला हो। ऐसे में नई कविता ने अपनी पूर्ववर्ती कविता से अलग नये अंदाज और नई शैली से जनमानस पर गहरा प्रभाव छोड़ा। नई कविता का उद्देश्य वर्तमान समय की परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करना था। प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी कविता से अलग भाव-भूमि लिए नई कविता जनता का क्रोध, उसका आक्रोश थी। जीवन को करीब से देखने का दृष्टिकोण थी। मानवीय संवेदना को स्पर्श कर, उसके सुख व दुःखों, भीतरी क्लेश, पीड़ा, घुटन व दर्द आदि को आक्रोश व विद्रोह के साथ लिए नई कविता सामने आयी। हिंदी साहित्य में सन् 1950 में प्रयोगवादी कवि अपनी

कविता को नई कविता का नाम देने लगे। नई कविता के अनेक कवि पहले से प्रयोगवादी थे। दोनों में पहले कोई अंतर नहीं किया जाता था। 'सत्य' भी दोनों का एक ही माना जाता था। नई कविता की चेतना यथार्थवादी है। नये कवियों ने श्रद्धापूर्वक नई कविता को ग्रहण किया। कवि के व्यक्तित्व को ध्यान में रखते हुए नई कविता ने यथार्थ का चित्रण किया है। दुष्यंत कुमार ऐसे ही यथार्थ में पले और बड़े हुए। उन्होंने विभिन्न जगहों पर, विभागों में नौकरी करते हुए सामाजिक यथार्थ और राजनैतिक यथार्थ को देखा और परखा। आने वाले भविष्य के लिए कवि की कलम सच्चाई को बयान करती है। तानाशाही में फंसी जनता उनकी कुव्यवस्था का शिकार हुई जा रही थी। तब शोषण, अत्याचार, अन्याय व हिंसा ने अपने आप क्रांति का रूप धारण कर लिया। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के विषय में दुष्यंत कुमार ने खुलकर लिखा–

'एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या कहो
इस अंधेरी कोठरी में एक रोशनदान है।'

कविता दुष्यंत के लिए अस्तित्व से भी अधिक महत्व रखती थी। उसके साथ उन्होंने पूरी ईमानदारी बरती। उसके लिए उन्होंने कभी नकली मुद्राओं और मुखौटों को नहीं स्वीकारा। उनकी कविता अनुभूति की सच्चाई और प्रामाणिक जानकारी की कविता है। उसकी भाषा के तेवर नकली नहीं हैं। इसका प्रमाण इन पंक्तियों में देखिए–

''मैंने सोचा था जब किसी को दिखाई नहीं देता
मैं भी बंद कर लूं अपनी आंखें न सोचूं।
एक ज्वालामुखी फूट रहा है। धुल जाने दूं लावे में।
तड़प-तड़पकर एक शिशु प्रजातंत्र का भविष्य-जो,
मेरे भीतर मीठी नींद सो रहा है।
मुझे क्या पड़ी है, जो मैं देखूं या बोलूं या कहूं कि
मेरे आस-पास-
नर हत्याओं का एक महायज्ञ हो रहा है।''

सचमुच दुष्यंत समाज के जागृत प्रहरी के रूप में स्वयं को जगाए रहे। उन्होंने कभी चैन नहीं लिया।

जनता का दुख-दर्द वही समझ सकता है जो समाज की व्यवस्था पर पैनी नजर रखता हो। उससे पूर्णरूपेण परिचित हो। समाज के, राजनीति के रंग-ढंग को अच्छी तरह जानता हो, समझता हो। दुष्यंत में ये सारी विशेषताएं आकंठ थी।

दुष्यंत के व्यक्तित्व का यह प्रमुख लक्षण था कि वे मानवता के पक्ष में थे। आधुनिक युग की परिस्थितियों को समझते हुए वे अर्जुन बने हुए हैं और अपने कवि धर्म को निभाते हैं–

'पार्थ हूं न चाहे मैं
किंतु महाभारत सा युद्ध सामने है
कृष्ण हो न चाहे तुम
किंतु तुम्हें ही अश्वों की डोर थामनी है
देर मत करो अब,
हां, चंचल इन अश्वों को काबू में कर लो
और रथ बढ़ाओ।''

मध्यकाल में कबीर जैसे संत कवियों ने जिस प्रकार समाज सुधारक के रूप में स्वयं को प्रस्तुत किया, युगीन ज्वलंत समस्याओं को उठाया, खरे-खरे शब्दों में सभी को सुनाया, दुष्यंत ने भी स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन के यथार्थ को अपनी रचनाओं से जागृत कर दिया, झिंझोड़कर रख दिया। भारतीय जनमानस को एक नई दिशा दी। इस प्रकार अपने कवि धर्म का अक्षरशः पालन किया। उनकी ये पंक्तियां इस बात का ज्वलंत प्रमाण हैं। देखिए–

''क्या हुआ जो युग हमारे आगमन पर मौन?
सूर्य की पहली किरण पहचानता है कौन?
अर्थ कल लेंगे हमारे आज के संकेत।
तुमने मानो शब्द कोई है न नामुमकिन,
कल उगेंगे चांद-तारे, कल उगेगा दिन,
कल फसल देंगे समय को, यही बंजर खेत।''

12.4 दुष्यंत का काव्य-सौष्ठव

दुष्यंत कुमार ने साहित्य-सृजन की शुरुआत कविता से न करके कहानी-लेखन से की है। लेकिन वे स्थापित काव्य सृजन के कारण हुए हैं।

विजय बहादुर सिंह के अनुसार–''कवि दुष्यंत की पढ़ाई-लिखाई का औपचारिक सिलसिला गांव राजपुर नवादा से शुरू होकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय तक फैला हुआ है। उनके बालमन पर अपने हिंदी अध्यापक पंडित यज्ञदत्त शर्मा की गहरी छाप थी जिनसे उनको हिंदी भाषा की व्यंजनात्मकता और संगीतपरकता का ज्ञान प्राप्त हुआ। भाषा लिखी और बोली कैसे जाती है? सटीक शब्दों का प्रयोग कैसे किया जाता है? इसकी प्रारंभिक शिक्षा उन्हें प्राइमरी पास करते-करते मिल चुकी थी। उनका कवि मन इस भाषा में प्रकट होने को अनजाने ढंग से कुलबुलाने लगा। परिणामतः अन्य विषयों की अपेक्षा उनका अनुराग भाषा के प्रति कहीं अधिक हो चला था।"

किसी भी साहित्यकार के सृजन के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य रहता है। इसी दर्द के सहारे वह लिखता है, अपने दर्द की अभिव्यक्ति करता है। दुष्यंत के भी सृजक होने में इसी दर्द ने काम किया था। निदा फ़ाजली के शब्दों में कहें तो "दुष्यंत की नजर उनके युग की नई पीढ़ी के गुस्से और नाराजगी से सजी-बनी है। यह गुस्सा और नाराजगी उस अन्याय और राजनीति के कुकर्मों के खिलाफ नए तेवरों की आवाज थी; जो समाज में मध्यवर्गीय रुठेपन की जगह पिछड़े वर्ग की मेहनत और दया की नुमाइंदगी करती है"

दुष्यंत कुमार ने हिंदी भाषा को आत्मसात करते हुए हिंदी साहित्य में कलम की ताकत से आज अमरता प्राप्त की है। दुष्यंत कुमार ने हिंदी साहित्य में अपनी पहचान कवि के रूप में बनायी। वे नाटक और उपन्यास लेखक के रूप में, अपेक्षाकृत कम प्रख्यात हुए। किंतु कविता के क्षेत्र में उन्होंने काफी प्रसिद्धि पायी। अपने शुरुआती दौर में उन्होंने 'विकल', 'परदेशी' तथा 'नवादिया' उपनामों से कविताएं लिखीं। प्रारंभ में गीत भी लिखे। दुष्यंत ने गीत और कविता लिखी। वर्ण्य-विषय के रूप में प्रेम भावना, देशभक्ति, निराशा तथा वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए रचना की है। पीड़ा, दर्द व संत्रास जैसी वृत्तियों का विवेचन उनमें हुआ है।

देश का भविष्य अंधकारमय था। हिंदू-मुस्लिम के बीच लड़ाई, प्रतिशोध, गांधी जी की हत्या, चीन का आक्रमण आदि पर भी दुष्यंत की कलम ने कमाल दिखाया। हिंदी साहित्य में और हिंदी कविता के क्षेत्र में उस समय एक से बढ़कर एक कवि देश की स्थिति पर काव्यात्मक जागरुकता एवं चिंतन प्रस्तुत कर रहे थे। दुष्यंत कुमार ने उस समय छायावादी कवि पंत जी और छायावादी रोमानियत को आधार मानकर भी रचनाएं कीं। उनकी इन रचनाओं में मानवतावादी वृत्ति के दर्शन भी होते हैं। वे रामेश्वर शुक्ल अंचल, हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री आदि गीतकारों से भी प्रभावित रहे। दुष्यंत के काव्य सौष्ठव को निम्नांकित बिंदुओं के तहत देखा जा सकता है-

दुष्यंत कुमार ने हिंदी साहित्य को चार काव्य-संग्रह दिए। दुष्यंत ने बहुत ही सरल व सीधी, जनता की भाषा में अपनी अनुभूति को सशक्त रूप और, अपनी चमत्कृत शैली में जनता तक पहुंचाया।

• पीड़ा निवारण का स्वर एवं जागृति आह्वान

कुछ प्रारंभिक कविताएं जो पहली पहचान संग्रह में छपी और जो अब प्रकाशित हुई हैं, दुष्यंत का पहला काव्य-संग्रह है। इसमें उन्होंने प्रणय भावना एवं अपने दुख-दर्द की पीड़ा को उजागर किया है। इसे एक प्रयोगशील काव्य-संग्रह भी कह सकते हैं। काव्य लेखन के शुरुआती दौर में कवि की काव्य चेतना में हमें सामाजिक भावना और राष्ट्रीय चेतना के दर्शन होते हैं। इस संग्रह की कविताओं में समाज की स्थिति और पीड़ितों की पीड़ा निवारण की उनकी भावना के दर्शन भी कुछ यूं होते हैं-

'काश! मैं भगवान होता
तब न पैसे के लिए यों
हाथ फैलाता भिखारी
तब न लेकर कौर मुख से
श्वान के खाता भिखारी
तब न यों परिचित चीथड़ों में
शिशिर में कंपकपाता
तब न मानव दीनता औ.....

दुष्यंत राष्ट्र के सजग प्रहरी हैं। अपना उत्तरदायित्व छोटी-सी आयु में ही समझकर वे सारे देश को विदेशी शासन के विरुद्ध जगाने का कार्य करते हुए कहते हैं-

"यह सोने का काल नहीं है
जागो देश पुकार रहा है!
ओ! तुमको जड़ शून्य बनाने
आई लाखों झंझावतें
और प्रलय में तुझे बहाने
उतरी हैं अगणित बरसातें
पर पटेल सा वीर, शरों से
कर उनका संहार रहा है।"

दुष्यंत की शुरुआती कविताएं सन् 1946, 47, 48 और 49 के आसपास से लेकर सन् 1953-54 तक की उनकी डायरी, रजिस्टर में दर्ज मिलती है।

• युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों से पृथक स्वर

दुष्यंत का दूसरा काव्य-संग्रह है–'सूर्य का स्वागत' जिसने किशोर कवि को अचानक ही युवा कवि होने का अवसर दिया है। हिंदी साहित्य की काव्य-धारा में सुप्रसिद्ध कवि का दर्जा दुष्यंत को इसी काव्य-संग्रह से मिला। सर्वप्रथम यह काव्य-संग्रह सन् 1957 में प्रकाशित हुआ। इसमें 48 कविताएं ली गई हैं। प्रत्येक कविता में व्यक्त भाव-भंगिमा दुष्यंत को सशक्त कवि के रूप में साहित्य जगत में स्थान दिलाती है। जिस साहित्यिक परिवेश में उन्होंने साहित्य सृजन किया उस समय एक प्रगतिवादी, प्रयोगवादी तथा छायावादी तीनों युग की प्रवृत्तियों से प्रभावित हिंदी साहित्य विकसित हो रहा था। उससे दुष्यंत अलग-थलग ही रहे। इस संग्रह में वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं का वर्णन किया गया है। इस संग्रह की 'कुंठा' नामक कविता को बानगी के तौर पर देखा जा सकता है–

"मेरी कुंठा
रेशम के कीड़ों-सी
ताने-बाने बुनती,
तड़प-तड़पकर
बाहर आने को सिर धुनती
स्वर से
शब्दों से
भावों से
और वीणा से कहती-सुनती,
गर्भवती है
मेरी कुंठा– कुंवारी कुंती!"

दु:ख की अभिव्यक्ति भी इस संग्रह में चोटदार रूप से दिखाई देती है–

"मैं और मेरा दु:ख।'
दु:ख: किसी चिड़िया के अभी जन्मे बच्चे सा,
किंतु सुख: तमंचों की गोली जैसा मुझको लगा है
आप ही बताएं
कभी आपने चलती हुई गोली को चलते
या कभी जन्मे बच्चे को उड़ते हुए देखा है।"

इसी प्रकार प्रणय भाव की अभिव्यक्ति भी कविता में दिखाई देती है–

"गीत गाकर चेतना को वर दिया मैंने
आसुंओं से दर्द को आदर दिया मैंने
प्रीत मेरी आत्मा की भूख थी, सहकर
जिंदगी का चित्र पूरा कर दिया मैंने।"

• **जनवादी धर्म की अभिव्यंजना**

दुष्यंत कुमार जनवादी धर्म निभाने के लिए ही पैदा हुए हैं। ऐसा उनके क्रियाकलापों से प्रमाणित होता है। आलोचकों की दृष्टि में नवीन छंद प्रतीकों को भाषा में प्रयोग करने वाले कवि को नयी कविता के कवियों में स्थान नहीं दिया गया है। फिर भी दुष्यंत कुमार के 'सूर्य का स्वागत' काव्य-संग्रह में नई कविता की प्रवृत्ति के लक्षण परिलक्षित होते हैं। कवि देशवासियों को एकता के सूत्र में बांधकर क्रांति की घोषणा करने को तत्पर है। 'स्वप्न और परिस्थितियां' कविता की निम्नांकित पंक्तियो को पढ़िए-

''सिगरेट के बादलों का घेरा
बीच में जिसके वह स्वप्नचित्र मेरा
जिसमें उग रहा सवेरा सांस लेता है
छिन्न कर जाते हैं निर्मम हवाओं के झोंके
आह! है कोई माई का लाल?
जो इन्हें रोके
सामने आकर सीना ठोके।''

देखा जाए तो 'सूर्य का स्वागत' कविता-संग्रह का कवि सही अर्थों में कवि सिद्ध होता है। बेचैनी, निराशा, कुंठा, यौवन, सामाजिक जीवन सभी को केंद्र में रखते हुए नई कविता के दौर में अपने इस उत्कृष्ट काव्य-संग्रह से कवि ने अपनी एक अलग और विशेष पहचान बनाई है।

• **राजनैतिक मूल्यों के अवमूल्यन का चित्रण**

दुष्यंत कुमार का महत्वपूर्ण और अन्य काव्य-संग्रह है 'आवाजों के घेरे।' इसका प्रकाशन सन् 1963 में हुआ। इस संग्रह में 51 कविताएं ली गई हैं। इन कविताओं में दुष्यंत का आशावादी व्यक्तित्व सामने आया है। उन्होंने जीवन को तिल-तिल मिटते देखा है। इससे ही शिक्षा पाकर उन्होंने ठाना कि मरना नहीं है, अब खुलकर जीना है। प्रत्येक बंधन से मुक्त हो जाना और किसी के सामने झुकना नहीं है। सिर उठाकर चलना है। इस संग्रह में भी आम आदमी का ही अधिक चित्रण है। आम देशवासी का दर्द दिखाई देता है। राजनैतिक मूल्यों का अवमूल्यन, आजादी के बाद की घुटन को दुष्यंत ने अपनी इन कविताओं में खुलकर जगह दी है। कविता का नाम है, 'आवाजों के घेरे' –

'आवाजें.....
स्थूल रूप धरकर जो गलियां,
सड़कों में मंडराती हैं,
कीमती कपड़ों के जिस्मों से टकराती हैं–
मोटरों के आगे बिछ जाती हैं
दुकानों को देखती ललचाती हैं
प्रश्न-चिह्न बनकर अनायास आगे आ जाती हैं–
आवाजें!
आवाजें, आवाजें!''

दुष्यंत अन्याय के दर्द से बचना और लोगों को बचाना चाहते हैं। जब तक समाज की व्यवस्था समानांतर न हो तब तक वे मुक्त भी नहीं होना चाहते। इसी कविता में वे आगे कहते हैं–

"मुक्ति नहीं पाऊंगा क्या मैं?
घुट-घुटकर मर जाऊंगा क्या मैं?
इस आपदा के समय बुलाता हूं।

वे हमेशा संघर्ष करते रहे हैं। 'राह खोजेंगे' कविता में दुष्यंत का यही तेवर प्रस्तुत होता है–

"ये कराहें बंद कर दो
बालकों को चुप कराओ
सब अंधेरे में सिमट आओ यहां नत शीश
हम यहां से राह खोजेंगे।
हम पराजित हैं पर लज्जित नहीं हैं
हमें खुद पर नहीं, उन पर हंसी आती है
हम निहत्थों को जिन्होंने हराया
अंधेरे व्यक्तित्व को अंधी गुफाओं में
रोशनी का आसार देकर बड़ी आयोजना के साथ
पहुंचाया और अपने ही घरों में कैद करके कहा
लो तुम्हें आजाद करते हैं।"

• गांधी एवं बुद्ध का प्रभाव किंतु विद्रोही स्वर

'आवाजों के घेरे' संग्रह की कविता में दुष्यंत गांधी जी से भी काफी प्रभावित लगते हैं तो दूसरी तरफ बुद्ध से भी। वे बुद्ध की तरफ मुखातिब होते हैं और वर्तमान समस्या का समाधान करते हैं। देखिए–

"तुमने कहा दुख कारण है
दुख यहां सर्वत्र व्याप्त है
हो निर्वाण लक्ष्य जीवन का
जीवन को अतिशय विषक्त है,
तुमने कहा–छोड़ घर शरण
संघ की आओ,
शांति मिलेगी,
शरण धम्म की चलो
मुक्ति के सब सपनों की कली खिलेगी।"

इस संग्रह की कविताओं में कवि का विद्रोही स्वरूप भी सामने आता है। मानवता की नई राहों की एक दिशा-दृष्टि भी देखने को मिलती है। "सुख नहीं यों खौलने में सुख नहीं, पर उसकी जागी नहीं वह चेतना सोई; वह समय की प्रतीक्षा में है जागेगी आप, ज्योंकि लहराती हुई ढकनें उठाती भाप!" मध्यम वर्ग की विषमता भरी जिंदगी की सच्चाईयों का वर्णन भी इस संग्रह की कविताओं में हुआ है। विभिन्न वादों तथा दर्शनों की मान्यताओं पर भी करारा व्यंग्य इस संग्रह की कविताओं में है। कवि अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाता प्रतीत होता है।

• **व्यक्तित्व विस्तार का दर्शन**

दुष्यंत कुमार का अन्य अति महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह है–'जलते हुए वन का वसंत।' इस संग्रह की भूमिका में स्वयं दुष्यंत कुमार ने लिखा है–

"मेरे पास कविताओं के मुखौटे नहीं हैं। अंतर्राष्ट्रीय मुद्राएं नहीं हैं और अजनबी शब्दों का लिबास नहीं है। मैं एक साधारण आदमी हूं और इतिहास और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में साधारण आदमी की पीड़ा, उत्तेजना, दबाव, अभाव और उसके संबंधों के उलझावों को जीता और व्यक्त करता हूं। मैं कविता को चौंकाने या आतंकित करने के लिए इस्तेमाल नहीं करता, ऐसा करके लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा जा सकता है। परंतु कविता से केवल यह अपेक्षा कितनी कम है। मैं जानता हूं कि अहसास के अनेक स्तरों को चीरती, व्यक्तित्व के भीतर दूर तक उतर जाने वाली चीज कविता होती है। उसे इतनी छोटी भूमिका नहीं दी जा सकती। समाज और व्यक्ति के संदर्भ में उसका दायित्व इससे बहुत बड़ा है। मेरे लिए मनुष्य मात्र की अवमानना सबसे अधिक कष्टप्रद है। उस पर मेरी प्रतिक्रिया नितांत व्यक्तिगत ढ़ंग से होती है। मगर, चूंकि मैंने अपने आपको सारे अनुभवों के लिए खुला छोड़ रखा है, इसलिए मैं भीड़ का एक हिस्सा भी हूं और मेरी पीड़ा इसलिए 'केवल' नहीं रह जाती। मैं आपके और आप मेरे सुख-दुःख के सहभागी बन जाते हैं।"

• **आम इनसान की निराशा और पीड़ा की अभिव्यक्ति**

'जलते हुए वन का वसंत' संग्रह में केवल 45 कविताएं हैं। दुष्यंत ने इन्हें तीन खंडों में विभक्त किया है। वे हैं–'इतिहास बोध', 'देशप्रेम' और 'चक्रवात'। आम आदमी की वेदना, निराशा और पीड़ा की सशक्त अभिव्यक्ति इन रचनाओं में हुई है। 'इतिहास बोध' अनुभाग की 'योग संयोग' कविता को देखें–

"कुछ भी नहीं था मेरे पास,
मेरे हाथ में न कोई हथियार था,
न देह पर कवच,
बचने की कोई भी सूरत नहीं थी।
एक मामूली आदमी की तरह
चक्रव्यूह में फंसकर
मैंने प्रहार नहीं किया,
सिर्फ चोटें सहीं,
लेकिन हंसकर
अब मेरे कोमल व्यक्तित्व को
प्रहारों ने कड़ा कर दिया।"

प्रत्येक खंड की कविताएं पाठकों पर अपना प्रभाव छोड़ती नज़र आती हैं। 'देश प्रेम' नामक खंड की कविता में देश प्रेम, चिंता, देश, जनता, मौसम, युद्ध और विराम, ईश्वर की सूली आदि कविताएं अपने शीर्षक के अनुसार पुरजोर प्रभाव छोड़ने में पीछे नहीं हैं। उदाहरण के लिए 'ईश्वर की सूली' कविता में बस्तर गोली कांड की प्रतिक्रिया को देखें–

'ईश्वर उस आदिवासी ईश्वर पर रहम करो!
सत्ता के लंबे नाखूनों ने जिसका जिस्म नोंच लिया!

घुटनों पर झुका हुआ शख़्स
अब क्या
इस निरंकुशता को माथा टेकेगा
जिसने भक्तों के साथ प्रभु को सूली पर
चढ़ा दिया।'

• प्रणय की नैसर्गिक भावना

इस संग्रह का तीसरा खंड है, 'चक्रवात।' इसमें 21 कविताएं हैं। ये सभी कविताएं जीवन के विभिन्न रंगों को प्रस्तुत करती हैं। ये कविताएं जीवन को नश्वरता और आशावादिता का स्वर देती हैं। 'मेरे स्वप्न' नाम की गज़ल भी इसी संग्रह में है। बाद में इसे 'साये में धूप' गज़ल संग्रह में भी लिया गया था। इसमें प्रणय भाव देखिए–

"मेरे स्वप्न तुम्हारे पास सहारा पाने आएंगे,
मेरे बाद तुम्हें मेरी याद दिलाने आएंगे।"

'जलते हुए वन का वसंत' कविता संग्रह की सभी रचनाएं धारदार बन पड़ी हैं। इसमें जीवन की सच्चाई दर्शायी गई है। इस संग्रह की कविताएं अनुभूति की अलग पहचान हैं और इन्हीं जैसी और भी सभी कविताओं के साये में स्पष्ट रूप में दुष्यंत के काव्य-सौष्ठव का आकलन इसी प्रकार किया जा सकता है।

12.5 पाठांश

हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

आज यह दीवार परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।

हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गांव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

प्रसंग

दुष्यंत कुमार की यह गज़ल डॉ. शेरजंग गर्ग द्वारा संपादित पुस्तक 'हमारे लोकप्रिय गीतकार-दुष्यंत कुमार' से ली गयी है।

इस गज़ल में गज़लकार ने मन की पीड़ा को मन से बाहर निकलने की व्याकुलता के दर्शन कराए हैं। गज़लकार कहते हैं–

व्याख्या-

मेरे मन में इतनी पीड़ा, इतना दर्द, इतनी कड़ुवाहट का माहौल छा गया है कि उसने अब पहाड़ का सा रूप धारण कर लिया है। यह माहौल मेरे लिए असहनीय हो चला है। अतः ऐसे में कोई ऐसी बात, कोई ऐसी घटना घटनी चाहिए जिससे मेरे मन का यह पहाड़ धराशायी हो जाए। इस पहाड़ के चारों तरफ एक ऐसी अपारदर्शी दीवार सी खिंच गई है जिसमें मन घुटने लगा है क्योंकि यह दीवार अब मुझे हिलती हुई नज़र आती है जो मुझे भयभीत करती है। अतः इस दीवार की नींव ही यदि हिला दी जाए तो ये दीवार स्वयं ही ढ़ेर हो जाएगी और मेरे मन को सुख-शांति मिलेगी। मेरे मन में पूरा एक देश बसा है। इसकी हर सड़क, हर गली, हर नगर और हर गांव में प्रसन्नता का वातावरण छा जाना चाहिए और हर आदमी खुश रहना चाहिए। यह तभी संभव है जब हर निराशा आशा में बदल दी जाए। फिर गज़लकार आगे की सफाई देते हुए कहते हैं कि यह सब कुछ कहकर मैं कोई आतंक नहीं फैलाना चाहता। मेरा मक़सद (उद्देश्य) यह कतई भी नहीं है। बस मैं तो अपने मन की पीड़ा, दर्द और कडवाहट को दूर करके साफ-सुथरा माहौल देखना चाहता हूं। अतः मेरी कोशिश सिर्फ और सिर्फ इस खौफनाक वातावरण को बदलने भर की है। अंत में दुष्यंत कुमार यह भी फरमाते हैं, सफाई पेश करते हुए कहते हैं कि वातावरण को खुशनुमा बनाने वाली ये बात मेरे मन में उठे या फिर तेरे सीने (मन) में उठे, इससे कोई मतलब नहीं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह बात खास नहीं है, क्योंकि हम दोनों एक ही तो हैं। बस मैं तो यह चाहता हूं कि कैसे भी हो, बस मेरे मन में बसे इस देश की हर गली-कूचे, शहर, गांव, कस्बे का माहौल, खुशहाल बनना चाहिए ताकि मुल्क का हर इंसान हंसी-खुशी, शांतिपूर्वक मेरे मन के देश में गुज़र-बसर कर सके।

विशेष-

दुष्यंत कुमार वास्तव में आम आदमी के रचनाकार थे। वे जनसाधारण के दुख-दर्द को समझते थे। उसकी पीड़ा, उसके मन की कड़वाहट को नज़दीक से देखते रहते थे। क्योंकि वे भी मध्यवर्गीय समाज से ही थे। इसी कारण उनके मन में देश के हर आम आदमी को खुश देखने की तमन्ना हिलोरे लेती ही रहती थी। ये गज़ल अपने उद्देश्य में पूर्णरूपेण सफल कही जा सकती है। इसके पीर की उपमा पर्वत से देकर अपनी बात-सबकी बात बहुत ही तरीके और सलीके से कही गई है।

गतिविधि

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' व दुष्यंत कुमार 'परदेशी' के गीत सामाजिक यथार्थ को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। इन दोनों के गीतों का तुलनात्मक अध्ययन कर इनके गीतों पर एक निबंध लिखिए।

क्या आप जानते हैं?

70 के दशक में हिंदी के मशहूर कवि और शायर रहे दुष्यंत कुमार अमिताभ बच्चन की फिल्म 'दीवार' देखकर उनके मुरीद हो गए थे और उन्होंने अमिताभ बच्चन को एक प्रशंसा पत्र भी लिखा था।

12.6 सारांश

हिंदी साहित्य और हिंदी जगत में आज गज़ल एक लोकप्रिय काव्य विधा के रूप में स्थापित है। हिंदी में गज़ल लिखने की परंपरा का श्रेय कबीर, अमीर खुसरो, भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रसाद और निराला आदि को दिया जाता है। हिंदी साहित्य में गज़ल की परंपरा अरबी, फारसी और उर्दू से आई है। हिंदी गज़ल का लेखन उसी रूमानी सौंदर्य तथा प्रणय के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करना था।

दुष्यंत कुमार ने जब हिंदी कविता से हिंदी गज़ल लिखने में कदम रखा तब गज़ल तथा कविताओं का माहौल ठीक नहीं था। कविता मर रही थी। गज़लों में वहीं प्रेमी-प्रेमिका की बातों से गज़ल एक नया रास्ता ढूंढ़ रही थी जो रास्ता स्वयं दुष्यंत कुमार ने निकाला। सौंदर्य वाली सुहानी गलियों में भटकी हुई गज़ल को दुष्यंत कुमार ने आदमी की तकलीफों और संवेदनाओं की सुलझी हुई वाणी बनाया।

दुष्यंत कुमार ने पहले-पहले 'धर्म युग' और 'सारिका' पत्रिका के माध्यम से अपनी गज़लों में युग की तड़प का अंकन किया। 'साये में धूप' गज़लों के संग्रह के बीसियों संस्करण हाथों-हाथ बिक गए। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि 'साये में धूप' के प्रकाशन के बाद 'बैस्ट सैलर' पुस्तक के रचनाकार होने का गौरव भी दुष्यंत कुमार को मिला। दुष्यंत कुमार के बहुत पहले हिंदी में गज़लें कहने वालों में निराला, शमशेर, त्रिलोचन, शंभूनाथ 'शेष', चिरंजीत एवं हरिकृष्ण प्रेमी जैसे कई बेहतरीन गज़लें कहने वालों के बाद भी उन्हें इतनी प्रसिद्धि नहीं मिली जितनी कि बलबीर सिंह रंग, बालस्वरूप राही और सूर्य भानु गुप्त को मिली।

वास्तविकता यह है कि दुष्यंत कुमार के मानवीय, सामाजिक, साहित्यिक तथा राजनैतिक संपर्क बहुत ही गहरे थे। उसका भी उन्हें हर कदम पर भरपूर लाभ मिला।

दुष्यंत कुमार को विशेष रूप से गज़ल कहने के लिए जनसाधारण का गज़लकार माना गया। कारण उनकी रचनाओं में जनसाधारण की भाषा ही अधिक प्रयोग में लाई गई थी।

बीसवीं सदी के छठे दशक में दुष्यंत कुमार 'परदेशी' ने अपनी काव्य रचना का आरंभ गीतों से किया था। प्रेम गीत रचने के साथ-साथ उन्होंने कविता के नए रुझानों को विस्तार देते हुए कई श्रेष्ठ नयी कविताएं भी लिखीं। उनका पहला काव्य संकलन 'सूर्य का स्वागत', कविता-क्षेत्र में सुखद स्वागत का पात्र बना। फिर 'आवाजों के घेरे' के माध्यम से उन्होंने अपने अंदाज को नयी बुलंदियों पर पहुंचाया। 'एक कंठ विषपायी' काव्य नाटक दुष्यंत की प्रतिभा को नया रंग देता दिखलायी दिया, सामने आया। यहां यह बतलाना भी उचित ही रहेगा कि 'अंधा युग' के बाद दूसरा काव्य-नाटक 'एक कंठ विषपायी' को ही माना गया था।

दुष्यंत को शांत बैठना, सीधी-सरल जिंदगी जीना पसंद नहीं था। इस विषय में दुष्यंत के छोटे भाई प्रेम नारायण त्यागी लिखते हैं-''शमां हर रंग में जलती है सहर होने की तरह वैसे जो हर रंग में, जिंदादिली से जिए।''

आम आदमी का 'प्रतिनिधि' बनकर दुष्यंत समाज में अपनी रचनाओं के बल पर रहेंगे। उनके व्यक्तित्व की संपूर्ण ताकत, ऊर्जा, कविता ही दुष्यंत को दुष्यंत कुमार की पहचान दिलाती है।

देश की जनता के सामने अंग्रेजी शासन और सन् 1962 तथा सन् 1971 में हुए पाकिस्तान के साथ युद्ध के कारण देश के अर्थतंत्र पर विकट संकट गहराया। देश में बेरोजगारी, महंगाई और जीवन में उपयोग होने वाली दैनिक वस्तुओं के दाम बेहिसाब बढ़ने लगे थे।

हिंदी साहित्य में सन् 1950 में प्रयोगवादी कवि अपनी कविता को नई कविता का नाम देने लगे। नई कविता के अनेक कवि पहले से प्रयोगवादी थे। दोनों में पहले कोई अंतर नहीं किया जाता था। 'सत्य' भी दोनों का एक ही माना जाता था। नई कविता की चेतना यथार्थवादी है। नये कवियों ने श्रद्धापूर्वक नई कविता को ग्रहण किया।

कविता दुष्यंत के लिए अस्तित्व से भी अधिक महत्व रखती थी। उसके साथ उन्होंने पूरी ईमानदारी बरती। उसके लिए उन्होंने कभी नकली मुद्राओं और मुखौटों को नहीं स्वीकारा।

दुष्यंत के व्यक्तित्व का यह प्रमुख लक्षण था कि वे मानवता के पक्ष में थे।

दुष्यंत कुमार ने हिंदी भाषा को आत्मसात करते हुए हिंदी साहित्य में कलम की ताकत से आज अमरता प्राप्त की है।

दुष्यंत कुमार ने हिंदी साहित्य में अपनी पहचान कवि के रूप में बनायी। वे नाटक और उपन्यास लेखक के रूप में, अपेक्षाकृत कम प्रख्यात हुए। किंतु कविता के क्षेत्र में उन्होंने काफी प्रसिद्धि पायी।

प्रारंभ में गीत भी लिखे। दुष्यंत ने गीत और कविता लिखी। वर्ण्य-विषय के रूप में प्रेम भावना, देशभक्ति, निराशा तथा वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कविता लिखी है। पीड़ा, दर्द व संत्रास जैसी वृत्तियों का विवेचन उनमें हुआ है।

दुष्यंत कुमार ने हिंदी साहित्य को चार काव्य-संग्रह दिए। दुष्यंत ने बहुत ही सरल व सीधी, जनता की भाषा में अपनी अनुभूति को सशक्त रूप में, अपनी चमत्कृत शैली में जन-जन तक पहुंचाया।

दुष्यंत कुमार जनवादी धर्म निभाने के लिए ही पैदा हुए थे। ऐसा उनके क्रियाकलापों से लगता है। आलोचकों की दृष्टि में नवीन छंद प्रतीकों का भाषा में प्रयोग करने वाले कवि को नयी कविता के कवियों में स्थान नहीं दिया गया है। फिर भी दुष्यंत कुमार के इस काव्य-संग्रह में नई कविता की प्रवृत्ति के लक्षण परिलक्षित होते हैं।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि दुष्यंत कुमार जी ने अपने गीतों के माध्यम से समाज की पीड़ा व यथार्थ को सशक्त रूप से अपनी कलम के द्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। वे आम आदमी की पुरजोर आवाज़ बनकर अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के बीचोंबीच उभरे हैं।

12.7 मुख्य शब्दावली

- **टिकाऊ** : 'टिकाऊ' से तात्पर्य कालजयी से भी होता है। स्थिर रहने वाली-स्थायी रहने वाली किसी भी वस्तु अथवा बात को 'टिकाऊ' का नाम दिया जाता है।
- **साहित्यिक यात्रा** : 'साहित्यिक यात्रा' से आशय 'साहित्यिक जीवन' से है अर्थात् साहित्यकार ने कब से कब तक रचना-कर्म किया। कविता-गज़लें आदि विधाएं लिखीं।

- **दौर** : 'समय', 'वक्त' या फिर 'अवधि' को भी 'दौर' के नाम से जाना जाता है। 'सीमा' भी इसी के आस-पास का शब्द है।
- **सरोकार** : ताल्लुक, संबंध, संपर्क।
- **कंवल** : 'कंवल' से तात्पर्य 'कमल' से है, 'कमल का फूल'।
- **पैरहन** : पैरहन का मतलब पहनने वाले कपड़ों से है।
- **चिरागां** : 'चिरागां' से तात्पर्य 'दीपक' से है। 'चिराग' 'दीपक' का बहुवचन है।
- **लतीफेबाजी** : 'लतीफेबाजी' चुटकुले बोलने को कहते हैं।
- **जांबाज** : 'जांबाज' से मतलब 'बहादुर' से लिया जाता है।
- **नियति** : 'नियति' से तात्पर्य 'भाग्य' से है।
- **युगदृष्टा** : जमाने को देखने वाले को युगदृष्टा कहते हैं। 'युग' से तात्पर्य लंबी अवधि से भी लिया जाता है।

12.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. इलाहाबाद से।
2. कविवर सुमित्रानंदन पंत को।
3. अरबी, फारसी और उर्दू से।
4. 'साये में धूप' ने।
5. 'साये में धूप' के प्रकाशन के बाद।
6. 42 वर्ष की आयु में।
7. बीसवीं सदी के छठे दशक में।
8. सूर्य का स्वागत।
9. एक कंठ विषपायी।
10. सन् 1950 से।
11. अर्जुन का।
12. 'विकल', 'परदेशी' तथा 'नवादिया' उपनाम से।
13. चार काव्य-संग्रह।
14. 'सूर्य का स्वागत' ने।
15. सन् 1957 में प्रकाशित हुआ तथा इसमें 48 कविताएं हैं।
16. जनवादी धर्म।
17. 'आवाजों के घेरे' में।
18. तीन खंडों में– (i) इतिहास बोध, (ii) देश प्रेम, (iii) चक्रवात।
19. 'ईश्वर की सूली' में।
20. इक्कीस कविताएं।

12.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी गज़ल की विशेषताएं बताइए।
2. गज़ल और कविता में अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. दुष्यंत कुमार के काव्य संकलन 'आवाजों के घेरे' को पढ़ने के उपरांत हरिवंशराय बच्चन ने क्या प्रतिक्रिया दी? बताइए।
4. दुष्यंत कुमार की प्रणय भावना को कविता के माध्यम से प्रस्तुत कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. 'दुष्यंत कुमार का हिंदी गज़ल में योगदान', शीर्षक पर अपने विचार विस्तारपूर्वक प्रस्तुत कीजिए।
2. 'दुष्यंत कुमार का काव्य अपने अंतस में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन का यथार्थ समेटे हुए है'- वर्णन कीजिए।
3. नई कविता और प्रयोगवादी कविता की विशेषताएं बताइए।
4. 'दुष्यंत कुमार ने हिंदी गज़ल को पुरानी परंपरा से नवीन दिशा में काव्य-भाषा-बिंब-प्रतीक-शैली की दृष्टि से नया मोड़ दिया।' इस कथन को उदाहरणों सहित सिद्ध कीजिए।
5. 'साये में धूप' गज़ल-संग्रह की विशेषताएं बताते हुए कुछ गज़लों के उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।
6. सप्रसंग व्याख्या कीजिए-
   (क) हो गई है पीर..... ये बुनियाद हिलनी चाहिए।
   (ख) सिर्फ हंगामा खड़ा करना ..... लेकिन आग जलनी चाहिए।

12.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. शेरजंग गर्ग (सं.), *हमारे लोकप्रिय गीतकार : दुष्यंत कुमार*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण : 2002
2. डॉ. नागसेन ई. श्रीमाली, *हिंदी गज़ल साहित्य और दुष्यंत कुमार*, सार्थ पब्लिकेशन, आणंद, प्रथम आवृत्ति : 2013

इकाई 3 अरुण कमल

3.0 परिचय

13.0 परिचय

अरुण कमल का जन्म 15 फरवरी 1954 को नासरीगंज (रोहतास) बिहार में हुआ। मानव जीवन के प्रति दृढ़ निष्ठा ने अरुण कमल को श्रेष्ठ मनुष्य और कवि बनाया। उच्च शिक्षा प्राप्त कर वे पटना विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में अध्यापक नियुक्त हुए। अध्यापन के साथ उनका लेखन का कार्य अनवरत चल रहा है। अरुण कमल की प्रमुख कृतियों में 'अपनी केवल धार' (1980), 'सबूत' (1989), 'नये इलाके में' (1996), 'पुतली में संसार'– (2004) तथा आलोचना ग्रंथ 'कविता और समय' (1999) प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त वियतनामी कवि 'तो हूं' की टिप्पणियों की एक अनुवाद-पुस्तिका, 'मायकोव्स्की' की आत्मकथा का अनुवाद तथा अंग्रेजी में 'वॉयसेज' नामक भारतीय युवा कविता के अनुवादों की किताब भी प्रकाशित है। अरुण कमल ने किपलिंग की 'जंगल बुक' का अनुवाद भी किया है। आपके देश एवं विदेश के अनेक साहित्यकारों की कविताओं तथा लेखों के हिंदी अनुवाद विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

अरुण कमल समाचार पत्रों में भी कॉलम लिखते रहे हैं। 'प्रभात खबर' (रांची) में उनका अनुवाद स्तम्भ- 'अनुस्वार' के नाम से हर पखवाड़े में प्रकाशित होता रहा। नवभारत टाइम्स (पटना) के लिए 'जन-गण-मन' स्तम्भ में सामयिक टिप्पणियां लिखीं तथा इंटरनेट पत्रिका 'लिटरेट-वर्ल्ड' के लिए भी स्तम्भ लेखन करते रहे। अरुण कमल की कविताएं अनेक देशी-विदेशी भाषाओं में अनुदित हुईं। उर्दू तथा पंजाबी में भी आपकी कविता-पुस्तकें प्रकाशित हुईं। वे अफ्रोएशियाई युवा लेखक सम्मेलन, ब्राजाविले, कांगों में भारत के प्रतिभागी बने। रूस, चीन तथा इंग्लैंड की साहित्यिक यात्राएं कीं। अरुण कमल साहित्य अकादमी की सामान्य परिषद् एवं सलाहकार समिति के सदस्य रहे। आप हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की कार्य समिति के सदस्य भी नियुक्त हुए।

अरुण कमल को उनके साहित्यिक योगदान के लिए अनेक पुरस्कार तथा सम्मान प्राप्त हुए। कविता के लिए भारतभूषण अग्रवाल स्मृति पुरस्कार (1980), सोवियत भूमि नेहरू

13.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- समकालीन काव्य-मूल्यों के अंतर्गत अरुण कमल की कविता का अध्ययन कर पाएंगे;
- हिंदी कविता और अरुण कमल की कविताओं में प्रतिरोध के स्वरों का संबंध-निर्धारण कर पाएंगे;
- अरुण कमल की कविता में समसामयिक जीवन के प्रश्नों का मूल्यांकन कर पाएंगे।

13.2 समकालीन काव्य-मूल्य और अरुण कमल की कविता

काव्य-मूल्य एवं मानव-मूल्यों में अत्यल्प अंतर होता है। औचित्य, मर्यादा, लोक-मंगल की भावना, संवदेनशीलता, परदुख कातरता काव्य और जीवन दोनों के लिए आवश्यक हैं और उन्हें गरिमा प्रदान करते हैं। काव्य-मूल्य समाज की यथार्थ परिस्थिति और उसकी आवश्यकता का अनुसरण करते हैं। साहित्य समाज का दर्पण है और समाज मनुष्यों का समूह है अर्थात मानवीय मूल्यों को ही समाज और साहित्य में देखा जा सकता है। अरुण कमल जीवनधर्मी एवं यथार्थवादी प्रगतिशील कवि हैं अर्थात वे समाज के यथार्थ को-गरीबी, अभाव, भ्रष्टाचार, पिछड़ापन आदि को अपने काव्य में स्थान देते हैं तथा भारतीय समाज को विसंगतियों एवं विकृतियों से मुक्त कर प्रगति के पथ पर अग्रसर देखना चाहते हैं। उनके काव्य में उनका आत्मविस्तार देखा जा सकता है। यह आत्मविस्तार उनके जीवन-मूल्य एवं काव्य-मूल्य में समान रूप से उपस्थित होता है जो मानव, प्रकृति और साहित्य को एक-दूसरे से जोड़ देता है। 'सौंदर्य' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं-

गरजता है गगन
और बिजलियों को देह में सोखने को उद्यत
गरजते हैं धरती की ओर से
ये वृक्ष
ठहरेगा कौन इस राह पर आज
देखेगा कौन इस संघर्षरत वृक्षों का
दुर्द्धर्ष सौंदर्य।।

यहां कवि गगन और वृक्षों के कर्म तथा संघर्ष के सौंदर्य को अभिव्यक्त करते हुए अपनी सत्ता को विस्मृत कर देता है। वह प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण में अपनी स्थूल सत्ता का विसर्जन कर देता है। 'कविता क्या है' निबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं–"किसी वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से हमारी अपनी सत्ता के बोध का जितना ही अधिक तिरोभाव और हमारे मन की उस वस्तु के रूप में जितनी ही पूर्ण परिणति होगी, उतनी ही बढ़ी हुई हमारी सौंदर्य की अनुभूति कही जाएगी।" अरुण कमल के काव्य में इस बढ़ी हुई सौंदर्य की अनुभूति को अनुभूत किया जा सकता है। जिस तरह जीवन में आंतरिक एवं बाह्य सौंदर्य अभीष्ट होता है उसी तरह काव्य में भी। अरुण कमल के काव्य का आंतरिक सौंदर्य काव्य के मूल्यों की स्थापना में अपनी सार्थकता सिद्ध करता है जब वे मनुष्य का प्रकृति से तथा पेड़-पौधों का शेष सृष्टि से घनिष्ठ संबंध प्रदर्शित करते हैं। 'केवल अपनी धार' कविता की ये पंक्तियां इस घनिष्ठता को प्रदर्शित करती हैं–

कहीं सुदूर पृथ्वी में जब हमारे रोम अंतिम
मिले होंगे....
तब अचानक हिली होंगी फुनगियां तक
एक ही तो मूल में हम
एक ही है भूमि-जल-संसार अपना.....।।

कवि अरुण कमल यांत्रिकता, विसंगतियों, विडंबनाओं के बीच मनुष्य को निराशा से उबारने का प्रयत्न करते हैं। वे मनुष्य के सुख-दुख एवं संघर्ष को वाणी देते हैं तथा उसके भीतर जिजीविषा को बनाए रखने के लिए आशा का संचार करते हैं। वे यथार्थ पर प्रकाश डालते हैं जो मनुष्यता को आघात पहुंचा रहा है, मनुष्यों को एक-दूसरे से दूर कर आत्मकेंद्रित बना रहा है, उसके भीतर की कोमलता को खत्म कर रहा है। ऐसे कठिन समय में भी वे कोमल संवेदनाओं को जीवित, जागृत करने का प्रयत्न करते हैं। रिश्तों की गरिमा, उपयोगिता एवं महत्व को प्रतिष्ठित करते हैं। संवेदनहीन होती जा रही युवा पीढ़ी अपने माता-पिता को भी बोझ समझकर बांट रही है। उन्हें अपने साथ रखने में कष्ट का अनुभव कर रही है, माता-पिता के अमूल्य दान और त्याग को विस्मृत कर अपने अधिकारों की ही बात करती है। तब अरुण कमल ऐसी पीढ़ी के हृदय की मरुभूमि में वात्सल्य, स्नेह और श्रद्धा की हरी बेलें लहलहाने का प्रयत्न करते हैं। 'मातृभूमि' कविता की मर्मस्पर्शी पंक्तियों पर दृष्टि डालें तो कवि का चिंतन स्पष्ट हो जाता है–

"आज जब भूख में मुट्ठी भर अनाज भी दुर्लभ है
तब चारों तरफ क्यों इतनी भाप फैल रही है गर्म रोटियों की
लगता है मेरी मां आ रही है नक्काशीदार रूमाल से ढंकी तश्तरी में
खुबानियां अखरोट मखाने और काजू भरे.....
लगता है मेरी मां आ रही है हाथ में गर्म दूध का गिलास लिए।"

कवि मां के निश्छल प्रेम की निरंतरता को स्थापित करता है। जीवन के कष्टसाध्य, अभावग्रस्त क्षणों में जब कोई हमारे पास नहीं होता, सभी साथ छोड़ देते हैं, भाग्य भी। तब मां हमारे साथ, हमारे आस-पास होती है। अरुण कमल परंपरा को नहीं छोड़ते बल्कि परंपरा के प्रति गहरी संपृक्ति का भाव प्रदर्शित करते हैं लेकिन नवीनता के प्रति आग्रह भी रखते

हैं। उनकी रचनात्मक सामर्थ्य नए युग के यथार्थ को अत्यंत सशक्त रूप से रखने का साहस प्रदर्शित करती है। 'अपनी पीढ़ी के लिए' कविता में उनका यह साहस देखा जा सकता है–

"जब भी हमारा जिक्र हो कहा जाय
हम उस समय जिए जब
सबसे आसान था चंद्रमा पर घर
और सबसे मोहाल थी रोटी
और कहा जाय
हर पीढ़ी की तरह हमें भी लगा
कि हमारे पहले अच्छा था सब कुछ
और आगे सब अच्छा ही होगा।"

अरुण कमल की जीवनधर्मी दृष्टि और यथार्थ का यह सुंदर समन्वय है जो पाठक को झकझोर देता है। परमानंद श्रीवास्तव कहते हैं– "जो आदमी से आदमी के सुख-दुख और संघर्ष से लगाव नहीं महसूस करते, जो सच्ची जीवन शक्ति से वंचित हैं, जिनकी दुनिया कला और हुनर तक सीमित है, जो जीवन को अनुभव-प्रत्यक्ष से नहीं अवधारणाओं में जानते हैं वे कोमल रागात्मकता और कठोर प्रतिरोध के इस संतुलित जीवन-विवेक और काव्य विवेक को कभी भी उस अर्थ में प्रमाणित नहीं कर पाएंगे जो अरुण कमल की कवि दृष्टि और प्रतिबद्ध विचारधारा का अभिन्न अंग है।" मित्रता के रिश्ते के प्रति प्रतिबद्धता प्रकट करने वाले कवि अरुण कमल परिवर्तित हो रहे समय, संसार एवं रिश्तों की नब्ज पर हाथ रखते हैं। परिवर्तन को प्राचीन एवं नवीन के सार्थक समन्वय के रूप में स्वीकार करने वाला कवि मौलिकता का पक्षधर तो होगा ही। परंपरा को अंधभक्त की तरह स्वीकार कर ढोना कवि को नहीं भाता। वे उसे परिवर्तित होते समय के साथ नये रूप में, नए अर्थ देकर लोकमंगलकारी बनाकर उस पर चलना चाहते हैं। वे परंपरा से प्राप्त अमूल्य देय के प्रति ऋणी भी हैं तथा जीवन की निरंतरता में अपनी स्वतंत्रता और अस्तित्व की अलग पहचान प्रदर्शित कर विनम्र गरिमा से भरे भी दिखाई देते हैं। 'केवल अपनी धार' कविता का यह अंश कवि के संदर्भित चिंतन को स्पष्ट करता है–

"यह अनाज जो बदल रक्त में
टहल रहा है तन के कोने-कोने
यह कमीज जो ढाल बनी है
बारिश सरदी लू में
सब उधार का, मांगा चाहा
नमक-तेल, हींग-हलदी तक
सब कर्जे का
यह शरीर भी उनका बंधक
अपना क्या है इस जीवन में
सब तो लिया उधार
सारा लोहा उन लोगों का
अपनी केवल धार।"

अरुण कमल की एकाग्र, संयमित अभिव्यक्ति विस्तृत अर्थ खोलती है। नवीन जीवन मूल्यों का हल्कापन उनके मन को भारी बनाता है अतः उनकी सूक्ष्म विवेचन शक्ति परंपरा की आभारी होते हुए भी अपनी स्वतंत्र सत्ता और विवशता का संकेत देती है। 'नये इलाके में' काव्य-संग्रह के फ्लैप पर दी गई यह टिप्पणी अत्यंत सटीक है कि–"ये कविताएं अपने उद्भव और प्रसार में नये अर्थ प्रक्षेपित करती हैं। ये जीवन के आवरण की नहीं, बल्कि अस्तर की कविताएं हैं। अरुण कमल उन थोड़े से कवियों में से हैं, जिनके यहां विस्तार है, सब कुछ का समावेश– जितनी भी है दीप्ति भुवन में सब मेरी पुतली में कसती।" अरुण कमल की 'पुतली में संसार' के समस्त भेद आकार सिमट गए हैं। वे जब भी कुछ नया रचते हैं तो वह उनके वैचारिक एवं भावनात्मक दोनों स्तरों का समन्वय होता है जो पूर्व की अपेक्षा अधिक परिपक्व होता है। अर्थात 'हरापन भी पककर स्याह हो गया है।' अरुण कमल लिखते हैं–

"यहां रोज कुछ बन रहा है
रोज कुछ घट रहा है
यहां स्मृति का भरोसा नहीं
एक ही दिन में पुरानी पड़ जाती है दुनिया।" (नये इलाके में)

परिवर्तन के साथ कदम-ताल करना या उसका पीछा करना अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। समय के साथ चलते हुए अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक गरिमा को बचाए रखना, राजनैतिक दबावों को सहते और उनका सामना करते हुए अपने पथ से विचलित न होना एक जीवट वाला कार्य है। कवि एक कल्पनाशील, संवेदनशील प्राणी होता है जिसकी अपनी एक अलग दुनिया है, जिसमें सारी दुनिया का सब कुछ है जो वह चाहता है। वह इस दुनिया से अपनी रूचि और भाव के अनुकूल विषय चुनता है और उस विषय को अपनी रचनात्मक सामर्थ्य से जीवंत कर देता है। अरुण कमल एक सामर्थ्यवान कवि हैं। हर छोटे-छोटे से अनुभव को भी वे अपनी गहन संवेदनशीलता से अर्थवान बना देते हैं। उनकी कविताएं अपने परिवेश के साथ साम्य दर्शाती हैं। काव्य की सार्थकता पर दिविक रमेश की एक टिप्पणी द्रष्ट्व्य है– "कविता प्रतियोगिता या होड़ की वस्तु नहीं होनी चाहिए। कविता कवि के साथ-साथ आदमी को भी सही पहचान की शक्ति एवं दृष्टि देती है–कम या अधिक। इसलिए कविता या तो कविता है या नहीं। इसके विषय निर्धारित नहीं हो सकते, क्योंकि जीवन और उसके कार्यकलाप तथा बाहरी परिवेश में होने वाले परिवर्तन निर्धारित नहीं हैं। कम-से-कम व्यवहार में। दार्शनिक शब्दावली में कहूं, तो कविता अपने और अपने परिवेश से एकात्म होने की मनःस्थिति है।"

अरुण कमल की कविताओं में एकात्मता दिखाई देती है। वे मनुष्यता की कसौटी पर खरी उतरने वाली पंक्तियां अगर लिख पाते हैं तो शायद इसीलिए क्योंकि वे रिश्तों के मूल्य, उनकी पीड़ा, अपनों के साथ की आवश्यकता और उनसे छूटने के दर्द को समझते हैं। अरुण कमल 'स्थिति' कविता में लिखते हैं– "जो जवान बेटे को फूंक कर आया है/ उसे अकेला छोड़ना ठीक नहीं रात में।" कवि की संवेदना, सहानुभूति उसे मानवीय मूल्यों की रक्षा करने वाला साथ ही दूरद्रष्टा यथार्थवादी भी घोषित करती हैं। मनुष्यता जाति और धर्म से ऊपर है, किंतु वर्तमान समय में राजनैतिक स्वार्थों ने इन्हें नया विकृत रूप दे दिया है। निरपराध लोगों के सांप्रदायिक दंगों में मारे जाने पर कवि का मन हाहाकार कर उठता है–

"मैंने हरदम अच्छा बर्ताव किया
न किसी का बुरा ताका न कभी कुछ चाहा
और अब अचानक मैं मारा जाऊंगा
सिर्फ इसलिए कि मेरी जाति वो नहीं जो हत्यारों की
मेरा धर्म वो नहीं।" –(चार दिन)

कवि अरुण कमल यथार्थ को प्रस्तुत कर भविष्य के लिए आगाह करते हैं। काव्य का धर्म है, उद्देश्य है– लोकमंगल करना। कवि लोकमंगल का अभिलाषी है। संसार में फैली तमाम विकृतियों, विसंगतियों, भ्रष्टाचार, पतित मनोवृत्ति के बावजूद कवि आशावान है। उसका दृष्टिकोण सकारात्मक है कि एक दिन सब ठीक होगा। अरुण कमल लिखते हैं– "नये दोस्त बनेंगे/नयी भित्ति उठेगी। जो आज अलग हैं। कल एक होंगे।" परमानंद श्रीवास्तव कहते हैं– "अरुण कमल की कविता जीवन की जड़ों को पुष्ठ करती कविता है जिसकी शक्ति का स्रोत कविता में ही नहीं, कविता के बाहर के यथार्थ में भी है। वह दुनिया को पहले से अधिक सुंदर और अधिक अर्थमय बनाने वाली कविता है और जरूरत के अनुसार दुनिया को बदलने वाली कविता है।" अरुण कमल जानते हैं कि परिवर्तन के लिए कोमलता एवं प्रखरता का साम्य ही काम्य है। अत: यही उनका रचनात्मक आदर्श है कि कहीं उनकी काव्यात्मकता प्रखर हो उठती है तो कहीं कोमलता, सुघड़ता और प्रवाहमयता अपनी भावपूर्ण चिंतन शैली के साथ उपस्थित होती है। कुछ पंक्तियों पर दृष्टि डालें तो इस वैविध्य का पता चलता है– "हर नदी का घाट श्मशान। हर बगीचा कब्रिस्तान। बन रहा है। और हम इक्कीसवीं शताब्दी की ओर जा रहे हैं।" –'चढ़ा है नीलाम पर देश' – 'अपने ही घर में किरायेदार हम' आदि पंक्तियां वैचारिक ज्वार एवं विवशता को प्रकट करती हैं।

अरुण कमल के रचनाकर्म पर परमानंद श्रीवास्तव की यह टिप्पणी सटीक है– "आत्मविस्तार अरुण कमल की कविता में अवधारणा भर नहीं है, जीवन-मूल्य और काव्य-मूल्य में समान रूप से मौजूद वह अभिप्राय है जो आज के यथार्थ के दबावों के बीच निखरता है, धुंधला नहीं पड़ता।" प्रगतिशीलता का मुख्य आधार मानव जीवन के प्रति निष्ठा है। जीवन को सतत् प्रवाहिनी गंगा बनाना है तो उसके लिए व्यापक संघर्ष और सहनशीलता का होना अनिवार्य है। निराशा और अंधकार के गहन क्षणों में भी जीवन के प्रति एकनिष्ठ उत्साह, प्रेरणा और आशा के भाव कवि की शुभेच्छाओं को प्रकट करते हैं। जीवन की स्वीकृति का भाव इन पंक्तियों में देखें–

"चाहता था जलूं तो
केवल रोशनी हो। धधाती लपट
धुंआ न कालिख न राख
जलने के बाद लगे कुछ था ही नहीं
थी बस कपूर की बटी
बस थोड़ा-सा ताप गीले तट पर।" (नये इलाके में)

अरुण कमल की कविताएं जीवन के निकट ही नहीं हैं, उनमें जीवन का हर रंग बसता है। वे उगता सूर्य, लौटते पशु, आवारा कुत्ते, भूसी की आग, उड़ती चिड़िया जैसे संदर्भों से अपने काव्य को समृद्ध करते हैं। अपनी विदेश यात्राओं पर भी उन्होंने वहां के समाज, संस्कृति

के बीच अपने अनुभवों को लेकर कविताएं लिखीं। कवि के सामने व्यापक फलक है। वह उनमें से अपने लिए विषय, अनुभव, समय और परिस्थितियां चुनता है जिससे उन्हें मूल्यवान बनाने के लिए अपने काव्य में पिरो सके।

"पत्थर की नाभि में अभी भी कहीं
जिंदा है हरा रंग–
मुझे उम्मीद है फिर भी.....।" –*(फिर भी)*

संत्रास एवं विखंडन के दौर में भी अरुण कमल की जीवन-धर्मिता हारती, ठहरती नहीं। वे सकारात्मक जीवन-मूल्यों की स्थापना के पक्षधर हैं।

13.3 हिंदी कविता में प्रतिरोध की चेतना और अरुण कमल

काव्य में प्रतिरोध की चेतना उसे सार्थक बनाती है। प्रतिरोध विकृतियों और विसंगतियों, अन्याय और अत्याचार, अमानवीयता एवं अकर्मण्यता को दूर करने के लिए जन्म लेता है। इन नकारात्मकताओं के प्रतिरोध से ही काव्य का मूल लक्ष्य लोकमंगल पूर्ण होता है। प्रतिरोध के लिए कवि का निर्द्वंद्व, साहसी, निर्विकार होना आवश्यक है ताकि प्रतिरोध की चेतना जगाने के लिए वह कबीर की तरह सर्वस्व खोकर भी दहाड़ता रहे। 'लिए लुकाठी हाथ' कहकर सब पीछे छोड़कर आगे बढ़ता रहे और मुक्ति की अलख जगाता रहे। कोई लोभ उसे छू न पाए। यहां 'तमगा' कविता में अरुण कमल की निर्द्वंद्व घोषणा सुनाई देती है–

"बहुत दुनिया मैंने देख ली
मोक्ष की फिर भी चाह नहीं
चौरासी लाख योनियों में भटकता फिरुंगा
ऐसे ही भोग और राग में लिप्त
अन्न और औरत के मोह में पागल...।"

अरुण कमल मानवीय जीवन के प्रति अपनी निष्ठा और समर्पण के भाव को प्रदर्शित करते हैं। वे संसार में संसारी प्राणी बनकर रहना चाहते हैं ताकि मानव-मात्र के प्रति होने वाले अन्याय के प्रतिरोध हेतु ऐसी आवाज उठाते रहें–

"कैसा समय कि छुट्टा सांड़
गौवों की नांद में सींग मार रहा है
और कोई बोल नहीं सकता...।" –(तुम चुप क्यों हो)

कवि मनुष्य की सोई हुई चेतना को जगाने के लिए उसे झकझोरता है। यहां परमानंद श्रीवास्तव की यह टिप्पणी महत्वपूर्ण है कि– "अरुण कमल की कविता से नया सौंदर्यशास्त्र बनाने में अधिक मदद मिल सकती है। केवल आशा, विश्वास, आस्था की स्वीकृति में ही हम इस जीवन-धर्मिता को नहीं पहचानते। कठिनता, निराशा और अंधकार में भी जीवनधर्मी लगाव छिपे नहीं रहते। व्यापक अर्थ में (पर, अनिश्चित अर्थ में नहीं) जीवन-धर्मी, काव्यत्व में प्रेम, मानवीय करूणा, संघर्ष, उत्साह, आवेग, जीवटता, कर्म-सौंदर्य की पहचान, साहस, प्रकृति से

लगाव, समय की चेतना, इतिहास-बोध, वर्ग-चेतना, जन-पक्षधरता आदि के साथ वह विश्वदृष्टि भी निहित होती है जो समाज के क्रांतिकारी बदलाव के लिए प्रेरणा देती है। जिस प्रकार त्रिलोचन की कविता में 'जीवनधारा' की अनिवार्य स्वीकृति है, उसी प्रकार अरुण कमल की कविता में जीवन यात्रा अनवरत जारी है।" अरुण कमल की कविता की मौलिकता सुखद है और इस अर्थ में विशिष्ट है कि वे शोषक और शोषित दोनों पक्षों को उनके यथार्थ से परिचित कराते हैं। शोषक शोषण करने के लिए क्यों उद्यत हुआ और शोषित को चुप नहीं रहना चाहिए, वे दोनों ओर से वक्तव्य देकर गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास करते हैं। अरुण कमल का 'सबूत' कविता संग्रह विरोध की चेतना जगाने वाली कविताओं का संग्रह है। वे अत्यंत सादगी के साथ 'उल्लंघन' कविता में धनाढ्य वर्ग के यथार्थ पर उंगली रखते हैं–

"जो लोग बहुधा कला की बात करते हैं
उनसे मेरा कहना है कि हाथी बनाने से कहीं ज्यादा
बहुत ही ज्यादा मुश्किल है चींटी बनाना,
वैसे यह भी सही है कि जिसके पास ढेर सारा शहद है
वह एक करोड़ चींटियां रचने के बजाय
एक अच्छा सा हाथी क्यों नहीं बनाएगा, बल्कि निर्मित करेगा?
और ये दोनों कला की दो अतियों के प्रमाण हैं
और इसीलिए एक-दूसरे के तोड़ भी,
और मजे की बात यह कि दोनों ही उल्लंघन हैं
यथार्थ का...।"

अरुण कमल निर्दोषों की चुप्पी के खिलाफ हैं। जो लोग अत्याचार सहकर, अन्याय सहकर भी चुप हैं, अपनी निर्दोषता के पक्ष में आवाज नहीं उठा सकते, वे यातना सहते हैं और शोषक अत्याचारी वर्ग उनकी चुप्पी का, भीरुता का लाभ उठाता है, सम्मान और पुरस्कार पाता है। इस यथार्थ का परिचय कराती कविताएं 'सबूत' और 'उत्सव' अत्यंत रोचक हैं। देखिए–

"जो निर्दोष हैं वे दंग हैं हैरत से चुप हैं
शक है उन पर जो निर्दोष हैं क्योंकि वे चुप हैं।" –(सबूत)
"देखो हत्यारों को मिलता राजपाट सम्मान..
प्रजातंत्र का महामहोत्सव छप्पन विध पकवान
जिनके मुंह में कौर मांस का उनको मगही पान।" –(उत्सव)

ये कविताएं हमारे देश के राजनीतिक षड़यंत्रों और कानूनी विसंगतियों की ओर संकेत करती हैं। 'सबूत' कविता की सार्थकता पर दिविक रमेश जी की टिप्पणी पठनीय है– "वस्तुत: यह कविता, कविता की अपनी समृद्ध परंपरा की ओर लौटती नजर आयी है–कुछ ऐसे जैसे किसी कबीले में जाकर, कबीले की तमाम अपनी विशिष्टताओं के बीच, सार्वभौम मानवीय सरोकारों की डगर से एक-दूसरे में कुछ यूं उतर जाना कि एक ओर तो गैरपन की तमाम औपचारिकताएं खत्म हो जाएं और दूसरी ओर संवाद की खुली स्थितियां संभावित हो जाएं और एक अनिवार्य सहयोगी संघर्ष की लौ दमकने लगे। अभी यह तो नहीं कहा जा सकता कि किसी एक कवि ने ऐसी कविता की पूर्ण उपलब्धि करा दी है लेकिन इतना जरूर

है कि पिछले वर्षों में अनेक कवियों ने मिलकर ऐसी कविताओं को जरूर संभव किया है। ऐसे कवियों में एक नाम विशेष रूप से अरुण कमल का है।" अरुण कमल के प्रतिरोध में सूक्ष्म दृष्टि से किया गया सामाजिक अवलोकन पक्ष का कारण कविता में दिखाई देता है। यहां व्यंग्य का तीखापन भी है–

"पूरी बहस में मैं जूता उतारने के खिलाफ था
और अकसर ऐसा देखा गया है कि जो जितना भ्रष्ट और व्यभिचारी है
वह उतना ही जूते उतारकर भीतर बुलाने का हामी
और तो और उसका वश चले तो जांघिया भी उतरवा ले
क्योंकि बाहर की गंदगी केवल जूतों के जरिए ही तो अंदर नहीं आती...।"

संकीर्ण मानसिकता और वैचारिक गंदगी समाज को पतन के मार्ग पर ले जाती है। स्वार्थ, लालच, असीमित महत्वाकांक्षाएं, अधूरा ज्ञान और आत्मकेंद्रित दृष्टि मनुष्य को आंतरिक स्तर पर बीमार बनाती हैं। वह कुंठित होता है और अपनी कुंठा और अज्ञान से मनुष्यता के लिए घातक हो जाता है। राजनीति ऐसी अवस्था में 'कोढ़ में खाज' की भूमिका का निर्वाह करती है। "कवि अरुण कमल की कविताओं में रजनीति भी जीवन का वैसे ही एक अनिवार्य तत्व है जैसे शारीरिक प्रेम। राजनीतिक सत्ता द्वारा किए जा रहे मानव जीवन के निरंतर क्षरण एवं दरिद्रीकरण तथा आभ्यंतर के अतिक्रमण को तीक्ष्णता से प्रस्तुत करते हुए ये कविताएं उन स्वरों, उन प्रसंगों की खोज भी करती हैं जो सत्ता का निषेध या प्रतिरोध हैं और इसीलिए ये जीवन के श्रेष्ठतम मूल्यों का समर्थन भी करती है।" –(फ्लैप-पुतली में संसार)। अरुण कमल राजनैतिक यथार्थ को सहजता से अभिव्यक्ति देते हैं–

"ऐसा ही वक्त आ गया है
जब गुंडे बेला के फूलों की माला पहन
जै-जै कार करा रहे हैं।" –(वक्त)

प्रतिरोध के लिए समय और परिस्थितियों के यथार्थ को केवल देखना ही काफी नहीं है बल्कि समझना और आत्मसात करना भी अति आवश्यक है। अरुण कमल भाषा को सहज बनाने के लिए देशज शब्दों जैसे-नोनी, छोपना, हुमचना का प्रयोग करते हैं। हिंदी, उर्दू, संस्कृत एवं अंग्रेजी का सामंजस्य भाषा को रोचक और विषय को बोधगम्य बनाता है। अरुण कमल के प्रतिरोध का ढंग प्रखर होते हुए भी बेलगाम नहीं होता। वे आवेश में आकर प्रलाप करने या उत्तेजित होने एवं कोरे संवादों में विश्वास नहीं रखते। वे दृढ़ता और आत्मविश्वास के साथ अपना प्रतिरोध दर्ज कराते हैं। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय आदि प्रतिष्ठित एवं ऊर्जावान कवियों का प्रभाव अरुण कमल की कविताओं में दिखाई देता है। वे प्रतिरोध की चेतना जागृत करने के लिए आत्मदृढ़ता पर बल देते हैं। मनुष्य में इतना आत्मबल हो कि वह परिस्थितियों के आगे हार न माने–

"मैं बर्फ हो सकता हूं
पानी और भाप हो सकता हूं
लेकिन कीचड़ नहीं
कभी नहीं.....।" –(संबंध)

अपने स्वत्व को बचा कर रखना और आस-पास की षड्यंत्रकारी शक्तियों के प्रति सावधान रहना आवश्यक है ताकि समय आने पर स्वयं की रक्षा की जा सके। यह प्रत्येक मनुष्य का उत्तरदायित्व है कि वह स्वयं के प्रति, परिवार, समाज एवं देश के प्रति हर क्षण किए जाने वाले प्रयत्नों एवं गतिविधियों पर सूक्ष्म दृष्टि रखे। वैज्ञानिक आधुनिक युग ने जहां शिक्षा के नये सोपान देकर आत्मविश्वास बढ़ाया है वहीं एक-दूसरे के प्रति अविश्वास बढ़ाकर दूरियों को भी जन्म दिया है। शत्रु किस रूप में सामने आएगा कहा नहीं जा सकता। अरुण कमल 'खतरा' कविता में यह चेतावनी देते हैं–

"चैत की भोर से ज्यादा खतरनाक कुछ भी नहीं
खतरा उससे है जो बिलकुल खतरनाक नहीं।"

यह वर्तमान का सत्य है। बहुरूपियापन, दोगलापन और दगाबाजी वर्तमान समाज में गहरी पैठ बनाए हुए हैं। जो मित्र बनकर आते हैं वे आसानी से पीठ में छुरा घोंपकर चले जाते हैं। मनुष्य की पहचान कठिन हो गई है। यह सत्य साहित्य में प्रतिबिंबित होकर सचेत करने का उत्तरदायित्व निभाता है। अरुण कमल की कविताएं ठेठ जीवन के निकट का काव्य होने के कारण मर्मस्पर्शी तथा उन छोटे-छोटे बिंदुओं पर भी ध्यान आकर्षित कराती हैं जिन्हें हम जीवन की रोजमर्रा की मामूली गतिविधियां समझकर उपेक्षित कर देते हैं। भीष्म साहनी सद्साहित्य पर रोचक टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि– "पाठक को वह साहित्य रुचता है, जिसमें जीवन की झलक मिले, जिसमें प्रामाणिकता हो, जो जीवन की तह में से उभरकर आया हो, जिसमें जीवन की सच्चाई का अक्स मिले। सवाल सरल भाषा या दुरूह भाषा का नहीं है। सवाल भावनाओं का है, जीवन दृष्टि का है, जिंदगी की पकड़ का है। साहित्य मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। जहां सच्ची संवेदना नहीं है, वहां शब्दों का प्रयोग मात्र शब्दाडंबर होगा। जहां प्रामाणिकता होगी, वहां भाषा की दुरूहता के बावजूद रचना पढ़ने वाले के दिल तक जा पहुंचेगी।" अरुण कमल की कविताएं उपरोक्त कसौटी पर खरी उतरती हैं। वे मनुष्य की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। चाहे वह मनुष्य किसी भी जाति, धर्म या वर्ग का हो। वे बच्चों के स्वप्न पूरा करना चाहते हैं, स्त्रियों को उनके हिस्से की स्वतंत्रता, सुख और तमाम अधिकार देना चाहते हैं। किंतु वे यथार्थ दर्शाते हैं–

"खत्म नहीं होंगे आदिम आदर्श
खत्म नहीं होगा स्वतंत्रता समानता का स्वप्न
जो उतना ही झूठ है उतना ही सच
जितना कि शून्य जितना अनन्त।"

–(हमारे युग का नायक)

यह संघर्ष है जो निरंतर जारी रहेगा। वे चाहते हैं मनुष्य अपने अधिकारों को जान ले और उनका उपयोग करना ठान ले तो उसकी चेतना उसे अपने विरुद्ध हो रहे हर अन्याय से लड़ने के लिए प्रेरित करती रहेगी। ऐसे बुरे समय में जब– "छुरा भांजते गुंडे छुट्टा घूम रहे हैं/और अपने ही घर की चौखट पर/बैठा आदमी/मारा जा रहा है।" तब प्रत्येक का जागरूक होना और निर्भीक योद्धा होना आवश्यक है। अरुण कमल व्यंग्य की महीन मार भी करते हैं जो शास्त्र और शस्त्रों से ज्यादा मारक होती है। राजनीति ने जीवन के हर पक्ष को अपने काले, विषैले पंजों से जकड़ लिया है। पक्ष चाहे व्यक्तिगत हो, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा आर्थिक हो राजनीति हर जगह अपना प्रभाव दर्शाती है। फलतः अन्याय प्रश्रय पाता है और एक अकेला

मनुष्य हो या समूह हो, लड़ते-लड़ते टूट जाते हैं लेकिन राजनीतिक क्रूरता और दांव-पेंचों से बाहर नहीं निकल पाते। ऐसी निर्मम राजनीति पर व्यंग्य करते हुए तथा प्रशासन के अन्याय को रेखांकित करते हुए अरुण कमल लिखते हैं–

"संसद के संयुक्त अधिवेशन ने ध्वनि मत से
संविधान का अंतिम संशोधन पारित कर दिया
जिसके अनुसार अब से किसी भी सिक्के में
एक ही पहलू होगा
इस प्रकार सहस्रों वर्षों से चला आ रहा
अन्याय समाप्त हुआ।"

अरुण कमल कविताओं में केवल तथ्य के रूप में यथार्थ को दर्ज नहीं करते बल्कि वे कठिन से कठिनतर होते यथार्थ को दर्शाकर सचेत भी करते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं ताकि यह चेतना पाठकों हेतु, अन्याय के प्रतिरोध के लिए संघर्ष की शक्ति जुटाने में ईंधन की भांति सहायक बने। अरुण कमल ने विश्रामपुर में मारे गए मजदूरों, बोकारों, बड़हिया कांड, बिहार के जातीय दंगों को काव्य का विषय बनाया है। कहीं कुछ सूक्तियां, विचार और कहीं बयान प्रतिरोध दर्ज कराते प्रतीत होते हैं। वर्तमान में समाज जिन जीवन-मूल्यों को जी रहा है उसकी यथार्थ प्रदर्शनी काव्य में लगाकर वे काव्य-मूल्यों की परंपरागत दिशा में जाने का प्रयत्न करते हैं जिससे कि वे अन्याय का प्रतिरोध करने की चेतना जगाकर, अन्याय का उन्मूलन करने के लिए जन समूह को प्रेरित कर सकें; तभी लोकमंगल की स्थापना होगी। वे आदर्शवादी समाज की कल्पना करते हैं तथा किसी को उसके अधिकारों से वंचित नहीं देखना चाहते। 'मनुष्य गंध' कविता में वे लिखते हैं–

"जो नया जीवन रच रहे हैं
जो उठा रहे हैं नयी भित्तियां
उनके ही जिम्मे है खंडहरों को बचाने का भार
ये खंडहर मनुष्यता के चरण चिह्न।"

अरुण कमल नयी पीढ़ी को उत्तरदायित्व सौंपते हैं- 'मनुष्यता को बचाने का'। वे आशावादी कवि हैं। दुख, संघर्ष, अभाव, अन्याय और अत्याचार से लड़ते-लड़ते भी उनकी जीवनधर्मिता की लौ मंद नहीं पड़ती। 'आत्मा का रोकड़' लिखते हुए वे कहते हैं–

"कि एक न एक दिन बदलेगा सब कुछ
कि यही है नियम और यही होगा भागफल।"

अरुण कमल की चिंताएं, उनके भीतर का धुआं उनकी काव्यात्मकता को अर्थ प्रदान करता है। कवि की दृष्टि व्यापक है और गहन भी इसीलिए वे हर वर्ग, धर्म, जाति, देश, विदेश, प्रकृति, जड़-चेतन के अनुभवों को अभिव्यक्ति दे सकते हैं।

13.4 समसामयिक जीवन के प्रश्न और अरुण कमल की कविता

जीवन जीने के लिए कुछ मूलभूत आवश्यकताएं अहम् होती हैं। उन आवश्यकताओं की पूर्ति परिस्थितियों पर निर्भर करती है। मनुष्य के अंतर्बाह्य की अलग-अलग आवश्यकताएं हैं-कुछ मन की, कुछ देह की, कुछ बुद्धि की....। प्रत्येक आवश्यकता का अपना-अपना महत्व है और

उनके अलग-अलग पूर्ति के स्रोत हैं। यही आवश्यकताएं जीवन के प्रश्न बनकर खड़ी होती हैं। स्त्रियों और पुरुषों के लिए जीवन के प्रश्न किसी स्तर पर अलग-अलग होते हैं। स्त्रियों को मनुष्य की तरह जीने का अधिकार चाहिए, अशिक्षा से, रूढ़ियों से, पुरुषों की अधीनता से मुक्ति चाहिए ताकि वह मानव समाज में बराबरी का दर्जा पा सकें। अरुण कमल इस प्रसंग को 'स्वप्न' कविता में अभिव्यक्ति देते हैं जो स्त्री की आंतरिक पीड़ा को दर्शाती है–

"वह बार-बार भागती रही
बार-बार हर रात एक ही सपना देखती
ताकि भूल न जाए मुक्ति की इच्छा
मुक्ति न भी मिले तो बना रहे मुक्ति का स्वप्न
बदले न भी जीवन तो जीवित बचे बदलने का यत्न।"

सुख और दुख का चक्र निरंतर गतिशील है। इस चक्र में फंसा मनुष्य कभी हारता है, कभी टूटता है और कभी अपनी अदम्य जिजीविषा के बल पर पुनः संघर्षरत हो उठता है। अरुण कमल 'खीरा', 'ईख का रस' जैसी कविताओं के माध्यम से मनुष्य के चेतन-अचेतन के द्वंद्व को, गोपनीयता को स्वर देते हैं। उनकी 'आत्मकथ्य' कविता जीवन और संसार के अंतर्संबंधों की सरल और सहज अभिव्यक्ति है–

"दुनिया में इतना दुख है इतना ज्वर
सुख के लिए चाहिए बस दो रोटी और एक घर
और वही दिन-ब-दिन मुश्किल पड़ रहा है।"

बढ़ती महंगाई और बेरोजगारी की समस्या के कारण 'एक अपनी छत हो' यह सपना पूरा होने में जीवन गुजर जाता है। दो रोटी, तन ढंकने के लिए वस्त्र और मकान ये मूलभूत प्रश्न थे जो इस वैज्ञानिक युग में कुछ और विस्तार पा गए हैं। गांवों से शहरों की ओर पलायन कर निम्न वर्ग शहर में जाकर दो रोटी कमाने के लिए पशुओं से भी बदतर जीवन जीता है। पुरुषों का पौरुष और स्त्रियों का स्त्रित्व पेट की आग के हवाले हो जाता है। निम्न वर्ग तो संघर्ष करते-करते वहीं गुमनामी के अंधेरे में खो जाता है किंतु मध्य वर्ग और निम्न वर्ग का कोई-कोई सौभाग्यशाली अगर संघर्ष से थककर वापस लौटता है तो उसकी पीड़ा का अंत नहीं होता। 'गृह प्रवेश' कविता में अरुण कमल लिखते हैं–

"लौट रहा अब भारी डग से
डरता रहता अपने द्वार
सुई नोंक भर धरती अपनी
सुई नोंक भर कविता भूमि
तीर बिंधा पक्षी हूं मैं तो
मेरा नीड़ वहां उस तरु पर
जिसका सोर पताल।"

अरुण कमल की संवेदनशीलता उनकी कविताओं की धार है। वे दुखों को भी उसी भाव से स्वीकार करते हैं जिस भाव से सुख को। गति ही जीवन है। 'आश्विन', 'आतप', 'बारिश', 'हरसिंगार', 'सुबह', 'शाम', 'अनुभव' आदि सूक्ष्म अनुभूतियों के रूप में शब्द अरुण कमल

के काव्य में स्थान पाकर सार्थकता का बोध कराते हैं। इन कविताओं में अनुभवों की परिपक्वता दिखाई देती है। 'पुतली में संसार' काव्य संग्रह तक आते-आते कवि की दृष्टि अधिक गहन और सघन हो गयी प्रतीत होती है। इस काव्य संग्रह के फ्लैप पर दी गई टिप्पणी इन कविताओं में बंधे जीवन के प्रश्नों पर प्रकाश डालती है– "गहरे दुख एवं विषाद से भरी ये कविताएं आज के संपूर्ण भारतीय जीवन के दुख और विषाद को वाणी देती हैं। यह आपबीती है और जग बीती भी। ऐसी गहरी करुणा, प्रेम और ऐन्द्रिकता समकालीन कविता में अन्यत्र दुर्लभ है। वास्तव में यह 'संपूर्ण कविता' है। जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन के हर मुहूर्त में उपस्थित एवं शरीक। कम से कम में अधिक से अधिक कहने की विवशता इन कविताओं को बिम्बात्मक, सघन एवं सांद्र बनाती है। यहां हर कविता का अलग स्थापत्य है, अलग लयकारी। यहां कोई भी शिल्प रीति नहीं बनता।" अरुण कमल मानते हैं– "जुल्म के खिलाफ लड़ने की उम्र कभी खत्म नहीं होती।" कवि धरती से जुड़ा मनुष्य है। वह जानता है कि दिनभर मजदूरी करने वाला मजदूर और चौबीस घंटे काम में मग्न स्त्री को भरपेट भोजन नहीं मिलता तो उनकी चुप्पी के पीछे कितनी पीड़ा और मूक प्रश्न होते हैं। ये दोनों पात्र ही शोषण के सर्वाधिक शिकार होते हैं। परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं– "दुखों की स्वीकृति भी जीवन की स्वीकृति के बाहर की चीज नहीं है। दरजिन, कुबड़ी बुढ़िया, भौजी-जैसे जो स्त्री-बिम्ब अरुण कमल के यहां उभरते हैं वे उसी दृष्टि से प्रेरित हैं जो मानकर चलती है कि भारतीय समाज में शोषण के सबसे अधिक शिकार हैं–किसान और स्त्रियां। प्रेमचंद के यहां यही दृष्टि सामाजिक यथार्थ के प्रामाणिक निरूपण का आधार बनती है।" निरंतर शोषण का शिकार मनुष्य अपना आत्मविश्वास खो देता है। उसका आत्बल क्षीण हो जाता है और वह भविष्य के सुख का स्वप्न देखने का भी साहस नहीं जुटा पाता। उसे सुख से जीने का अवसर मिले भी तो उसे विश्वास नहीं होता कि वह उसे, उस सुख को संभाल सकेगा–

"तोलता हूं अपना शरीर
बंद रहा पिंजड़े में इतने दिन
कि उठूं भी अगर तो भय है
फड़के एक पंख दूसरा हिले भी नहीं।" –(भय)

अरुण कमल भौतिक आवश्यकताओं को ही जीने के साधन या जीवन के प्रश्नों के रूप में उपस्थित नहीं करते बल्कि वे इन सबसे इतर अंतर्मन की भूख-प्यास को भी रेखांकित करते हैं। इक्कीसवीं सदी की इस भागमभाग वाली जिंदगी में मनुष्य अपनी असीमित महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति की दौड़ में लगा है। उसकी संवेदनाएं पथरा रही हैं। वह अपने घर-परिवार-समाज के सुख-दुख में सम्मिलित होने का समय नहीं निकाल पाता, न ही इस बात को महत्व देता है कि उसे सम्मिलित होना चाहिए। इस तरह वह एकाकी होता जाता है। उसे रास्ते में आंखों के सामने होती हत्याएं, बलात्कार की घटनाएं विचलित नहीं करती क्योंकि 'यह दूसरों का मामला है उसे क्या लेना-देना' वाला भाव उसके भीतर जड़ जमा चुका है। मनुष्य की यह यांत्रिकता अरुण कमल को बेचैन करती है। वे लिखते हैं–

"पेड़ को पत्थर बनने में लगा है हजार वर्ष
आदमी देखते-देखते पत्थर बन रहा है
ऐसा क्यों, आखिर क्यों हो रहा है।"

परिवारों का विकेंद्रीकरण आर्थिक दृष्टि से भले ही लाभ का व्यापार हो किंतु भावनात्मक दृष्टि से यह मनुष्यता की हानि है। साथ रहने से दुखों का बोझ हल्का लगता है तथा छोटे से सुखों की अनुभूति कई गुना बढ़ जाती है। भारतीय समाज की इस हानि से अरुण कमल विचलित होते हैं। घटती हुई संवेदनशीलता उन्हें बेधती है। 'छोटी दुनिया' कविता में वे लिखते हैं–

"इतनी छोटी हो गई है दुनिया एक नक्शेभर
जब आप आराम से खाना खा रहे हैं
तो बिलकुल पास में कोई भूख से दम तोड़ रहा है–
चैन नहीं है कभी, सुख नहीं है अकेले-अकेले
सबके साथ ही सुख है, सबके दुख में दुख।"

अरुण कमल वर्तमान भारतीय समाज की क्रूर अमानवीय व्यवस्था के यथार्थ को सरल, सहज, मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति देते हैं। दिविक रमेश कहते हैं– "अरुण कमल के पास अनुभव वैविध्य और सही सोच की- 'टॉर्च' तो है ही, साथ ही अपने अनुभवों को काव्यानुभव बनाने के लिए लोक संगीत, छंदात्मकता, लय और उनसे भी ऊपर जीवंत लोक-भाषा की ताकत भी है। इसके अतिरिक्त 'घने अंधकार में चमक रहा है जल' जैसे बिम्बों के सृजन की कवि शक्ति भी है।" और यह शक्ति अत्यंत प्रबल तथा महत्वपूर्ण है क्योंकि रचनात्मकता लोक जीवन से जुड़कर जीवंतता को सार्थक करती है। मनुष्य जीवन के प्रश्नों को सुलझाते, उनका उत्तर खोजते हुए अरुण कमल की 'इच्छा' है–

"मैं जब उठूं तो भादो हो
पूरा चंद्रमा उगा हो ताड़ के फल-सा
गंगा भरी हों धरती के बराबर
खेत धान से धधाए
और हवा में तीज त्योहार की गमक
इतना भरा हो संसार
कि जब मैं उठूं तो चींटी भर जगह भी
खाली न हो।"

अरुण कमल की इच्छा उनके श्रेष्ठ मनुष्य, श्रेष्ठ कवि, श्रेष्ठ अध्यापक होने को प्रमाणित करती है। रचना में कवि का व्यक्तित्व झलकता है। रचना की गहनता और व्यापकता से कवि के दृष्टिकोण का पता चलता है। इस दृष्टि से अरुण कमल की काव्यात्मकता में विश्व-बंधुत्व का-सा सौंदर्य है। वे सृष्टि के सौंदर्य को मनुष्य जीवन के सौंदर्य के साथ मिलाकर देखते हुए जीवन के प्रश्नों का हल ढूंढते हैं। मनुष्य-हृदय की सूक्ष्म अनुभूतियों को सुंदर बिम्बों में ढालकर प्रस्तुत करने की कला में अरुण कमल सिद्धहस्त हैं। निस्संदेह ये प्रगतिशील यथार्थवादी कवियों की श्रेणी में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

को। तब भी लोग कुछ समय के लिए अपने घरों से दूर जाते हैं या प्रशासन द्वारा भेज दिए जाते हैं और बाढ़ के समाप्त होते ही लोग पुनः अपने उन्हीं उजड़े घरों में लौट आते हैं। ऐसा क्यों? क्यों वे ऐसे स्थान को सदा के लिए नहीं छोड़ते बल्कि लौटकर उन्हीं उजड़े घरों को बसाने, सजाने-संवारने में जुट जाते हैं?

कवि कहता है कि हर वर्ष तूफान आता है समुद्र में और तट पर बनी बसी बस्तियों को लील जाता है, सब कुछ समेटकर अपने साथ ले जाता है। इन बस्तियों में रहने वाले लोग तूफान के आने का संकेत समझते हैं इसलिए वहां से निर्वासित हो जाते हैं लेकिन कुछ समय बाद तूफान के शांत होते ही वापस अपने घरों में अपनी बस्ती में लौट आते हैं। जब ये जानते हैं कि तूफान हमेशा आता रहेगा तो ये ऐसे तटवर्ती स्थानों को छोड़कर सदा के लिए दूर सुरक्षित स्थानों पर क्यों नहीं चले जाते? मैं समझ नहीं पाया कि आज तक ये इस तरह बार-बार क्यों लौट आते हैं?

कवि कहते हैं अधिकांश गांवों में हर वर्ष अकाल पड़ता है और लोग भूख से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। पशु-पक्षी भी दाना-पानी-घास के लिए तरसते हैं और छटपटा-छटपटा कर मर जाते हैं। गाएं हरियाली की खोज में भटकती हैं और सूखे के कारण पानी के अभाव में फटी हुई धरती की दरारों में उन गायों के खुर (पैर) फंस जाते हैं। तड़प कर मरते हुए पशुओं और प्रियजनों, परिजनों को देखता हुआ मनुष्य रोता है, छटपटाता है लेकिन अपना गांव, घर छोड़कर नहीं जाता। क्यों? उसे किस बात की, किस चमत्कार की प्रतीक्षा रहती है कि सब कुछ खोकर भी अपने घर-द्वार को नहीं छोड़ता?

कवि कहते हैं कल भी बाढ़ आयेगी, तूफान आएगा, अकाल पड़ेगा यह सब चलता रहेगा। यह जानता है मनुष्य, लेकिन फिर भी वह अपना घर, गांव, अपनी भूमि को नहीं छोड़ता। ऐसा क्यों? मैं समझ नहीं पाता हूं।

मनुष्य तो मनुष्य, पक्षी भी अपना बसेरा, अपनी बसाहट, अपने नीड़ को नहीं छोड़ते। भीषण गर्मी में, पतझड़ में जब एक भी पत्ता पेड़ों पर नहीं बचता। कहीं हरियाली नहीं होती। पेड़ ठूंठ बनकर खड़े रहते हैं तब भी सूर्य के डूबते-डूबते अर्थात संध्या समय अपने निर्धारित समय में दूर-दूर से कलरव करते, शोर मचाते पक्षियों का समूह, पंख फड़फड़ाता हुआ लौटता है और ठूंठ पर बने अपने घोंसलों में दुबक जाता है। क्यों? कवि समझ नहीं पाता है कि ये पक्षी ठूंठ को छोड़कर हरे-भरे जंगलों की ओर क्यों नहीं चले जाते। वे गर्मी में प्यास और हरियाली के बिना ताप सहते हुए मरने लगते हैं लेकिन कहीं और नहीं जाते। क्यों?

कवि के प्रश्न में ही उत्तर छिपा है। यहां कवि दर्शाना चाहता है कि मनुष्य का भाग्यवादी दृष्टिकोण, मातृभूमि, कर्मभूमि से प्रेम और उसकी उत्कट जिजीविषा उसे कहीं जाने नहीं देती, बचाए और बांधे रखती है। प्रथम बिंदु भाग्यवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करें तो यह इस तरह होगा कि-भारतीय समाज चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित 'रामचरितमानस' और 'गीता' में वर्णित भाग्य के लेख की महत्ता को धारण किए हुए है। उसका अवचेतन और चेतन इन धर्म ग्रंथों से, किस्मत के कथित लेख से परंपरागत रूप से बंधा है। वह जानता है कि भाग्य के लेख को कोई मिटा नहीं सकता और उसके भाग्य में जो और जितना सुख और दुख लिखा है वह उसे भोगना ही है चाहे वह कहीं पर रहे। बिना ग्रंथ पढ़े ही भारतीय ग्रामीण इन पंक्तियों को जानता है-

"सुनहू भरत भावी प्रबल बिलरिव कहेऊ मुनिनाथ।
हानि, लाभ, जीवन मरन जस अपजस बिधि हाथ।।
देव, दनुज, नर, नाग सुर कोउ न मेटनिहार।
मासा बढ़े न तिल घटे जो बिधि लिखा लिलार।।"

यही कारण है कि वह प्रत्येक सुख-दुख को भाग्य का लिखा मानकर सामान्य रूप में सहता है लेकिन अपना घर छोड़कर नहीं जाता। द्वितीय बिंदु उसका अपनी मातृभूमि और कर्मभूमि से प्रेम है। जिस धरती पर उसके पूर्वजों ने, उसने जन्म लिया और जीवन के सुखों का भोग किया, जहां कर्म करके उसने अपने मनुष्य जीवन को सार्थक किया उसे कैसे छोड़ सकता है? जब सुख में वह धरती के साथ था, घर परिवार के साथ, अपने समाज के साथ था तो दुख आने पर भी वह उस धरती यानि मातृभूमि के साथ अपना भावनात्मक संबंध जोड़कर देखता है। हम भारतवासियों की यह गौरवशाली समृद्ध परंपरा और संस्कृति है। तृतीय और मूलभूत बिंदु है उत्कट जिजीविषा। उत्कट यानि जो न कटे, समाप्त न हो और जिजीविषा यानि विपरीत स्थितियों में भी जीने की अदम्य इच्छा। मनुष्य मूलत: आशावादी है। दुखों, अभावों, अन्याय और अत्याचारों को सीमा से अधिक सहन करता है और उसकी सहनशीलता के पीछे छिपी होती है आशा की एक किरण कि आज नहीं तो कल, एक न एक दिन सब ठीक होगा। उसकी दुख सहने की पराकाष्ठा यह है कि जिन प्रियजनों के बिना वह एक क्षण भी जीने की कल्पना नहीं कर सकता उन्हीं प्रियजनों की मृत्यु हो जाने पर उन्हें श्मशान में फूंक कर आता है और तुरंत भोजन ग्रहण करता है। संसार का चक्र चलता रहता है, जीवन का चक्र इसी तरह चलता रहता है। हर प्राणी दुखों और सुखों के घूमते पहिए से परिचित है, चाहे वह मनुष्य हो या पक्षी। इसलिए वे अपना बसेरा नहीं छोड़ते। दुख बार-बार उन्हें खदेड़कर उनकी परीक्षा लेता है, किंतु मनुष्य की जिजीविषा और उसके आत्मबल को पराजित नहीं कर पाता।

विशेष

1. सरल, सरस प्रवाहमयी भाषा-शैली है।
2. सादगी व संघर्षपूर्ण जीवन-दर्शन की प्रस्तुति है।
3. 'मुआर', 'दियारा' जैसे देशज शब्दों द्वारा मार्मिकता-रोचकता की सृष्टि की गई है।
4. प्रश्नात्मक शैली का अद्‌भुत सौंदर्य है।

गतिविधि

कवि अरुण कमल और रघुवीर सहाय की कविताओं का अध्ययन कर उनकी भाषा-शैली की विशेषताओं पर एक लेख तैयार कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

अरुण कमल की कथोपकथन और आलोचना विषयक साक्षात्कार संदर्भित पुस्तक 'गोलमेज' अत्यंत चर्चित हुई है।

13.6 सारांश

काव्य-मूल्य समाज के यथार्थ और उसकी आवश्यकता का अनुसरण करते हैं। साहित्य समाज का दर्पण है और समाज मनुष्यों का समूह है अर्थात मानवीय मूल्यों को ही समाज और साहित्य में देखा जा सकता है। अरुण कमल जीवनधर्मी एवं यथार्थवादी प्रगतिशील कवि हैं अर्थात वे समाज के यथार्थ को-गरीबी, अभाव, भ्रष्टाचार, पिछड़ापन आदि को अपने काव्य में स्थान देते हैं तथा भारतीय समाज को विसंगतियों एवं विकृतियों से मुक्त कर प्रगति के पथ पर अग्रसर देखना चाहते हैं।

परमानंद श्रीवास्तव कहते हैं– "जो आदमी से आदमी के सुख-दुख और संघर्ष से लगाव नहीं महसूस करते, जो सच्ची जीवन शक्ति से वंचित हैं, जिनकी दुनिया कला और हुनर तक सीमित है, जो जीवन को अनुभव-प्रत्यक्ष से नहीं अवधारणाओं में जानते हैं वे कोमल रागात्मकता और कठोर प्रतिरोध के इस संतुलित जीवन-विवेक और काव्य विवेक को कभी भी उस अर्थ में प्रमाणित नहीं कर पाएंगे जो अरुण कमल की कवि दृष्टि और प्रतिबद्ध विचारधारा का अभिन्न अंग है।"

अरुण कमल की कविताओं में एकात्मता दिखाई देती है। वे मनुष्यता की कसौटी पर खरी उतरने वाली पंक्तियां अगर लिख पाते हैं तो शायद इसीलिए क्योंकि वे रिश्तों के मूल्य, उनकी पीड़ा, अपनों के साथ की आवश्यकता और उनसे छूटने के दर्द को समझते हैं। अरुण कमल 'स्थिति' कविता में लिखते हैं– "जो जवान बेटे को फूंक कर आया है/ उसे अकेला छोड़ना ठीक नहीं रात में।" प्रतिरोध के लिए कवि का निर्द्वंद्व, साहसी, निर्विकार होना आवश्यक है ताकि प्रतिरोध की चेतना जगाने के लिए वह कबीर की तरह सर्वस्व खोकर भी दहाड़ता रहे।

अरुण कमल की कविता की मौलिकता सुखद है और इस अर्थ में विशिष्ट है कि वे शोषक और शोषित दोनों पक्षों को उनके यथार्थ से परिचित कराते हैं। अरुण कमल निर्दोषों की चुप्पी के खिलाफ हैं। जो लोग अत्याचार सहकर, अन्याय सहकर भी चुप हैं, अपनी निर्दोषता के पक्ष में आवाज नहीं उठा सकते, वे यातना सहते हैं और शोषक अत्याचारी वर्ग उनकी चुप्पी का, भीरुता का लाभ उठाता है, सम्मान और पुरस्कार पाता है। अरुण कमल कविताओं में केवल तथ्य के रूप में यथार्थ को दर्ज नहीं करते बल्कि वे कठिन से कठिनतर होते यथार्थ को दर्शाकर पाठकों को सचेत भी करते हैं।

दिविक रमेश कहते हैं– "अरुण कमल के पास अनुभव वैविध्य और सही सोच की-'टॉर्च' तो है ही, साथ ही अपने अनुभवों को काव्यानुभव बनाने के लिए लोक-संगीत, छंदात्मकता, लय और उनसे भी ऊपर जीवंत लोक-भाषा की ताकत भी है। इसके अतिरिक्त 'घने अंधकार में चमक रहा है जल' जैसे बिम्बों के सृजन की कवि-शक्ति भी है।" मनुष्य हृदय की सूक्ष्म अनुभूतियों को सुंदर बिम्बों में ढालकर प्रस्तुत करने की कला में अरुण कमल सिद्धहस्त हैं। निस्संदेह ये प्रगतिशील यथार्थवादी कवियों की श्रेणी में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं।

13.7 मुख्य शब्दावली

- **जीवट** : हिम्मत, साहस, बहादुरी
- **ज्वार** : खरीफ की फसल में होने वाला एक मोटा अनाज, चंद्रमा के आकर्षण के कारण समुद्र के जल का ऊपर उठना
- **संत्रास** : अत्यधिक भय, आतंक, भय मिश्रित वेदना का भाव
- **निर्द्वंद्व** : हर्ष-विषाद आदि द्वंद्वों से रहित, जिसका कोई विरोधी न हो
- **नोनी** : लोनी मिट्टी, अच्छी, सुंदर
- **स्वत्व** : अपना भाव, स्वतंत्रता, अधिकार, स्वामित्व

13.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. सन् 1980 में।
2. श्रीकांत वर्मा स्मृति पुरस्कार।
3. प्रगतिशील यथार्थवादी काव्यधारा के।
4. परंपरा के प्रति।
5. परिवर्तन के साथ कदम-ताल करना या उसका पीछा करना।
6. दिविक रमेश के अनुसार।
7. 'स्थिति' कविता की।
8. लोकमंगल करना।
9. मानव जीवन के प्रति निष्ठा।
10. व्यापक संघर्ष और सहनशीलता का।
11. प्रतिरोध की चेतना से।
12. 'सबूत' काव्य संग्रह।
13. संकीर्ण मानसिकता और वैचारिक गंदगी।
14. मनुष्यता को बचाने का।
15. 'आत्मकथ्य' कविता में।
16. परमानंद श्रीवास्तव के।
17. किसान और स्त्रियां।
18. परिवारों का।

13.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. अरुण कमल की प्रमुख कृतियों का नामोल्लेख कीजिए।
2. अरुण कमल को सन् 1980 और सन् 1989 में कौन-सा पुरस्कार मिला?
3. 'अरुण कमल की कविता जीवन की जड़ों को पुष्ट करती है।' – इस पंक्ति की सार्थकता सिद्ध कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. अरुण कमल की कविता में प्रस्तुत समकालीन काव्य-मूल्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2. अरुण कमल को केंद्र में रखकर हिंदी कविता में प्रतिरोध की चेतना का रेखांकन कीजिए।
3. समसामयिक जीवन के प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में अरुण कमल की कविताओं का मूल्यांकन कीजिए।
4. सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

   (क) "आज तक मैं यह समझ नहीं पाया.....क्यों नहीं चले जाते ये लोग कहीं पर"?

   (ख) "कल भी आयेगी बाढ़.....झड़ चुके होते हैं सारे पत्ते।"

13.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. अरुण कमल, *'नये इलाके में'*, वाणी प्रकाशन।
2. प्रमुख नवगीतकार समीक्षा एवं संदर्भ (पुस्तक)।

इकाई 4 कात्यायनी

4.0 परिचय

कात्यायनी का जन्म 9 मई, 1959 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में हुआ। कवयित्री, एक्टीविस्ट और प्रकाशक होने के कारण उनके चिंतन का क्षितिज व्यापक है। भारतीय संस्कारों में पली कात्यायनी रिश्तों के, मातृभूमि के मूल्य और महत्व को समझती हैं। उनका साहित्य परंपरागत नैतिक मूल्यों के साथ आधुनिक भारत में स्त्री के मनुष्य होने की वकालत करता है। ताकि उसे भी वह सब अधिकार मिलें जो पुरुषों और आम मनुष्यों को मिलते हैं।

कात्यायनी न्याय व्यवस्था पर, कलावादियों पर, आत्मसंतुष्ट लोगों पर, विकास का दम भरने वालों पर चोट करती हैं। उनकी लेखनी प्रखर है। विष्णु खरे कात्यायनी के कवि व्यक्तित्व पर महत्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं- "यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि कला और आस्था के कई खतरे उठाते हुए भी कात्यायनी हिंदी की समूची जुझारू, प्रतिबद्ध कविता में अपने जागरूक वैविध्य से अनूठी उपस्थिति बना चुकी हैं और विकासशील सशक्त कवयित्रियों की सुखद रूप से बढ़ती हुई कतार में तो वे अपने तरह की एकमात्र है।"

रचनाएं- 'सात भाइयों के बीच चंपा' (1994), 'इस पौरुषपूर्ण समय में', 'चेहरों पर आंच', 'जादू नहीं कविता' (2002), फुटपाथ पर कुर्सी (2009), 'राख-अंधेरे की बारिश में'।

कात्यायनी की विविध कविताओं का रूसी एवं अंग्रेजी भाषा में अनुवाद हुआ है।

कात्यायनी की कविता 'हॉकी खेलती लड़कियां' अत्यंत सरल, सहज और प्रवाहमयी भाषा शैली में लिखी गई मार्मिक कविता है। यह अनलंकृत होने पर भी आकर्षित करती है। रोचकता और सरसता से परिपूर्ण है। हिंदी, अंग्रेजी के साथ देशज शब्दों का प्रयोग इनके काव्य की यथार्थ अभिव्यक्ति को सफल बनाता है।

14.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- कात्यायनी के जीवन के साथ उनकी कविताओं में स्त्री-विमर्श का अध्ययन कर पाएंगे;
- स्त्री-पीड़ा के विविध बिंबों का कात्यायनी की कविताओं द्वारा विश्लेषण कर पाएंगे;
- समसामयिक जीवन-बोध और कात्यायनी के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन कर पाएंगे।

14.2 स्त्री-विमर्श और कात्यायनी की कविता

'स्त्री-विमर्श' का तात्पर्य है स्त्री के अधिकारों और कर्तव्यों की चर्चा करना, स्त्री की स्थिति के यथार्थ से परिचित होना, उस यथार्थ को स्त्री के जीवन के लिए सकारात्मक उपलब्धि के रूप में परिणत करने की चिंता करना, स्त्री के पास क्या है? कैसा और कितना है? उसे कितना, किस रूप में काम्य है? उसके लिए शिक्षा, आत्मनिर्भर होने के अवसर, आर्थिक सुरक्षा, संपत्ति पर पुरुषों की बराबरी का अधिकार आदि पर विमर्श करना। स्त्री को इतनी स्वतंत्रता मिले कि वह मनचाहे विषयों को लेकर शिक्षा प्राप्त कर आत्मनिर्भर हो सके। यह एक ऐसी स्वतंत्रता है जो बाकी समस्त अभावों की पूर्ति कर देती है। इस स्वतंत्रता को पाकर स्त्री आत्मनिर्भर होकर आत्मविश्वास के साथ अपने सारे निर्णय स्वयं ले सकती है। वह स्वयं को अन्याय, शोषण और अत्याचारों से बचा सकती है। उसकी देह पर उसका अधिकार है। उसके स्त्रीत्व के गौरव की मीनार उसकी देह है। सामाजिक-धार्मिक मर्यादाएं, कानून सब देह को संतुलित, संयमित रखने के लिए हैं जिनका संचालन मन और मस्तिष्क करते हैं। स्त्री अपनी शिक्षा और संस्कारों से अपनी अस्मिता, अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकती है। कर्तव्यपालन एवं मर्यादापालन हर स्त्री-पुरुष के लिए आवश्यक है। ईश्वर द्वारा रची गई सृष्टि में स्त्री-पुरुषों की देह को रचने के साथ ही ब्रह्मा ने दोनों को अलग-अलग देह-विधान के नियम-कानूनों से बांधकर भेजा, जिसका सम्मान होना चाहिए। स्त्री ब्रह्मा के समतुल्य सृष्टि में लौकिक सृष्टि की रचनाकार है, जननी है। उसकी अपनी गरिमा, गौरव और प्रतिष्ठा है। अतः पुरुषों की तरह व्यभिचार के पतित मार्ग का अनुसरण उसके लिए निषिद्ध है। तात्पर्य यह कि वर्तमान में आधुनिकता-बोध के नाम पर 'स्त्री-विमर्श' करते हुए स्त्रियों और महिला कथाकारों या किसी भी साहित्यकार द्वारा स्त्री के लिए 'दैहिक स्वतंत्रता' की मांग करना गलत है। 'दैहिक स्वतंत्रता' यानि व्यभिचार पुरुषों के लिए भी गलत है। गलत को ठीक करने के बजाय स्त्रियां स्वयं के लिए भी उस गलत मार्ग पर चलने की स्वतंत्रता की मांग करें: यह तो और भी गलत है।

'स्त्री-विमर्श' स्त्री के अधिकारों के लिए होना चाहिए जो उसे स्वतंत्रता दे आत्मनिर्भर होने की। जो उसे गौरव प्रदान करे। स्त्री अपने कर्तव्यों का पालन करती हुई अपने अस्तित्व की अलग पहचान बनाए। कात्यायनी 'स्त्री-विमर्श' को सकारात्मक दिशा देने वाली कवयित्री हैं। वे स्त्री-शक्ति को जागृत कर उसे संसार के सामने लाना जानती हैं। उनकी 'इस स्त्री से डरो' कविता दृष्टव्य है-

"यह स्त्री
सब कुछ जानती है
पिंजरे के बारे में
जाल के बारे में
यंत्रणागृहों के बारे में
रहस्यमय हैं स्त्री की उलटबांसियां
इन्हें समझो।
इस स्त्री से डरो।"

स्त्री की सहनशीलता, कर्मठता, समर्पण और लगन सरीखे गुण उसे पुरुष समाज में ईर्ष्या-द्वेष का कारण बनाते हैं। अवसर पाते ही वह अपने उपरोक्त गुणों के कारण पुरुषों से दोगुनी तरक्की कर सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित हो सकती है। यही कारण है कि पुरुष प्रधान समाज उसकी शिक्षा, चेतना और संवादों से भयभीत होता है। पहले स्त्रियां चिंतन का विषय नहीं थीं। घर के भीतर परंपरागत शोषण, अन्याय, अत्याचार सहते हुए पुरुष की सेवा में उपस्थित रहती थी तो समाज निश्चिंत था, लेकिन जिस दिन से उसने शिक्षा की ओर पग बढ़ाया, सचेत हुई और अपने अधिकारों के लिए बोलना सीखा, शोषण का विरोध किया उसी दिन से शोषक समाज में चिंता और भय व्याप्त हो गया। कात्यायनी ने इस तथ्य को रोचक अभिव्यक्ति दी है-

"न जाने क्या सूझा/ एक दिन/ स्त्री को/
खेल खेल में भागती हुई/ भाषा में समा गयी/
छिपकर बैठ गयी/ उस दिन/ तानाशाहों को/ नींद नहीं आई रात भर/
उस दिन/ खेल न सके कविगण/ अग्निपिण्ड के मानिंद तपते शब्दों से/
भाषा चुप रही सारी रात/ रुद्रवीणा पर/ कोई प्रचंड राग बजता रहा।"

कात्यायनी स्त्री जीवन के सभी स्तरों को सूक्ष्म दृष्टि से देख-परखकर उन्हें सूक्ष्म-गहन अभिव्यक्ति देने में सिद्धहस्त हैं। उनकी स्त्री जीवन पर लिखी सभी कविताएं अद्‌भुत हैं। छोटी-सी कविता में पूरा स्त्री-जीवन दर्शन भर देने की कला उन्हें आती है। जैसे-

देह नहीं होती है
एक दिन स्त्री
और
उलट-पुलट जाती है
सारी दुनिया
अचानक।"

जब स्त्री देह नहीं होती वह सचेतन मनोमस्तिष्क होती है तब क्रांतिकारी परिवर्तन घटित होता है। सचेत स्त्री बोलना, विरोध करना जानती है इसलिए वह परंपरागत दीन-हीन जीवन से मुक्ति पा जाती है। कात्यायनी की कविता पर टिप्पणी करते हुए सुरेश सलिल लिखते हैं- "कात्यायनी की कविता में जीवन की गति हासिल करने की आकांक्षा है। यह गति ही कात्यायनी के काव्य-स्वर को अलग किस्म का और विशिष्ट बनाती है। मौजूदा सदी की हिंदी

कविता में जो नारी-स्वर समय-समय पर आरोह की ओर बढ़ते लक्ष्य से प्रयुक्त हुए और जिन्होंने आधुनिक कविता के इतिहास में महिला कवियों का अध्याय जोड़ा, कात्यायनी के रचना-जगत के योजन- सूत्र अगर उनके बीच ढूंढने की कोशिश की जाए, तो किसी सीमा तक उनके यहां सुभद्राकुमारी चौहान की परंपरा का विस्तार देखा जा सकता है। जो बलिदानी भावना, औदात्य, जीवन के विभिन्न रूपों और पक्षों के प्रति ममत्वपूर्ण आत्मीयता सुभद्रा जी की कविता में मूल्य बनकर अवतरित हुई थी, किंचित् भिन्न परिप्रेक्ष्य में, उसके साथ कात्यायनी की कविता के सूत्र जुड़ते देखे जा सकते हैं।" कात्यायनी आदर्शवाद के दिखावे से बचती हैं। उन्होंने स्वतंत्र भारतीय समाज का यथार्थ देखा है। स्त्रियों को स्वतंत्रता मिलकर भी नहीं मिली। वे आज भी दायित्वों, परंपराओं के निर्वाह के नाम पर अपनी व्यक्तिगत जिंदगी को दूसरे, तीसरे या उससे भी नीचे के दर्जे पर रख पाती हैं। कात्यायनी स्त्रियों की पीड़ा को जीवंत करते हुए अपनी कविता 'सात भाइयों के बीच चंपा' में लिखती हैं-

"ओखल में धान के साथ/कूट दी गई
भूसी के साथ कूड़े पर/फेंक दी गई
वहां अमरबेल बनकर उगी।
झरबेरी के सात कंटीले झाड़ों के बीच
चंपा अमरबेल बन सयानी हुई।"

स्त्रियों की पीड़ा सहने की सामर्थ्य और जिजीविषा उन्हें अमरबेल बनाती है। कात्यायनी स्त्रियों की मन:स्थिति से भली-भांति परिचित हैं। वे जानती हैं कि स्वयं स्त्री होने के नाते स्त्रियों के अंदर एक चिंगारी होती है जिसे थोड़ी-सी हवा की आवश्यकता है। साहस, प्रोत्साहन और आत्मसम्मान को जगाने के लिए एक तेज हवा का झोंका मिले तो वह चिंगारी भड़ककर जल उठेगी और परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए दीपक बनेगी और दावानल भी। स्त्री शक्तिपुंज है, जब तक वह निर्णय नहीं लेगी तब तक उसे दीन-हीन, अबला जो चाहे समझा जाए लेकिन चेतना का एक झोंका उसकी सुप्त-शक्ति और आत्मसम्मान को जगा देगा। तब वह 'दाहक जीवन-दाह' से स्वयं को मुक्त कर लेगी-

"स्त्री पीछे मुड़ती है
प्रचंड वेग के साथ।
अपने हाथों आग लगा देती है,
राख कर देती है
वह सब कुछ
जिसे
लोग कहा करते हैं
भरा-पूरा जीवन।"

कात्यायनी में अनुभूति का स्तर गहरा है और वे पूरी ईमानदारी से उसे अभिव्यक्त करती हैं। मानवीय जीवन-मूल्यों से ओत-प्रोत रचनाकार ही करुणा, दया, परदुख कातरता, सहानुभूति, प्रेम से भरपूर रचनात्मकता का परिचय देता है क्योंकि यह उसके अपने जीवन-मूल्य होते हैं। दिविक रमेश 'कविता के बीच से' पुस्तक में लिखते हैं- "व्यक्ति अगर अनुभूति के प्रति ईमानदार है, तो वर्गों में उसकी संवेदनात्मक अनुभूति सदैव दलित एवं

दलित वर्ग की ओर ही होगी। यह मानवीय पक्ष है, जिसकी अवहेलना जान-बूझकर ही की जा सकती है, अनुभूति के धरातल पर नहीं। यही कारण है कि प्रेम और सौंदर्य की अभिव्यक्ति में भी (यदि अनुभूति के स्तर पर ईमानदार हैं तो) इसी मानवीयता का अहसास बराबर बना रहता है, जिसे गहराई और उदारता से समझने की जरूरत है।" कात्यायनी का स्त्री-विमर्श स्पष्ट, ईमानदार और मानवीयता के धरातल पर है। वे पुरुषों की मानसिकता को भी उजागर करती हैं जो स्त्री को पाप का मूल मानते हैं। 'प्रार्थना' कविता में एक पुरुष की प्रार्थना का चित्रण है-

"प्रभु,
मेरी आत्मा प्रायश्चित करने के लिए
तड़प रही है,
मुझे पाप करने के लिए
एक औरत दो।"

पुरुष की दृष्टि में स्त्री सदैव हीन, जाहिल, गंवार है और वह कभी तरक्की नहीं कर सकती-

"यह औरत तो बस भात रांध सकती है
और बच्चे जन सकती है
इसे भला कैसे मुक्त किया जा सकता है?"

पुरुष भूल जाता है कि मुक्ति किसी को कोई दे नहीं सकता जब तक कि लेने वाला दृढ़-प्रतिज्ञ न हो। स्त्री दृढ़-प्रतिज्ञ हो जाए तो वह स्वयं मुक्ति प्राप्त कर लेती है। वह सोचती है, रचती है और परिवर्तित कर लेती है अपने संसार को स्वयं ही। 'इस पौरुषपूर्ण समय में' कविता में कात्यायनी लिखती हैं-

"संकल्प चाहिए
अद्भुत-अंतहीन
इस सांद्र, क्रूरता भरे अंधेरे में
जीना ही क्या कम है
एक स्त्री के लिए
जो वह/रचने लगी/कविता।"

कविता रचने का अर्थ है कि अभिव्यक्त करने के लिए जो निर्भीकता, साहस और चिंतन करने की आवश्यकता है वह उस स्त्री के भीतर उत्पन्न हो गई है। बिना सोचे कुछ नहीं रचा जा सकता। इसलिए जीवन रचने वाली जननी सोचती है-

"जीवन का केंद्रबिंदु क्या है। सोचती है-
जीवन का सौंदर्य क्या है। सोचती है-
वह कौन-सी चीज है
जिसके बिना सब कुछ अधूरा है
प्यार भी, सौंदर्य भी, मातृत्व भी...
सोचती है वह.../ और पूछती है चीख-चीख कर/
प्रतिध्वनि गूंजती है/ घाटियों में/ मैदानों में

पहाड़ों से/ समुद्र की ऊंची लहरों से टकराकर
आजादी! आजादी!! आजादी!!!"

कात्यायनी की कविता में स्त्रियां पीड़ित भी हैं, जागरूक भी हैं। वे अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए अपने सुखी घर-बार को आग लगाना जानती हैं। वे आत्मनिर्भर होने के लिए बेचैन हैं। स्त्री-विमर्श के सभी तत्व इन कविताओं में उपस्थित हैं। कात्यायनी स्त्री की पीड़ा को स्वर देती हैं और उसे पीड़ा से मुक्त होने का मार्ग दिखाते हुए 'आजादी' के खुले आसमान में उड़ने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। शिक्षित, विकसित शहरी समाज एक भ्रम में जीता है कि स्वतंत्र भारतीय समाज लगभग हर वर्ग को सुख-समृद्धि और आत्मसम्मान से जीने का अवसर दे रहा है। कात्यायनी की कविताओं में स्त्री की दशा का यथार्थ चित्रण यह भ्रम तोड़ता है तथा इस वर्ग के प्रति नए सिरे से चिंतन करने के लिए प्रेरित करता है। यही कविता और रचनाकार का उद्देश्य है कि कथ्य समाज को छू ले और लक्ष्य को प्राप्त कर ले।

14.3 कात्यायनी की कविता में स्त्री-पीड़ा के बिंब

कात्यायनी की कविताएं स्त्री-विमर्श की कविताएं हैं। इन कविताओं में स्त्री-पीड़ा के बिंब भरे पड़े हैं। कुछ कविताएं आरंभ से अंत तक स्त्री-पीड़ा का दस्तावेज हैं जिनमें से कुछ पंक्तियां चुनना कठिन है। 'सपने में तैरते हुए', 'शहर को चुनौती', 'सात भाइयों के बीच चंपा', 'त्रियाचरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्', रात के संतरी की कविता', 'हॉकी खेलती लड़कियां', 'मां के लिए एक कविता' आदि में भिन्न-भिन्न रूपों में पीड़ित स्त्री का मर्मस्पर्शी चित्रण है। सुरेश सलिल कात्यायनी की रचनात्मकता के संबंध में लिखते हैं- "47 के बाद के 'आजादी' के छद्म को उसके सबसे क्रूर और नंगे रूप में उन्होंने देखा है और भोगा है। इसीलिए उनके रचनागत अनुभव और निष्कर्ष रोमानी किस्म के आदर्शवाद के मकड़जाल में उलझने से बच जाते हैं। इसीलिए उनकी कविता में सत्तावन की पुरानी तलवार की चमक नहीं, लोक कथाओं के बीच से उठकर आयी सात भाइयों की बहन चंपा के जीवन की विडंबनाओं और उद्दाम जिजीविषा के स्वर सुनाई देते हैं।" स्त्री जीवन की विडंबना को कात्यायनी ने इस कविता में मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। सामान्यत: सात भाइयों के बीच एक बहन हो तो उसे सबकी लाडली और राजकुमारी-सा जीवन मिलना चाहिए, जैसा कि सात बहनों के बीच एक भाई को मिलता है। लेकिन ऐसा नहीं होता। वह बाप की छाती पर सांप-सी लोटती है। उसे बार-बार खत्म करने के प्रयास होते हैं किंतु स्त्री की जिजीविषा उसे जीवित रखती है-

"सात भाइयों के बीच सयानी चंपा
एक दिन घर की छत से/ लटकती पायी गयी/
तालाब में जलकुंभी के जालों के बीच। दबा दी गयी/
वहां एक नीलकमल उग आया/
जलकुंभी के जालों से ऊपर उठकर।
चंपा फिर घर आ गयी/ देवता पर चढ़ायी गयी।"

पुरुष स्त्री की जिजीविषा एवं उसके आत्मविश्वास को देखकर घबरा जाता है, क्षुब्ध होता है। इक्कीसवीं सदी में स्त्री शिक्षा को बल मिला है। शिक्षा ने उसके आत्मविश्वास को आधार प्रदान किया है। वह व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामाजिक जीवन तक अपने लिए सम्मानजनक स्थान चाहती है। वह अपने अस्तित्व की पहचान बनाने के लिए संघर्ष कर रही है। उसे स्वतंत्रता चाहिए, उसकी अपनी सत्ता हो इस बात के लिए वह आत्मनिर्भर हो रही है। आत्मनिर्भरता ही उसे स्वायत्तता प्रदान करेगी, उसके अस्तित्व को नई पहचान देगी। इस संघर्ष में उसे दो मोर्चे संभालने पड़ते हैं घर का और बाहर का। किसी भी मोर्चे पर चूक होने से उसका संतुलन बिगड़ जाएगा, वह जानती है। बाहर के संघर्ष का मोर्चा संभालने में चूक हुई तो उसके व्यक्तिगत संघर्ष पर पानी फिर जाएगा और घर का मोर्चा संभालने में चूक हुई तो परिवार उसका जीना हराम कर देगा। 'हॉकी खेलती लड़कियां' में कात्यायनी की सधी हुई लेखनी ने इस तथ्य को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है कि शाम होते ही लड़कियों का समय पर घर लौटना कितना आवश्यक है और देरी के क्या परिणाम हो सकते हैं-

"एक भीषण जंग से निपटने की / तैयारी करती लड़कियां / लौटेंगी घर।
अगर ऐसा न हो तो / समय रुक जाएगा / इंद्र-मरुत-वरुण सब कुपित हो जाएंगे
वज्रपात हो जाएगा, चक्रवात आ जाएगा / घर पर बैठे देखने आए वर-पक्ष के लोग/
पैर पटकते चले जाएंगे / बाबूजी घुस आएंगे गरजते हुए मैदान में।
भाई दौड़ता हुआ आएगा और झोंटा पकड़कर / घसीट ले जाएगा।
अम्मा कोसेंगी-किस घड़ी में पैदा किया था / ऐसी कुलच्छनी बेटी।
बाबूजी चीखेंगे - सब तुम्हारा बिगाड़ा हुआ है।"

कात्यायनी स्त्रियों की पीड़ा को कदम-कदम पर घटते-बढ़ते, भोगते देखती हैं। घर पर एक स्त्री की चूक समस्त स्त्रियों के लिए कहर बन जाती है। वे आपस में सहानुभूति रखते हुए भी पुरुषों से एक-दूसरे की रक्षा नहीं कर पातीं। लेकिन यह तभी तक हो पाता है जब तक स्त्रियां अपने आत्मबल से शोषण और अन्याय का विरोध करने के लिए खड़ी न हो जाएं, वे अपने अधिकारों को जानने न लगें। वे जब सचेत होकर जानने लगती हैं और पुरुषों से 'ना' कहना सीख जाती हैं तो पुरुषों के लिए 'खतरा' बन जाती हैं। ईश्वर ने उसे जो देह और दायित्व देकर इस धरती पर भेजा, स्त्री उसे जानती है, लेकिन यह भी जानती है- मनुष्य की देह पराधीन हो सकती है आत्मा नहीं। 'अपराजिता' कविता में कात्यायनी लिखती हैं-

"हां / उन्होंने यही / सिर्फ यही दिया हमें।
अपनी वहशी वासनाओं की तृप्ति के लिए / दिया एक बिस्तर जीवन घिसने
के लिए, राख होते रहने के लिए / चौका-बर्तन करने के लिए बस एक घर/
समय-समय पर / नुमाइश के लिए गहने पहनाए / और हमारी आत्मा को
पराजित करने के लिए / लाद दिया उस पर तमाम अपवित्र इच्छाओं और /
दुष्कर्मों का भार / पर नहीं कर सके पराजित वे / हमारी अजेय आत्मा को।"

कात्यायनी सही अर्थों में प्रतिबद्ध कवयित्री हैं। स्त्री जीवन को निकट से देखकर उन्होंने जो मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया है, वह उनके काव्य में दृष्टिगोचर होता है। लालित्य और औदात्य, पीड़ा के गहन स्वर और यथार्थ का अनावृत्त रूप काव्य की प्रासंगिकता को बढ़ाता है। कात्यायनी की कविताओं में एक आदिम लगाव है। वे वास्तविकताओं से साक्षात्कार

कराती हैं। भरे-पूरे परिवार में रहकर भी स्त्री अकेलेपन की पीड़ा भोगती है। यह अकेलापन उसे पीड़ा में और सुख में दोनों ही स्थितियों में भोगना पड़ता है। कात्यायनी इन कविताओं के माध्यम से नैतिक मूल्यों की खोज करती हैं। वे स्त्री के लिए जीवन में और प्रकृति में मुक्ति खोजने का प्रयत्न करती हैं। इस संघर्ष को आशा और निराशा के रंगों से रंगा पाती हैं। मुक्ति और बंधन के संघर्ष में फंसी स्त्री की पीड़ा अंततः सर्वस्व खोकर विकास ही पाती है। कात्यायनी लिखती हैं-

"जो औरत थी / बस, उसने एक ही मासूम-सा सवाल किया था।
एक दिन अचानक कि / औरत क्या एक घर के बिना भी हो सकती है।
या फिर क्या कोई और भी चौहद्दी हो सकती है।
सुखपूर्वक रहने-खाने-जीने के लिए / घर के अलावा।
जिसमें रहते हुए औरत औरत बनी रहे और / घर घर भी बना रहे।
यानी वह ना हो घर का हिस्सा / बल्कि उसकी एक बाशिंदा हो?
बस इतनी-सी बात हुई थी कि / उसका पासपोर्ट जब्त कर लिया गया।
और दुनिया के हर घर की / नागरिकता के लिए उसे अयोग्य घोषित कर दिया गया।" (औरत और घर)

कात्यायनी की रचना में अंतर्बाह्य का सामंजस्य तो है ही, वे परकाया प्रवेश का कौशल भी जानती हैं। इसीलिए स्त्री की काया में प्रवेश कर उसके अंतर्जगत को परत-दर-परत खोलकर प्रस्तुत कर देती हैं। जीवन की सुगबुगाहट के साथ घरों में स्त्री और पुरुषों की भूमिका को अभिव्यक्त करते हुए वे जीवन के मर्म को तलाशना चाहती हैं। 'मां के लिए कविता में' दिन भर काम करके लौटती स्त्री और पुरुष के चित्रण उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त हैं। स्त्री, जो मां है के लिए उपस्थित बिंब पर दृष्टि डालें-

"पीली धूप में / पत्ते झड़ते रहते हैं / जूठे बरतन इंतजार करते रहते हैं।
नल के नीचे / शाम होने का / एक जोड़ी घिसी हुई चप्पलें।
थकी हारी दाखिल होती हैं घर में दिन भर की पूरी थकान।
शरीर से उतरकर पसर जाती है घर-आंगन में।"

पुरुष के लौटने का चित्रण कुछ इस तरह किया गया है-

"आतंक घर में दाखिल होता है / शाम के अंधेरे के साथ।
बल्ब की बीमार रोशनी में / दफ्तर के कागजात खोलकर बैठ जाता है।"

कात्यायनी की कविताओं में उनकी जीवन के प्रति घनिष्ठता के दर्शन होते हैं। उन्होंने अपनी धारदार संवेदनाओं से जीवन के सूक्ष्मतम स्तरों तक पैठ बना ली है। अपने समकालीन रचनाकारों में निश्चय ही उनकी प्रतिष्ठा का स्तर उच्च एवं महत्वपूर्ण है। वे 'स्त्री-विमर्श' के मुद्दे को लक्ष्य तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उनकी स्त्रियां पीड़ित, शोषित हैं एवं जागरूक, सचेत भी हैं जो स्वतंत्रता की आकांक्षी ही नहीं बल्कि स्वतंत्र होने के लिए संघर्षरत हैं। वे पुरुषों के लिए चुनौती हैं। 'शहर को चुनौती' कविता का यथार्थ झकझोरता है। स्त्री को खिलौना समझकर खेलने वाला पुरुष समाज स्त्री को दलदल में गिराकर उसके

अस्तित्व को रौंदकर समाप्त कर देना चाहता है किंतु फिर भी यदि वह स्त्री उठकर खड़ी हो जाए तो उसके लिए यह चुनौती सबसे बड़ी और भयावह चुनौती होती है-

"मंत्री जी ऐन जिस / सड़क से गुजरने वाले हैं / उसी के मुख्य चौराहे पर
खड़ी है / वह औरत चुनौती की तरह / दर्द की अनगिनत लकीरों ने /
धारीदार चादर-सा / ढंक रखा है उसके शरीर को / रक्त की बहती धार से
वहां / बागपत से लेकर पड़रिया तक की / दास्तान लिखी है।
अरे, कोई रोको उसे, दौड़ो, भागो, कुछ तो करो, नहीं तो क्या होगा।
तबाह हो जाएगा यह समाज / भद्रता का कोई नामलेवा / नहीं रह जाएगा।
पकड़ो उसे, मिटा डालो / कुचल दो, नेस्तनाबूद कर दो।
नहीं तो पूरे समाज पर / बहुत बड़ा खतरा आ जाएगा।"

स्त्री जीवन की विडंबना है कि जिस पुरुष को धुरी मानकर वह अपनी सर्वस्व कामनाएं, इच्छाएं, सेवा, निष्ठा, समर्पित कर देती है, वह स्त्री पुरुष के लिए पाप करने का साधन, नर्क का मार्ग, खतरा, चुनौती और पतन का कारण मानी जाती है। वह स्त्री के दान को, उससे प्राप्त समस्त सुख-सुविधाओं, खुशियों को विस्मृत कर देता है। स्त्री पुरुष के लिए एक कमजोर पक्ष रही है, जिस पर वह आसानी से अधिकार जमाना, आरोप मढ़ना, अत्याचार करना जानता और करता है। अब भी जबकि स्थितियां परिवर्तित हो गई हैं, एक बड़ा अनुपात है ऐसी स्त्रियों का जो स्वयं वस्तु बन गई हैं या बना दी गई हैं। महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए पुरुष स्त्री को अब सीढ़ी की तरह भी प्रयोग कर रहा है और उस पर दुर्भाग्य पूर्ण तथ्य यह कि स्त्रियां स्वयं को सीढ़ी बनने दे रही हैं। कभी विवशता ने स्त्री को वस्तु बनाया और कभी अल्प समय में अपनी अति-महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए स्त्री स्वयं वस्तु बन गई। अब वह अपनी आजादी के नाम पर भी वस्तु में तब्दील होने को आमादा है। 'सपने में तैरते हुए' कविता में कात्यायनी वर्तमान यथार्थ पर प्रकाश डालती हैं-

"नोंचकर कपड़ों को चस्पा कर दी गयी है / चौराहे के पोस्टर पर।
नग्न / पैसे की ओर / घायल घिसटती है हाथ फैलाए हुए।
खट-खट खटकती है टाइपराइटर पर चढ़ी हुई।
सुलगती है सिगरेट बन उंगलियों में / रोगी की तीमारदारी बन मुस्कुराती है।
तपती है कोयला बन अंगीठी में / राख होती रहती है।
सिल पर मसाला बन पिसती है / सिंकती है मद्धम आंच पर।
रोटियां बन कर पड़ी है वह सामने / तोड़ी जाएगी।
निवाला बनकर पच जाएगी / फिर से उसी लाक्षागृह में जनम लेगी जलने के लिए।"

स्त्री-विमर्श पर प्रखर टिप्पणी जो वर्तमान भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा को रेखांकित करती है, तसलीमा नसरीन ने की है। सितंबर, 2012 में की गई उनकी यह टिप्पणी कात्यायनी की उपरोक्त कविता को आधार प्रदान करती है। वे लिखती हैं- "पुरुष तंत्र में पुरुषों की भूमिका है- प्रभु, कर्ता, निर्णय लेने वाले और भोग करने वाले मालिक की; और औरतों की पुरुषों की दासी, यौनवस्तु व उनके बच्चे उत्पादित करने वाले यंत्र की। यही उसकी मूल भूमिका है। तरह-तरह के कायदे-कानून बनाकर, रंग-ढंग लगाकर इसको अलग

दिखाने की कोशिश की जाती है, पर जो जानते हैं वे जानते हैं कि सारा ढांचा ही विषमता की बुनियाद पर खड़ा है। आज भी नारी के विरुद्ध एक भी विषमता समाप्त नहीं हुई है। नारी विरोधी किसी भी नृशंसता का खात्मा नहीं हुआ है समाज में।" कात्यायनी के सुर से मिलता हुआ सुर है तसलीमा नसरीन का, किंतु कात्यायनी आशावादी हैं। उनकी स्त्रियां एक बेहतर दुनिया हेतु संवेदनाओं और सुख-समृद्धि से भरपूर जीवन से परिचित हैं। उसे पाने के लिए संघर्ष कर रही हैं। आजादी और मुक्ति के लिए आवाज उठा रही हैं। यह प्रयत्न महत्वपूर्ण हैं क्योंकि आजादी मिलती नहीं, उसे लेना पड़ता है। मानवोचित, स्त्रियोचित गरिमा के साथ स्त्री अपनी शक्ति और आत्मविश्वास के बल पर, प्राप्त सुविधाओं और साधनों का लाभ उठाते हुए स्वतंत्रता प्राप्त करे यही कात्यायनी का कथ्य है।

14.4 समसामयिक जीवन-बोध और कात्यायनी का काव्य

कात्यायनी की कविता समसामयिकता के बीच से छोटे से यथार्थ के माध्यम से बड़े जीवन मूल्यों को पहचानने का प्रयत्न करती है। उनका यह प्रयत्न, मूल्यों की चिंता और चिंतन परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों का अंग बनकर उनके काव्य को महत्वपूर्ण बनाता है। कात्यायनी की दृष्टि का विस्तार चौतरफा है अत: जीवन बोध गहन है। वे एक ही साथ अतीत, वर्तमान और भविष्य पर दृष्टि रखते हुए हर वर्ग, जाति, धर्म के मनुष्यों, (स्त्रियों पर विशेष दृष्टि) पर और प्रकृति के उपादानों पर भी चिंतन परक दृष्टि डालकर उसे काव्य में समेटने का प्रयत्न करती हैं। भारत की कानून व्यवस्था, सत्ता और संविधान पर उनकी टिप्पणी उनकी निर्भयता, स्पष्टवादिता एवं गहन चिंतन को दर्शाती है। दृष्टव्य है-

"कानून / साफ गले से बोलता है,
संविधान / एक दार्शनिक चुप्पी में डूबा रहता है
और सत्ता / भाषा की शुद्धता का आग्रह करती है
जब लोग / मुंह खोलते हैं / तो गले से खून के थक्के
बाहर आते हैं। धीरे-धीरे वे पिघलते हैं।
अनगढ़ से शब्दों में ढलते हुए / अर्थ / हृदय तक प्रवाहित होते हैं।
यूं एक सदी ढलती है।" - (एक ढलती सदी का सच)

कात्यायनी की यह कविता विशिष्ट चुभन का अनुभव लिए हुए है जो भीतर कहीं बेचैन करती है। ऊपर से शांत लगने वाली यह कथ्यपरक चोट भीतर टीस भर देती है। इसकी ध्वनि-वैशिष्ट्य का प्रभाव दूरगामी एवं मारक है। कात्यायनी पर विष्णु खरे लिखते हैं- "यह एक विचित्र चुनौती भरा तथ्य है कि जहां 1965-1975 के केंद्रीय क्रांतिवादी दौर के अधिकांश कवि अपनी पुरानी जुझारू रचनाओं से बहुत दूर हो चुके हैं वहां कात्यायनी शायद ऐसी अकेली रचनाकार हैं जो बदलाव के कई मोर्चों पर सक्रिय हैं और चूंकि उन्होंने इस समय और समाज का भयावह, निर्मम, दावेदार यथार्थ देखा है इसीलिए उनमें अपनी कविता और कविता मात्र के औचित्य, प्रासंगिकता और कारीगरी को लेकर एक ऐसा आत्मसंघर्ष है जो शायद मुक्तिबोध और धूमिल के बाद उन्हीं में दिखाई देता है। समाज उनके सामने ईमान है और कविता कुफ्र, लेकिन दोनों से कोई निजात नहीं है। बल्कि हिंदी कविता के

'ऐआलपोलिटीक' से वे एक लगातार बहस चलाए रहती हैं।" यह टिप्पणी सटीक है। कात्यायनी की कविताओं में बदलाव के लिए बेचैनी और संघर्ष दिखाई देता है। उनके गंभीर आक्रोश की उपस्थिति 'आस्था का प्रश्न' जैसी कविताओं में अनुभव होती है। वे लिखती हैं–

"आस्था का न्याय से कोई संबंध नहीं होता / तर्क को सैकड़ों फुट नीचे।
दफन कर सकती है आस्था / इतिहास की कपाल-क्रिया कर।
अपने तथ्य खुद गढ़ सकती है / आस्था केवल बहुमत का।
अधिकार होती है। आस्था उन्माद की अम्मा होती है।"

कात्यायनी का अनुभव उनके काव्य को व्यापक फलक प्रदान करता है। अनुभव से प्राप्त यथार्थ के चित्र को वे तत्कालीन परिदृश्य के अनुरूप ही प्रस्तुत करती हैं। जीवन और जगत की संवेदनाओं का मिला-जुला चित्र उनकी वृहत्तर संवेदनशीलता का परिचय देता है। पर्यावरण, गरीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, झूठ और अन्याय से त्रस्त मानवता के अनेक चित्र उनकी रचनाओं में दिखाई देते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक युग ने विकास के नाम पर प्रकृति का असीम दोहन किया। मनुष्य को यंत्र बनाने का प्रयत्न जारी है तथा संवेदनाएं भोथरी हो गई हैं। प्रकृति से मनुष्य के कोमल-गहरे रिश्तों पर आघात लगा है। वे लिखती हैं–

"रेत पर / मौत के पांवों के निशान थे।
वृक्ष काटे जा चुके थे / जिनकी छांव में।
सुस्ताते थे / सड़क बनाने वाले मजदूर।" (फैसला)

यह कविता त्रास झेलती जिंदगी और उसके त्रास के कारणों का खुला बयान है। कात्यायनी की पीड़ा में समाज और प्रकृति की चिंता है। एक संकेत भी है कि इस तरह की पीड़ा से कैसे बचा जा सकता है। संतोष कुमार तिवारी 'नये कवि: एक अध्ययन' में लिखते हैं- "समकालीन कविता में अनुभव जन्य यथार्थ के परिदृश्य अपने समय का ठीक लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं और समसामयिकता का भली-भांति निर्वहन भी। समकालीन कविता वर्ग-चरित्र तक अपने को सीमित नहीं रखती अपितु समग्र जीवन का और मानव समुदाय का ऐसा विस्तारीकरण करती है कि विश्वचेतना का सहज निर्वाह स्पष्टत: परिलक्षित होने लगता है।" कात्यायनी सीधी सपाट भाषा में विश्वव्यापी समस्याओं पर चिंतन प्रकट करती हैं–

"जी चाहता है । कवियों की बिरादरी से / बहिष्कृत हो जाएं...।
आज जी चाहता है बेहद / कि सोमालिया और सरगुजा में।
भूखे मरते बच्चों के बारे में / सीधे-सीधे कुछ कहें ।
चर्चा करें इराक में अमेरिकी बमबारी की।
और लॉस-ऐंजिल्स के दंगों की / आज जी चाहता है।
हंसने को ठठाकर पर्यावरण-सम्मेलन पर।"

साहित्य में रचनाकार का व्यक्तित्व साफ झलकता है। साहित्य में वर्णित कथ्य, चित्र एवं बिंबों के माध्यम से पता चलता है कि रचनाकार के सामाजिक सरोकारों की सीमा क्या है। वह समसामयिक जीवन के कितने निकट है, और उसे परिस्थितियों के कैसे रूप प्रभावित करते हैं। समय बदलता है तो मनुष्य और उसके विचारों में भी परिवर्तन आता है। रचनाकार

इन परिवर्तनों को अपने काव्य में, साहित्य में अपने दृष्टिकोण के अनुरूप अभिव्यक्ति देता है। इस अभिव्यक्ति द्वारा रचनाकार की संवेदनाओं और बौद्धिक क्षमताओं का पता चलता है। कात्यायनी इस कसौटी पर खरी उतरती हैं। वे एक ऐसी संवेदनशील कवयित्री है, जो दलित और शोषित के प्रति अपार करूणा और पीड़ा का भाव रखती हैं। सदियों से पीड़ित स्त्री की पीड़ा के साथ वे सोमालिया के भूखे नंगों पर भी चिंता व्यक्त करती हैं। यह रचनाकार का नैतिक दायित्व है कि समसामयिक यथार्थ की जीवंत प्रस्तुति कर पाठकों को झकझोर दे ताकि वे पीड़ित पक्ष की पीड़ा दूर करने के लिए उठ खड़े हों। यह एक रचनाकार की सफलता का मानक भी है। दिविक रमेश की टिप्पणी महत्वपूर्ण है- "साहित्य की नैतिकता", 'आदमी की नैतिकता' से तो भिन्न नहीं होती, बल्कि समाज में आदर्श स्थिति पर होने की वजह से नैतिक सिद्धांतों को अपनाने के लिए वह (साहित्य) अधिक बाध्य और उत्तरदायी होता है। शायद कोई न भी माने लेकिन साहित्यकार होता आदमी ही है।" साहित्यकार मनुष्य तो है लेकिन वह आम मनुष्यों से विशिष्ट है क्योंकि वह स्वयं की ही नहीं दूसरों की पीड़ा को भी उसी शिद्दत से अनुभव करके अभिव्यक्त करता है। वह समाज में परिवर्तन की सामर्थ्य रखता है। ऐसी स्थिति में उसकी नैतिकता पर सभी की दृष्टि होती है और वह कटघरे में खड़ा होता है।

"साहित्यकार को बहुत कुछ चाहिए होता है।
और सिर्फ पत्नी से ही नहीं पा सकता वह सब कुछ।
उसे चाहिए कई धरातलों पर।
भावनात्मक जुड़ाव और कम से कम
एक या अलग-अलग अभिरुचियों वाली।
कई एक प्रेमिकाएं भी।" (एक दिन शेष जी के घर)

साहित्यकारों की नैतिकता एवं उनके आचरण पर अक्सर सवाल उठते हैं। कात्यायनी जी ने इस कविता में उनकी रचनात्मकता को विस्तार देने वाली आवश्यकताओं पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी की है। मनुष्य का चरित्र रहस्यमय होता है। उसकी पूरी-पूरी थाह पाना मुश्किल है। वर्तमान समय में आधुनिकता के नाम पर बहुरूपियापन बढ़ गया है। अपने स्वार्थ के अनुरूप चरित्र परिवर्तन आम बात हो गई है। पुरस्कारों और सम्मान समारोहों को लाभ और 'जुगाड़' से जोड़कर मजाक बना दिया गया है। पहले शिक्षा, चिकित्सा सेवा कार्य से जोड़े जाते थे अब व्यवसाय बन गए हैं। बड़े-बड़े घोटालों ने, भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी के कारनामों ने उजागर होकर हर क्षेत्र की कलई खोल दी है। श्रद्धा, आस्था, नैतिकता, सत्य, विश्वास, निष्ठा जैसे शब्द बेमानी और मूल्यहीन हो गए हैं। यह समय मनुष्य और साहित्य दोनों के लिए कठिन समय है। तलवार की धार पर चलने जैसा। अपने कर्तव्यों से विमुख मनुष्य संवेदनाओं का प्रतीक हो गया है। कात्यायनी की यह कविता देखिए-

"आज भी / लोहे के ही बनते हैं / लौह पुरुष / जंगरोधी इस्पात के।
आविष्कार के बावजूद / बदलते नहीं हैं लौह पुरुष।
अड़ जाते हैं / खड़े-खड़े / जंग खाकर / झड़ जाते हैं।"

'लौह पुरुष' जो दृढ़ निश्चय और आत्मदृढ़ता से लिए जाने वाले निर्णयों के लिए प्रसिद्ध हुआ करते थे। वे अपने उन विशिष्ट कार्यों के लिए जाने जाते थे कि उनका निर्णय

मनुष्यता की रक्षा के लिए और देशहित के लिए था। अब ऐसा नहीं है। अब लोहे की बनी मूर्तियों जैसे लौह पुरुष केवल नाम के लिए होते हैं जो अड़े रहते हैं और खड़े-खड़े जंग खाकर झड़ जाते हैं। देश में व्याप्त विसंगतियों एवं विडंबनाओं पर कात्यायनी की दृष्टि है और वे अपने काव्य में इस बेचैनी को दर्शाती हैं तथा बदलाव की कामना करती हैं। कात्यायनी को कविता की शक्ति पर विश्वास है। वे अनुभव करती हैं कि अपनी अंतरात्मा के सारे सुख-दुख, इच्छा, तर्क, संदेह, सपनों को अभिव्यक्त करने के लिए, बांटने के लिए कविता एक विश्वसनीय साथी है। उनकी अनेक कविताएं 'कविता' की महत्ता एवं शक्ति को दर्शाती हैं। कात्यायनी भाषा की अलंकृति पर नहीं, कथ्य और भाव पर ध्यान केंद्रित करती हैं। उनकी भविष्य के लिए कल्पना वर्तमान समय में दिखाई देती है-

"संदेह करने वाले को उम्रकैद / तर्क करने वाले को फांसी।
अल्पमत पर बहुमत का धर्मराज्य / नास्तिकों को सूली।
इन सबको / दैहिक-दैविक-भौतिक ताप से / पूर्ण मुक्ति।"

'नये रामराज्य का फरमान' नामक उपरोक्त कविता में सूक्ष्म व्यंग्य है। यह वर्तमान की अराजक स्थिति को देखकर भविष्य में होने वाले 'रामराज्य के नए स्वरूप' की कल्पना है। कात्यायनी की कविता में समसामयिक जीवन-बोध गहरा एवं व्यापक है। कविताओं में वैविध्य एवं सरसता है। वे सादगी से अपने कथ्य को लक्ष्य तक ले जाती हैं। अत्यंत विनम्रता से यथार्थ को स्वीकार करते हुए वे कहती हैं-

"सभी प्रेम अविश्वसनीय नहीं होते / सभी विश्वास अटूट नहीं होते।
सभी क्रियाएं सकर्मक नहीं होतीं / सभी बहसें सार्थक नहीं होती।
फिर भी ये होती हैं / क्योंकि इन्हें भी तो होना है।
इसी सृष्टि में / कहीं-न-कहीं।"

कात्यायनी का काव्य आस्था के टूटते किनारों को आधार प्रदान करता है। वे सकारात्मक दृष्टिकोण और आशावादी होने के लिए प्रेरित करती हैं। समस्त दुखों और अन्यायों के बीच सच्चाई के साथ निष्ठावान और आस्थावान होने के लिए प्रेरित करती हैं।

14.5 पाठांश

हॉकी खेलती लड़कियां

आज शुक्रवार का दिन है और इस छोटे से शहर की ये लड़कियां
खेल रही हैं हॉकी। खुश हैं लड़कियां
फिलहाल खेल रही हैं हॉकी
कोई डर नहीं। बॉल के साथ दौड़ती हुई
हाथों में साधे स्टिक वे हरी घास पर तैरती हैं
चूल्हें की आंच से मूसल की धमक से
दौड़ती हुई बहुत दूर आ जाती हैं।

वहां इंतजार कर रहे हैं उन्हें देखने आए हुए वर पक्ष के लोग
वहां अम्मा बैठी राह ताकती है कि बेटियां आएं तो
संतोषी माता की कथा सुनाएं और वे अपना व्रत तोड़ें।

वहां बाबूजी प्रतीक्षा कर रहे हैं दफ्तर से लौटकर
पकौड़ी और चाय की वहां भाई घूम-घूम कर लौट आ रहा है।
चौराहे से जहां खड़े हैं मुहल्ले के शोहदे
रोज की तरह लड़कियां हैं कि हॉकी खेल रही हैं।

लड़कियां पेनाल्टी कार्नर मार रही हैं
लड़कियां पास दे रही हैं लड़कियां
'गो...ल-गो...ल' चिलचलाती हुई
बीच मैदान की ओर भाग रही हैं।
लड़कियां एक-दूसरे पर ढह रही हैं।
एक-दूसरे को चूम रही हैं और हंस रही हैं।

लड़कियां फाउल खेल रही हैं लड़कियों को चेतावनी दी जा रही है
और वे हंस रही हैं कि यह जिंदगी नहीं है
इस बात से निश्चिंत हैं लड़कियां हंस रही हैं
रेफरी की चेतावनी पर।

लड़कियां बारिश के बाद की नम घास पर फिसल रही हैं
और गिर रही हैं और उठ रहीं हैं वे लहरा रहीं हैं चमक रहीं हैं
और मैदान के अलग-अलग मोर्चों में रह-रहकर उमड़-घुमड़ रही हैं।

वे चीख रही हैं सीटी मार रही हैं और बिना रुके भाग रही हैं
एक छोर से दूसरे छोर तक। उनकी पुष्ट टांगें चमक रही हैं।
नृत्य की लयबद्ध गति के साथ और लड़कियां हैं कि निर्द्वन्द्व निश्चिंत हैं।
बिना यह सोचे कि मुंह दिखाई की रस्म करते समय सास क्या सोचेगी।

इसी तरह खेलती रहती लड़कियां निस्संकोच-निर्भीक
दौड़ती-भागती और हंसती रहतीं इसी तरह
और हम देखते रहते उन्हें।
पर शाम है कि होगी ही रेफरी है कि बाज नहीं आएगा।
सीटी बजाने से और स्टिक लटकाए हाथों में
एक भीषण जंग से निपटने की तैयारी करती लड़कियां लौटेंगी घर।

अगर ऐसा न हो तो समय रुक जाएगा।
इंद्र-मरुत-वरुण सब कुपित हो जाएंगे
वज्रपात हो जाएगा, चक्रवात आ जाएगा।
घर पर बैठे देखने आए वर पक्ष के लोग
पैर पटकते चले जाएंगे। बाबूजी घुस आएंगे गरजते हुए मैदान में।
भाई दौड़ता हुआ आएगा और झोंटा पकड़कर घसीट ले जाएगा।
अम्मा कोसेगी- 'किस घड़ी में पैदा किया था
ऐसी कुलच्छनी बेटी को!' बाबूजी चीखेंगे-
'सब तुम्हारा बिगाड़ा हुआ है! घर फिर एक अंधेरे में डूब जाएगा
सब सो जाएंगे। लड़कियां घूरेंगी अंधेरे में।

खटिया पर चित्त लेटी हुई अम्मा की लंबी सांसें सुनतीं
इंतजार करती हुई कि अभी वे आकर उनका सिर सहलाएंगी।
सो जाएंगी लड़कियां सपने में दौड़ती हुई बॉल के पीछे
स्टिक को साधे हुए हाथों में पृथ्वी के छोर पर पहुंच जाएंगी
और 'गोल-गोल' चिल्लाती हुई। एक-दूसरे को चूमती हुई
लिपटकर धरती पर गिर जाएंगी।

प्रसंग

प्रस्तुत कविता 'हॉकी खेलती लड़कियां' आधुनिक युग की कवयित्री कात्यायनी द्वारा रचित है। स्त्री-विमर्श की इस कविता में कवयित्री ने लड़कियों की स्वतंत्रता एवं उसके समक्ष दीवार बनकर खड़ी पारंपरिक यथार्थ की स्थितियों का चित्रांकन किया है।

व्याख्या

हॉकी खेलती लड़कियों का चित्र खींचते हुए कवयित्री का कहना है कि आज संतोषी माता के व्रत का दिन यानी शुक्रवार है।

अम्मा संतोषी माता का व्रत रखती हैं और शाम को जब लड़कियों से व्रत की कथा सुन लेती हैं तभी व्रत का पारायण करती हैं। छोटा-सा शहर है, हर बात के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुंचने में समय नहीं लगता। किसके घर क्या हुआ? किसकी बेटी कहां गई? कौन क्या कर रही है? सभी तुरंत हर बात जान जाते हैं? इसीलिए हर घर अपनी मर्यादा और सम्मान के प्रति बेहत सतर्क व चौकन्ना रहता है। भय बना रहता है कि बेटियां जो कुल की प्रतिष्ठा का मानक हैं, कहीं कुछ गड़बड़ी न फैलाएं। लेकिन इन सारी चिंताओं और भय से मुक्त लड़कियां अपने शिक्षालय के मैदान में हॉकी खेल रही हैं। हाथों में स्टिक लिए बॉल के पीछे दौड़ती हुई लड़कियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे हरी घास की नदी है जिसमें सुख और निश्चिंतता के पंख लगाए लड़कियां तैर रही हैं। चूल्हें की आंच और मूसल की धमक जैसे रोजमर्रा की गृहस्थ जीवन की कार्य शैली से दूर, जहां इस समय वे एक स्वतंत्र मनुष्य हैं और अपनी इच्छा पूर्ति करते हुए सुखों के सागर में डूबी हुई हैं।

लड़कियां अपने खेल के मैदान में निश्चिंत हाकी खेल रही हैं और उनके घरों में उनकी प्रतीक्षा में सभी बेचैन हैं। किसी लड़की को देखने वर पक्ष के लोग आए हैं और वे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। शाम हो रही है अम्मा प्रतीक्षा कर रही हैं कि बेटियां आएं तो संतोषी माता की कथा सुनाएं और वे अपने व्रत का पारायण करें। दफ्तर से लौटे हुए पिता प्रतीक्षा कर रहे हैं कि बेटियां आएं तो चाय और पकौड़ी बनाएं। भाई ने देखा कि प्रतिदिन की तरह शरारती लड़के चौराहे पर खड़े हैं ताकि स्कूल, कॉलेज से लौटती लड़कियों को छेड़ सकें अत: वह बार-बार गली, मुहल्ले का चक्कर काट रहा है ताकि उसकी बहनों को कोई छेड़ न सके वे सुरक्षित घर आ जाएं। पूरा घर लड़कियों के ख्याल के आस-पास चक्कर लगाता है। वे घर में सभी की आवश्यकताओं और इच्छाओं का केंद्र हैं। उनके पास घर में समय रुका हुआ है। वे पहुंचेगी तो घर में हवा निश्चिंत होकर बहेगी। लेकिन लड़कियां इन सब की प्रतीक्षाओं, चिंताओं से मुक्त होकर हॉकी खेल रही हैं। इस समय वे अपनी मुक्ति का पर्व मना रही हैं। वे मनुष्य हैं, स्त्री हैं, इस समय केवल खिलाड़ी हैं।

पेनाल्टी कार्नर मारती हुई, पास देती हुई, गोल-गोल चिल्लाती हुई लड़कियां बीच मैदान में भाग रही हैं, एक-दूसरे पर गिर रही हैं और गोल हो जाने पर हंस रही हैं। प्रसन्नता में एक दूसरे को चूम कर लक्ष्य प्राप्ति की बधाई दे रही हैं। फाउल खेलती हुई लड़कियों को रेफरी चेतावनी दे रहा है लेकिन लड़कियां इस चेतावनी को सुनकर हंसती हैं और फिर फाउल खेलती हैं, जैसे कह रही हों कि यह खेल है, जिंदगी नहीं...। जिंदगी में फाउल खेलने की आज्ञा नहीं है, कठोर दंड मिलता है, लेकिन यह खेल है यहां वे फाउल खेल सकती हैं।

बारिश के बाद खेल के मैदान की घास नम हो गई है जिससे लड़कियों की मस्ती करने की भावना बलवती होकर बढ़ गई है। वे इस नम घास पर फिसल रही हैं, गिरती, उठती, लहराती, चमकते रंगों वाली सुकोमल निश्चिंत लड़कियां समूह बनाकर एक दूसरे से जूझ रही हैं। वे सीटी मार रही हैं। उनके लिए भी लड़कों की तरह यहां कोई रोक-टोक निषेधाज्ञा नहीं है। तीव्र गति से भागती, निर्द्वंद लड़कियों की सुडौल टांगें चमक रहीं हैं। लगता है वे एक लय में नृत्य कर रही हों। इस समय उन्हें टांगों के दिखने की चिंता नहीं है। वे नहीं सोच रही हैं कि मुंह दिखाई की रस्म करते हुए सास उसके खिलाड़ी जीवन की निर्द्वंद्वता के संबंध में क्या सोचेगी। इन निश्चिंत खेलती लड़कियों को देखना अच्छा लगता है। कवयित्री कामना करती है कि सदियों के बंधन से मुक्त हुई ये लड़कियां इसी तरह हंसती, खेलती, दौड़ती-भागती रहें। निर्भीक और निश्चिंत होकर जीवन को भी खेल की तरह पूरे मन से, सुखपूर्वक खेलें, जीएं। हम उनका सुखी होना देखते रहें।

पर हर सुख एक निश्चित समय के लिए आता है फिर उसे जाना ही होता है। लड़कियों के खेल के समय की भी एक सीमा है। शाम हुई, रेफरी ने खेल बंद करने के लिए सीटी बजाई और लड़कियां व्यक्तिगत सुखों के संसार से निकलकर वृहत संसार के उत्तरदायित्वों का सामना करने के लिए तैयार हो गईं। सबकी इच्छाओं की समय पर पूर्ति करना भीषण जंग (युद्ध) लड़ने की तरह है। लड़कियां हर दिन यह जंग लड़ती हैं। हाथों में स्टिक लटकाए जंग लड़ने के लिए तैयार होकर घर लौटती हैं ये लड़कियां। हाकी खेलने में मस्त और व्यस्त ये लड़कियां यदि शाम को घर पर समय पर न लौटें तो तूफान आ जाता है। पिता की चिंता की आंधी, भाई के क्रोध का तूफान और मां के आंसुओं का वेग इतना बढ़ता जाता है कि लगता है इस खानदान से इंद्र, मरुत और वरुण देवता रुष्ट हो गए हैं। प्रतिष्ठा के महल ढहने लगे वज्रपात हो जाएगा। चक्रवात आ जाएगा सारा शहर एकत्रित होकर इसी कुल के आसपास मंडराने लगेगा...लड़की क्यों नहीं आई अब तक? कहां गई? वर पक्ष के लोग जो लड़की को देखने आए हैं, नाराज होकर, लड़की को चरित्रहीन समझकर चले जाएंगे। बाबूजी का क्रोध बढ़ेगा वे खेल में मैदान में ही गरजते हुए पहुंचेगे और उसे डाटेंगे। भाई सारी मर्यादा, स्नेह भूलकर उसकी चोटी पकड़कर घसीटता हुआ उसे घर ले जाएगा। मां का वात्सल्य शाप में बदल जाएगा- कहेंगी इस कुलक्षणी को किस मनहूस घड़ी में पैदा किया कि आज यह अपमान भरा दिन देखना पड़ा। मां को रोते-कोसते देख पिता उन्हें ही ताने मारेंगे कि सब तुम्हारा ही बिगाड़ा हुआ है तुमने ही बेटी को इतनी स्वतंत्रता दी। सभी लोग डांटकर, चिल्लाकर सो जाएंगे। अंधेरे कमरे में अपने बिस्तर पर चित लेटकर लड़कियां सोचेंगी। वे प्रतीक्षा करेंगी कि शायद मां आकर उनका सिर सहलाएगी, डांट का प्रतिकार करेगी लेकिन ऐसा नहीं होता। प्रतीक्षा करती हुई लड़कियां थककर सो जाएंगी और सपने मे गोल-गोल चिल्लाती हुई, स्टिक हाथों में लिए धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक मुक्त भाव से दौड़ेंगी।

एक-दूसरे को चूमेंगी, लिपटकर गिर पड़ेंगी और फिर उठकर दौड़ेंगी। उनके समक्ष सपने में कहीं कोई गतिरोध, वर्जना, निषेध नहीं होता है। पूर्णतः मुक्त है लड़कियां।

विशेष

1. कात्यायनी ने प्रवाहमयी, सरसता के साथ वर्तमान समय में लड़कियों के स्वतंत्र जीवन पर प्रकाश डाला है। स्वतंत्रता का सुख प्राप्त की हुई लड़कियों का जीवन भी परंपरागत बंधनों और उत्तरदायित्वों से मुक्त नहीं होता। वे घर के हर सदस्य के प्रति जवाबदेह होती हैं। उन्हें अब भी गालियां और शाप सुनकर स्वतंत्रता की कीमत चुकानी पड़ती है। लेकिन फिर भी अब पहले से खुश हैं लड़कियां। इस कविता में यही कात्यायनी का कथ्य है।
2. यह अत्यंत सरल, सहज और प्रवाहमयी भाषा शैली में लिखी गई मार्मिक कविता है। यह अनलंकृत होने पर आकर्षित करती है। रोचकता और सरसता से परिपूर्ण है। हिंदी, अंग्रेजी के साथ देशज शब्दों का प्रयोग काव्य की यथार्थ अभिव्यक्ति को सफल बनाता है।

गतिविधि

कात्यायनी के काव्य और तसलीमा नसरीन के काव्य का अध्ययन कर 'स्त्री चेतना' पर एक आलेख तैयार करते हुए अपने विचार व्यक्त कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

कात्यायनी ने काव्य-सृजन के अलावा गद्य-सृजन भी किया है। दुर्ग-द्वार पर दस्तक, कुछ जीवंत-कुछ ज्वलंत, षडयंत्ररत मृतात्माओं के बीच उनके चर्चित निबंध संग्रह हैं।

14.6 सारांश

कात्यायनी न्याय व्यवस्था पर, कलावादियों पर, आत्मसंतुष्ट लोगों पर, विकास का दम भरने वालों पर चोट करती हैं। उनकी लेखनी प्रखर है। वे स्त्री-विमर्श की प्रखर कवयित्री हैं।

'स्त्री-विमर्श' स्त्री के अधिकारों के लिए होना चाहिए जो उसे स्वतंत्रता दे आत्मनिर्भर होने की। उसे गौरव प्रदान करें। स्त्री अपने कर्तव्यों का पालन करती हुई अपने अस्तित्व की अलग पहचान बनाए। कात्यायनी 'स्त्री-विमर्श' को सकारात्मक दिशा देने वाली कवयित्री हैं। वे स्त्री शक्ति को जागृत कर उसे संसार के सामने लाना जानती हैं। स्त्री की सहनशीलता, कर्मठता, समर्पण और लगन सरीखे गुण उसे पुरुष समाज में ईर्ष्या-द्वेष का कारण बनाते हैं। अवसर पाते ही वह अपने उपरोक्त गुणों के कारण पुरुषों से चौगुनी तरक्की कर सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित हो सकती है। इसीलिए पुरुष प्रधान समाज उसकी शिक्षा, चेतना और संवादों से भयभीत होता है। जब स्त्री देह मात्र नहीं होती वह सचेतन मनोमस्तिष्क होती है तब उसकी प्रगति के द्वार खुलते हैं। सचेत स्त्री बोलना, विरोध करना जानती है इसलिए परंपरागत दीन-हीन जीवन से मुक्ति पा जाती है। कात्यायनी की कविता पर टिप्पणी करते हुए सुरेश

सलिल लिखते हैं- "कात्यायनी की कविता में जीवन की गति हासिल करने की आकांक्षा है। यह गति ही कात्यायनी के काव्य-स्वर को अलग किस्म का और विशिष्ट बनाती है। कात्यायनी के रचना-जगत के योजन- सूत्र अगर उनके बीच ढूंढने की कोशिश की जाए, तो किसी सीमा तक उनके यहां सुभद्राकुमारी चौहान की परंपरा का विस्तार देखा जा सकता है। जो बलिदानी भावना, औदात्य, जीवन के विभिन्न रूपों और पक्षों के प्रति ममत्वपूर्ण आत्मीयता सुभद्रा जी की कविता में मूल्य बनकर अवतरित हुई थी, किंचित् भिन्न परिप्रेक्ष्य में, उसके साथ कात्यायनी की कविता के सूत्र जुड़ते देखे जा सकते हैं।" कात्यायनी में अनुभूति का स्तर गहरा है और वे पूरी ईमानदारी से उसे अभिव्यक्त करती हैं। मानवीय जीवन-मूल्यों से ओत-प्रोत रचनाकार ही करुणा, दया, परदुख कातरता, सहानुभूति एवं प्रेम से भरपूर रचनात्मकता का परिचय देता है क्योंकि यह उसके अपने जीवन मूल्य होते हैं।

पुरुष स्त्री की जिजीविषा, उसके आत्मविश्वास को देखकर घबरा जाता है क्षुब्ध होता है। इक्कीसवीं सदी में स्त्री शिक्षा को बल मिला है। शिक्षा ने उसके आत्मविश्वास को आधार प्रदान किया है। अब वह व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामाजिक जीवन तक अपने लिए सम्मानजनक स्थान चाहती है। कात्यायनी स्त्रियों की पीड़ा को कदम-कदम पर घटते-बढ़ते, भोगते देखती हैं। घर पर एक स्त्री की चूक समस्त स्त्रियों के लिए कहर बन जाती है। वे आपस में सहानुभूति रखते हुए भी पुरुषों से एक-दूसरे की रक्षा नहीं कर पातीं। लेकिन यह तभी तक हो पाता है जब तक स्त्रियां अपने आत्मबल से शोषण और अन्याय का विरोध करने के लिए खड़ी न हो जाएं, वे अपने अधिकारों को जानने न लगें। वे (स्त्री) जब सचेत होकर अपने अधिकारों को जानने लगती हैं और पुरुषों से 'ना' कहना सीख जाती हैं तो पुरुषों के लिए 'खतरा' बन जाती हैं।

कात्यायनी का अनुभव उनके काव्य को व्यापक फलक प्रदान करता है। अनुभव से प्राप्त यथार्थ के चित्र को वे तत्कालीन परिदृश्य के अनुरूप ही प्रस्तुत करती हैं। जीवन और जगत की संवेदनाओं का मिला-जुला चित्र उनकी वृहत्तर संवेदनशीलता का परिचय देता है। पर्यावरण, गरीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, झूठ और अन्याय से त्रस्त मानवता के अनेक चित्र उनकी रचनाओं में दिखाई देते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक युग ने विकास के नाम पर प्रकृति का असीम दोहन किया। कात्यायनी का काव्य आस्था के टूटते किनारों को आधार प्रदान करता है। उनकी कविताएं सकारात्मक दृष्टिकोण और आशावादी होने के लिए प्रेरित करती हैं।

कात्यायनी की कविताओं में जीवन के प्रति घनिष्ठता के दर्शन होते हैं। उन्होंने अपनी धारदार संवेदनाओं से जीवन के सूक्ष्मतम स्तरों तक पैठ बना ली है। अपने समकालीन रचनाकारों में निश्चय ही उनकी प्रतिष्ठा का स्तर उच्च एवं महत्वपूर्ण हैं।

14.7 मुख्य शब्दावली

- **सांद्र** : घना, मोटा, एक में मिला हुआ, अत्यधिक
- **जलकुंभी** : पानी पर होने और फैलने वाला एक पौधा, कुंभी
- **अपराजिता** : जिसे पराजित न किया जा सके, दुर्गा, शेफालिक आदि पौधे

- **मनोविश्लेषण** : मन के विचारों की समीक्षा, चित्त-विश्लेषण
- **अनावृत्त** : जो ढका न हो, खुला
- **नेस्तनाबूद** : जड़-मूल से नष्ट

14.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. 9 मई, 1959 को।
2. उसकी देह।
3. अपने सहनशीलता, कर्मठता, समर्पण और लगन सरीखे गुणों के कारण।
4. अमरबेल।
5. स्पष्ट, ईमानदार और मानवीयता के धरातल पर।
6. 'पुरुष की प्रार्थना' का।
7. जिजीविषा, और आत्मविश्वासपूर्ण रूप से।
8. इक्कीसवीं सदी में।
9. लालित्य और औदात्य पीड़ा का गहन स्वर और यथार्थ का अनावृत्त रूप।
10. तसलीमा नसरीन का।
11. संतोष कुमार तिवारी का।
12. 'लाभ' और 'जुगाड़' से।
13. 'संवेदनाओं' का।
14. 'कथ्य' और 'भाव' को।

14.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. कात्यायनी के व्यक्तित्व पर विष्णु खरे के विचार व्यक्त कीजिए।
2. कात्यायनी की रचनाओं का नामोल्लेख कीजिए।
3. कात्यायनी और तसलीमा नसरीन के काव्य में क्या साम्य है?
4. कात्यायनी की कविताओं में व्यंग्य-विधान स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. 'कात्यायनी की कविता स्त्री-विमर्श के विविध चित्र प्रस्तुत करती है।' –कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
2. कात्यायनी की कविता में प्रस्तुत स्त्री-पीड़ा के विविध बिंबों का वर्णन कीजिए।

3. कात्यायनी का काव्य समसामयिक जीवन-बोध को व्यक्त करता है–वर्णन कीजिए।

4. सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

(क) आज शुक्रवार.....व्रत तोडें।

(ख) अगर ऐसा न हो तो समय.....घूरेंगी अंधेरे में।

14.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. दिविक रमेश, *'कविता के बीच से'*

2. संतोष कुमार तिवारी, *'नए कवि : एक अध्ययन'*

इकाई 5 मलखान सिंह

5.0 परिचय

मलखान सिंह का जन्म सन् 1948 में हुआ। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट पदों पर रहते हुए महत्वपूर्ण योगदान दिया। सन् 2008 में वे जिला शाला निरीक्षक के पद से अवकाश प्राप्त कर पूर्णतः साहित्य सेवा में जुट गए। उनका 'सुनो ब्राह्मण' काव्य संग्रह (1996) में प्रकाशित हुआ। 'अंधड़' नामक दूसरा काव्य संग्रह शीघ्र प्रकाशित होगा। वे दलित साहित्य के क्षेत्र में जाने-माने दलित कवि माने जाते हैं।

15.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- परंपरागत समाज-व्यवस्था के विरोध और दलित कविता के स्वरूप का वर्णन कर पाएंगे;
- मलखान सिंह के काव्य का दलित-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन कर पाएंगे;
- मलखान सिंह की कविता 'सुनो ब्राह्मण' के भावार्थ का विस्तारपूर्वक वर्णन कर पाएंगे।

15.2 परंपरागत समाज-व्यवस्था का प्रतिरोध और दलित कविता

वेदयुगीन वर्णाश्रम व्यवस्था गुण कर्म पर आधारित थी। भिन्न-भिन्न प्रकृति के मानव समूहों में सामंजस्य स्थापित करने वाली इस व्यवस्था को भारतीय समाज को संगठित करने वाली आदर्श व्यवस्था माना जाता था। इस व्यवस्था के अनुसार समाज को चार वर्णों में बांटा गया था- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। यह व्यवस्था मूल रूप में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बनाई गई थी, जो अनेकता में एकता की स्थापना करती थी। चारों वर्णों के लोग एक-दूसरे पर

आश्रित थे। समाज के प्रति प्रत्येक व्यक्ति के कर्तव्य निर्धारित थे और पारस्परिक संघर्ष के बिना लोग एक-दूसरे का सहयोग करते थे। डॉ. राधा कुमुद मुकर्जी ने "वर्णाश्रम व्यवस्था को हिंदू धर्म की सर्वोत्तम परिभाषा कहा। उनके विचार में अस्पष्ट, विस्तृत तथा जटिल स्वरूप वाले हिंदू धर्म के सामाजिक संगठन के लिए इससे अच्छी व्यवस्था नहीं हो सकती थी।" इस व्यवस्था में हर वर्ण के लोग अपनी सीमाओं में रहकर कर्तव्य पालन करते थे। गुण तथा कर्म के अनुसार वर्ण विभाग होने के कारण कोई भी व्यक्ति धर्माचरण के द्वारा निम्न वर्ण से उच्च वर्ण में जा सकता था तथा पतित और दुराचारी होने के कारण उच्च वर्ण से निम्न वर्ण में जा सकता था। मनुस्मृति तथा आपस्तंब सूत्र में इस व्यवस्था का उल्लेख है-

"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यम्तथैव च।।" मनुस्मृति

"धर्म चर्चया जघन्यो वर्णः पूर्व पूर्व वर्णमापद्यते जाति परिवृत्तौ।
अधर्म चर्चया पूर्वो वर्णो जघन्य जघन्यं वर्ण मापद्यते जाति परिवृत्तौ।" (आपस्तंब)

इस प्राचीन वर्ण व्यवस्था का स्वरूप समय के साथ परिवर्तित होता गया और गुण कर्म के स्थान पर जन्म को आधार माना जाने लगा। जो जिस जाति में जन्म लेगा वह उसी जाति का कहा जाएगा और सदैव उसी जाति का रहेगा चाहे उसके गुण कर्म परिष्कृत हो या विकृत, अच्छे हो या बुरे। यह जन्म के आधार पर हुई वर्ण व्यवस्था दिनों दिन निकृष्ट रूप धारण करती गई। समाज बंट गया, मनुष्यों के बीच दूरियां बढ़ने लगीं, जाति-पाति और छुआछूत की समस्या अपने घृणित रूप में सामने आई। इस तरह की विकृत वर्ण व्यवस्था के प्रति अभिमानी ब्राह्मणों को ही दोष दिया जाने लगा। मध्ययुगीन समाज व्यवस्था का प्रतिरोध करते हुए कबीर जैसे संत कवियों ने कटूक्तियां कीं-

"जो तूं बामन बांभनी जाया, आन बाट तैं क्यूं न आया।
तुम कत बामन हम कत सूद, हम कत लोहू तुम कत दूध।।"

मध्ययुग से आरंभ हुआ यह प्रतिरोध आधुनिक काल तक और अद्यतन निरंतर है। वर्ण व्यवस्था तो जाति और जन्म पर ही आधारित है किंतु इसमें व्याप्त बुराइयों को दूर कर सामाजिक समानता को स्थापित करने के प्रयास होते रहे हैं। जाति-पाति और छुआछूत की भावना ने समाज को विखंडित किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जब देश के समाजसेवी महानायक स्वतंत्रता प्राप्त करने के यत्न कर रहे थे, तब महात्मा गांधी, केशवचंद्र सेन, जैसे महापुरुष समाज से 'अस्पृश्यता' की दुर्भावना हटाकर उन्हें एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न कर रहे थे। 'हिंदी काव्य में समाज' ग्रंथ में डॉ. गायत्री वैश्य लिखतीं है- "दलितों और अछूतों की स्थिति सुधारने में कांग्रेस ने ठोस काम किया। गांधी जी 'अस्पृश्यता' को हिंदुत्व पर धब्बा मानते थे। तथा उसे ऐसा अभिशाप बताते थे जिससे हिंदुत्व के विनाश को खतरा है।" धर्म की दृष्टि से, राष्ट्र की उन्नति की दृष्टि से, स्वतंत्रता एवं एकता की दृष्टि से छुआछूत व जातिप्रथा देश के लिए, समाज के लिए, समाज संगठन के लिए हानिकारक सिद्ध हुई। समाज सुधारकों एवं कवि, साहित्यकारों की लेखनी ने भी इस यथार्थ को चित्रित किया तथा इन कुप्रथाओं को हटाने के प्रयास किए। 'हरिऔध' ने अपने काव्य में लिखा-

भूत सिर पर है बड़प्पन का चढ़ा।
छल रही है छूत जैसी बद बला।।
कर बुरी बेकार बेजा ऐंठ क्यों?
जाति का हम ऐंठ देते हैं गला?

–(चुभते चौपदे)

हरिऔंध ने ऐसी समाज व्यवस्था का विरोध करते हुए उच्च वर्ण को चेतावनी भी दी-

"वे अछूता हमें न छोड़ेंगे।
छूत से हैं जिन्हें नहीं छूते।।
हैं दबे पांव के तले तो क्या।
क्या हमें काटते नहीं जूते?"

–(चुभते चौपदे)

गांधी जी की दूर दृष्टि भी इस सत्य से परिचित थी कि छुआछूत का रोग भारतीय समाज को खा जाएगा। उसकी एकता को नष्ट कर देगा। उन्होंने कहा- "अस्पृश्यता हिंदुत्व को धीरे-धीरे क्षीण करने वाला अभिशाप है जिसको दूर करने के उपायों को अपनाए बिना हिंदुत्व के विनाश का खतरा है। आज संसार के सारे धर्म परिवर्तित हो रहे हैं। हिंदुत्व भी इस प्रवाह से अछूता नहीं है। लेकिन इस प्रवाह में या तो सारी अस्पृश्यता समाप्त होगी नहीं तो हिंदुत्व को ही लुप्त होना होगा।" साहित्यकारों ने भी इस चिंता को हर विधा में अभिव्यक्त किया। कुछ कवियों ने समाज को सुधरते नहीं देखा तो व्यंग्य रचनाएं लिखीं। पं. नाथू राम शंकर लिखते हैं-

"रचो ढोंग पाखंड छूटें नहीं, छुआछूत का तार टूटे नहीं।
मिले झुंड में बोल बोला करो, न अंधेर की पोल खोला करो।।"

इन कुरीतियों के चलते भारतीय समाज व्यवस्था में वर्ग वैषम्य बढ़ता गया और इनके विरोध की आवाजें भी उठने लगीं। धार्मिक हठधर्मिता ने भेदभाव को बढ़ावा दिया। महात्मा गांधी ने अस्पृश्य वर्ग को 'हरिजन' कहा और धीरे-धीरे राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों से यह वर्ग दलित वर्ग कहलाने लगा। बीसवीं सदी के अंतिम चरण से बाकायदा दलित साहित्य, दलित कविता आदि पद उभरकर आने लगे। अछूतों के साथ समाज का दुर्व्यवहार कवियों को सदैव आहत करता रहा। वे उपदेश, तर्क और चेतावनी द्वारा समाज-व्यवस्था और भेदभाव की दृष्टि का विरोध करते रहे। मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं-

"रहो न हे हिंदू संकीर्ण, न हो स्वयं ही जर्जर जीर्ण।
बढ़ो बढ़ाओ अपनी बांह, करो अछूत जनों पर छांह।
हैं समाज के वही सपूत, रखते हैं जो सबको पूत।।"

गुप्त जी अछूतों को समाज का सपूत कहते हैं क्योंकि वे ही सारी गंदगी साफ कर सबको पवित्र रखते हैं। हिंदू उन्हें मंदिरों में प्रवेश नहीं करने देते थे एवं उनके साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते थे। अत: आहत होकर कुछ अछूत जातियों के लोग मुसलमान और ईसाई धर्म स्वीकार करने लगे। इससे हिंदू समाज की हानि होती देखकर कवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा-

"रखते हों यदि हम कुछ शर्म
करें न अपनों को बेधर्म।"

–'हिंदू'

इन्हें समाज नीच कहता है, पर हैं ये भी तो प्राणी।
इनमें भी मन और भाव है, किंतु नहीं वैसी वाणी –(पंचवटी)
घृणित अछूत अकिंचन जन में जो जन हैं जितना ही,
तुमसे है वह प्रेम प्राप्ति का पात्र अधिक उतना ही।" –(पथिक)

अछूतोद्धार एवं अछूतों से प्रेम की भावना जगाने में इस काल की कविताओं का महत्वपूर्ण योगदान है। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयत्नों के साथ बढ़ती हुई अछूतोद्धार की भावना स्वतंत्र भारतीय समाज में गहरी जड़ें जमाती गई। बाह्य स्वतंत्रता के साथ भीतरी स्वतंत्रता के लिए भी चहुंमुखी प्रयत्न होने लगे। बाल विवाह, सती प्रथा पर रोक लगी। विधवाओं के पुनर्विवाह का आरंभ हुआ। स्त्रियों और दलितों की शिक्षा को स्वीकृति मिली अर्थात समाज में यह जागरूकता आई कि बेटियों को भी शिक्षित किया जाए तथा दलित समाज में भी शिक्षा प्राप्त कर सदियों की गुलामी से मुक्त होने की भावना जागी, और यह कार्य उच्च वर्ण और वर्ग के लोगों ने ही किया। परंपरागत समाज-व्यवस्था के प्रति द्वेष, घृणा और चेतावनी देने वाली काव्य रचनाएं हुई जिन्हें 'दलित कविताएं' तो नहीं कह सकते लेकिन इन कविताओं में दलितों के अधिकारों की चिंता दिखाई देती है। गोपाल सिंह नेपाली कवि ने 'नया संसार' में लिखा–

"सड़ी गली प्राचीन रूढ़ि के भवन गिरेंगे दुर्ग ढहेंगे।
युग प्रवाह पर कटे वृक्ष से दुनियां भर के ढोंगे बहेंगे।
पतित दलित मस्तक ऊंचाकर संघर्षों की कथा कहेंगे।
और मनुज के लिए मनुष्य के द्वार खुले के खुले रहेंगे।।"

यहां कवि परंपरागत समाज व्यवस्था का प्रतिरोध करता हुआ मनुष्यता पर आधारित एक समान अधिकार प्राप्त समाज की स्थापना करना चाहता है। इस तरह की रचनाओं को 'प्रगतिवादी' की संज्ञा दी गई है। दलित चेतना को जगाने के लिए गैर दलितों द्वारा लिखी गई प्रभावशाली कविताओं को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि–

"जाके पैर न फटी बिवाई, सो क्या जानै पीर पराई।"

साहित्यकार, कवि, लेखक परकाया प्रवेश करना जानता है। वह दलितों की पीड़ा को दलितों की ही तरह अनुभव करता है। यह विडंबना ही है कि 'दलित' शब्द को संकीर्ण अर्थों में जाति से जोड़कर प्रयोग किया जा रहा है अन्यथा यह शब्द सभी वर्गों के कुचले हुए, अभावग्रस्त, शोषित लोगों के लिए प्रासंगिक है। अनेक ब्राह्मण, बनिए भीख मांगते, दूसरों के घर सेवा कार्य करते देखे जा सकते हैं लेकिन उच्च जाति के होने के कारण वे 'दलित' नहीं माने जाते। चुपचाप अन्याय सहन करने वाले दलित वर्ग के लिए बच्चन जी की ये पंक्तियां सटीक थीं–

"मन से अब संतोष हटाओ, असंतोष का नाद उठाओ।
करो क्रांति का नारा ऊंचा, भूखों अपनी भूख बढ़ाओ।।" (बंगाल का अकाल)

कवियों ने दलितों के अंदर जोश एवं उत्साह जगाया ताकि वे अपने अधिकारों के लिए उठ खड़े हों। वे सच्ची स्वतंत्रता पाना चाहते थे। जहां जाति-पांति का भेदभाव न हो। अतः परंपरागत समाज व्यवस्था पर उंगली उठाते हुए उन्होंने कहा–

"तुम स्वतंत्र करो उसे, तुम समृद्ध करो उसे
मिलिंद।
"युग-युग से शोषित जो, नीचे जो दलित पड़ा,
बढ़ो वीर नव पथ पर।"

(बलिपथ के गीत)

वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक जीवन और समाज व्यवस्था पर राजनीति का गहरा प्रभाव है। सरकार के आदेश, निर्देशों पर चलने वाला समाज कभी स्वेच्छा से और कभी विवशता से परिवर्तन को स्वीकार करता है। कारण चाहे जितने हो लेकिन दलितों का उत्थान अब दिखाई देता है। छुआछूत, जाति-पांति की भावना समाप्त प्राय है। नौकरी, शिक्षा, यात्राएं, अंतर्जातीय विवाह, दलितों को मुफ्त शिक्षा, नौकरी में सुविधाएं और छूट आदि ऐसे अनेक कारण हैं जिससे सामाजिक व्यवस्था का परंपरागत ढांचा बदल गया है यूं अपवाद हर बात के मिलते हैं। दलित वर्ग की व्यथा-कथा दलित और गैर दलित साहित्यकारों द्वारा लिखा जाना भी बांट कर देखा जा रहा है। 'पांडुलिपि' के अक्टूबर दिसंबर 2010 के अंक में कुमार विमल कहते हैं- "वास्तविकता यह है कि दलित और गैर दलित होने के पीछे सत्ता, सम्मान, पुरस्कार, शिक्षा, भवन, भोजन और वेशभूषा-इन सबका हाथ है। इतनी बारीकी में प्रेमचंद और उनके समकालीन कथाकार जा ही नहीं सके। आज हमारे दलित लेखक हैं और दलित लेखन-चिंतन में विश्वास रखने वाले हमारे गैर दलित लेखक हैं। उनमें जो बारीकी अभी चिंतन व लेखन के धरातल पर मिलती है वह उस युग में थी ही नहीं। चूंकि जो गैर आर्थिक कारक और गैर सामाजिक-आर्थिक कारक हैं, उन्हें वे पहचानते नहीं थे। फल यह हुआ कि प्रेमचंद हो या कोई और लेखक, अपने समय के लिए उन्होंने काम तो ठीक ही किया।" गैर दलितों के दलित साहित्य में विचारों की गहराई है। विचारों की यह ताकत ही क्रांति कर सकती है। दूसरी ओर कुमार विमल के कथ्य का तात्पर्य यह है कि दलित लेखन में जो आक्रोश है, तलख अभिव्यक्ति है, निर्भीकता है उसकी प्रशंसा की जा सकती है लेकिन उसकी एक सीमा है। आक्रोश से ध्वंस होता है निर्माण नहीं। अतः दलित आक्रोश को एक रचनात्मक परिणति देनी चाहिए। कुमार विमल कहते हैं- "अभी दलित लेखन को विचारों की और ताकत चाहिए। जो दलित चेतना जागी है उसके तेजहीन होने का खतरा राजनीतिक सत्ता के मोह से पैदा हो सकता है। यह सत्ता का मोह व्यक्ति की प्रवृत्ति को, चिंतन को निस्तेज बनाता है।" यह तर्कपूर्ण टिप्पणी है। राजनीति का भावनाओं से कोई सरोकार नहीं होता। दलितों की भावनाओं को अपने लाभ के लिए उपयोग करने वाली क्रूरता राजनीति में है। लेकिन दलित वर्ग शीघ्र ही राजनैतिक दांव-पेंचों को समझने लगा है। उसमें वैचारिक उत्थान का प्रभाव पहले पड़ा, बाद में राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना ने अपना प्रभाव दिखाया अपने विचारों के आधार पर वे राजनीतिक दखल को स्थान देने लगे हैं तथा अपने विचारों के आधार पर ही सामाजिक रीतियों से दूर हो रहे हैं। अब वे स्वयं अपना इतिहास लिख रहे हैं। वह अपनी भावनाओं को निर्भीकता से व्यक्त करता है। धूमिल की 'मोचीराम' कविता के अंश दृष्टव्य हैं-

रांपी से उठी हुई आंखों ने मुझे / क्षण-भर टटोला और फिर
जैसे पतियाये हुए स्वर में / वह हंसते हुए बोला- बाबूजी! सच कहूं-
"मेरी निगाह में / न कोई छोटा है / न कोई बड़ा है
मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने / मरम्मत के लिए खड़ा है।"

मोचीराम कहता है–

"और बाबूजी! असल बात तो यह है कि जिंदा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है / तो रामनामी बेचकर या रंडियों की।
दलाली करके रोजी कमाने में / कोई फर्क नहीं है।"

अब मोचीराम स्पष्टीकरण देने और तर्क करने की स्थिति में आ गया है यही दलित चेतना का प्रतीक है। दलित वर्ग सांप्रदायिकता, राजनीति और सामाजिक-आर्थिक समीकरण को समझ रहा है। वह सरकारी सुविधाएं प्राप्त कर सुविधाजनक स्थिति में आता जा रहा है। एक नयी आशा का संचार हुआ है जो पुराने जख्मों को भर रही है। यह सामाजिक परिवर्तन दलित कविता में कहीं स्पष्ट एवं कहीं अस्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि अभी वैचारिक गहनता एवं स्थिरता का अभाव भी उनमें है। उच्च वर्ग के प्रति संदेह के नाग अब भी फन उठाते हैं। दलित साहित्यकारों द्वारा लिखी गई दलित कविताओं की संख्या अभी कम है जबकि गद्य साहित्य पर्याप्त मात्रा में शोध के लिए प्रयुक्त है। गैर दलितों द्वारा दलित की चिंता करते हुए लिखी गई कविताएं अक्सर दिखाई देती हैं। कुछ कविताओं में आंशिक रूप से दलित विमर्श होता है। जैसे सुरेंद्र प्रताप की कविता का एक अंश देखें–

"पीढ़ियों से कुचले शब्द / नयी अर्थवत्ता पा सकेंगे।
दिल्ली के बजाय घिस्सन / अपने गांव से शुरू करेगा यात्रा।
जन-जागरण-यात्रा / समाज बदलने, शब्द बदलने, लय बदलने।
जोन्हरी के हर दाने पर लिखी होगी / गरीब की 'हाय'।
उस 'हाय' से होने वाले विस्फोट / के हम सिर्फ चश्मदीद गवाह ही नहीं
होंगे / विस्फोट से निकलने वाले शब्दों / के अर्थों को आग में तपा।
बनाएंगे नया इतिहास कोई / बनाएंगे साझी संस्कृति।
शोषण से मुक्त कोई समाज।।" (जनपद)

सुरेंद्र प्रताप आशावादी कवि हैं। उन्हें लगता है तो ठीक ही लगता है कि–

"बची रहेगी विचारधारा / बचे रहेंगे लोग।
आएगा जरूर आएगा समाजवाद / एक दिन।"

दलित कविता और परंपरागत समाज-व्यवस्था का प्रतिरोध अक्सर आक्रोश से भरा प्रतीत होता है। जैसे- मलखान सिंह की कविता- 'सुनो ब्राह्मण'। वे अपना आक्रोश पूरे समाज के लिए नहीं केवल ब्राह्मण के लिए प्रकट करते हैं कि 'अब एकलव्य ने उठा लिए हैं धनुष और बाण' इस तरह वे ब्राह्मणों की गुलामी नहीं करेंगे, उनकी बराबरी करते हुए अधिकारपूर्वक जीवन जिएंगे। यहां वैचारिक संकीर्णता है जो दलित वर्ग के उत्थान के लिए शुभ नहीं हो सकती। दलित साहित्यकारों को इस संकीर्ण मानसिकता से बचना होगा। तभी परंपरागत समाज व्यवस्था में वे परिवर्तन के सहभागी बन सकेंगे। सुखद बात यह है कि दलित वर्ग की स्थिति और समाज में उनकी भागीदारी दोनों की ही स्थिति बेहतर और बेहतर होती जा रही है। सशक्त कानून और सरकार के द्वारा प्रदत्त सुविधाएं हमें स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए आश्वस्त करती हैं। अब कोई एकलव्य अंगूठा काटकर नहीं देगा। वह अपने अस्तित्व की रक्षा करेगा।

वह अपने प्राचीन धनुष बाण लेकर तैयार हो गया है ताकि तुम्हारे अर्जुन और कर्ण से टक्कर ले सकें। अब हम सचेत हैं। ब्राह्मण, हम अपना अधिकार प्राप्त करने की सामर्थ्य पा गए हैं। हम अब अन्याय, शोषण और अत्याचारों का प्रतिकार कर सकते हैं।

15.3 दलित-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में मलखान सिंह के काव्य का मूल्यांकन

मलखान सिंह दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। परंपरागत समाज व्यवस्था के प्रति उनका विरोध दिखाई देता है। उच्च वर्गों के द्वारा दलित वर्ग पर किए गए अन्यायों और अत्याचारों की पीड़ा और पीड़ा से उत्पन्न आक्रोश उनकी, कविता 'सुनो ब्राह्मण' में दिखाई देता है। कभी-कभी रचनाकार की एक ही रचना उसके दृष्टिकोण एवं जीवन पद्धति, चिंतन प्रक्रिया को दिखाने में समर्थ होती है। बाकी रचनाएं फिलर की तरह होती है। मलखान सिंह की (प्राप्त रचना) एक यही कविता उनकी चिंतन की दिशा एवं दशा को सशक्त रूप से सामने रखती है। 'सुनो ब्राह्मण' ये दो शब्द उनके भीतर के आक्रोश, क्षुब्धता, तिरस्कार की पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए पर्याप्त हैं। यह पंक्ति ब्राह्मण और समस्त उच्च वर्ण और वर्ग के लिए चेतावनी की ध्वनि बनकर प्रसारित होती है ऐसी ध्वनि जिसमें चेतावनी के साथ हिकारत या तिरस्कार है। दलित वर्ग अब तिरस्कार करने की स्थिति में आ गया है वे ऐसा संदेश देते हैं।

मलखान सिंह की कविता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि वे दलित वर्ग के प्रति जागरूक होने और अन्याय का विरोध करने में समर्थ होने की सूचना देते हैं, वे कहते हैं कि एकलव्य ने अब धनुष बाण उठा लिए हैं और वे उच्च वर्ग के कर्ण और अर्जुन की बराबरी से युद्ध करेगा, उसे बराबरी का अधिकार शासन से प्राप्त हो गया है। सरकार ने उन्हें विशेषाधिकार एवं विशेष सुविधाएं प्रदान कर सशक्त बना दिया है। मुफ्त शिक्षा, मुफ्त कोचिंग और अनेक छात्रवृत्ति योजनाओं ने उनके बच्चों को उच्च वर्ग के बच्चों की तरह शिक्षित होने, नौकरी और व्यवसाय की सुविधाएं दी हैं। किंतु चेतना की इस सूचना में भी केवल ब्राह्मण के लिए संबोधन उनकी चिंतन-दृष्टि को सीमित एवं संकीर्ण बनाता है और ऐसा प्रतीत होता है जैसे क्षत्रियों, वैश्यों तथा अन्य उच्च वर्ण से उन्हें कोई शिकायत नहीं केवल ब्राह्मण से है।

इस तरह यह जातिगत कुंठा का द्योतक बन जाता है। यहां डॉ. कुमार विमल की टिप्पणी को रेखांकित करना आवश्यक लग रहा है। (पांडुलिपि अक्टूबर दिसंबर 2010, पृष्ठ 291-292) डॉ. साहब कहते हैं- "हमारे दलित समाज में कहीं-न-कहीं हीनता की ग्रंथियां रही हैं। इसको हम नकार नहीं सकते। हीनता की भावना से व्यक्ति और समूह में 'पर्जेक्यूशन कॉम्प्लेकस' पैदा होता है। हमें हमेशा ऐसा महसूस होता है कि कोई दूसरा हमें पीड़ा का शिकार बना रहा है। इसलिए हमको हीनता की ग्रंथि से ऊपर उठना होगा। आशय यह है कि 'इनफीरियरटी कॉम्प्लेक्स' और 'उत्पीड़न ग्रंथि' इन दोनों से दलित लेखन को ऊपर उठना होगा।" मलखान सिंह का आक्रोश ब्राह्मणों के समक्ष हीनता ग्रंथि से उपजा प्रतीत होता है। जहां तक ब्राह्मणों के बेटे-बेटी के साथ अपने बेटे-बेटी की समानता की बात दलित वर्ग के काव्य का प्रतिनिधि नायक करता है तो यही कहा जा सकता है कि यहां भी वही हीनता और उत्पीड़न ग्रंथि कार्य करती है। बराबरी अगर दलित वर्ग और कविता के ब्राह्मण वर्ग के

बीच है या नहीं, हो गई है या नहीं, होगी या नहीं, कि बात करे तो यह भी संकीर्ण मानसिकता का परिचायक है क्योंकि असमानताएं दो वर्गों में ही नहीं होती बल्कि हर वर्ग के भीतर, हर जाति के भीतर भी उपजातियों के रूप में होती है। यह प्रकृति का सामान्य नियम है। पेड़ तो बहुत हैं लेकिन उनमें भी कोई बरगद है, कोई आम और आंवला और कोई छोटा झाड़ी नुमा पेड़। कुमार विमल लिखते हैं- "दलित लेखन का मूल लक्ष्य है- असमानताओं को, गैरबराबरियों को उभारना। लेकिन असमानताएं या गैरबराबरियां केवल दलितों और गैर दलितों के बीच ही नहीं है। स्वयं दलितों के बीच भी असमानताएं और गैर बराबरियां हैं। अगर वास्तव में असमानता को दूर करना है, तो इन असमानताओं को भी हमें 'लाइम लाइट' में लाना होगा। मेरे डोम भाई हों या चर्मकार भाई हों- दोनों दलित हैं। लेकिन कहीं-न-कहीं चर्मकार भाइयों के मन में यह धारणा बद्धमूल रहती है कि डोम भाइयों से वे कहीं श्रेष्ठ हैं। डोम भाइयों में भी कई शाखाएं हैं जो अपने को दूसरे से बड़ा मानती हैं। इस तरह दलित समाज में- "ज्यों केले के पात में, पात-पात में पात" जैसी असमानताएं हैं, उन्हें कौन चिह्नित करेगा?"

कुमार विमल की टिप्पणी यथार्थ का दर्पण है। चेतना तभी सार्थक होगी जब उसकी पकड़ व्यापक परिवेश में होगी। 'सुनो ब्राह्मण' वाली संकीर्णता राजनैतिक सत्ता की वोटों की राजनीति वाली दृष्टि है। क्योंकि शासन के नियम, कानून बदले तो निम्न जाति वर्ग के दलितों को अधिकार एवं सुविधाएं मिली शिक्षा प्राप्त कर वे जागरूक हुए तो इसका अर्थात नियम कानूनों का प्रभाव उच्च जाति वर्ग पर भी हुआ। दलितों के लिए उनके किले की बर्फ पिघली और साथ ही उनका यानि उच्च वर्ग का एक बड़ा वर्ग अघोषित दलित वर्ग बन गया जो ऊंची जाति का होने के कारण गरीब होने पर भी शासन से वे सुविधाएं नहीं प्राप्त कर सकता जो निम्न जाति के घोषित दलितों को प्राप्त हैं। अब इस इक्कीसवीं सदी में जबकि शासन, कानून और समाज ने भी दलित वर्ग को बराबरी का अधिकारी मान लिया है, शिक्षा व्यवसाय पर बराबरी का अधिकार है, युवा वर्ग अपनी इच्छानुसार अंतर्जातीय विवाह कर रहे हैं, हर व्यक्ति यात्राएं करता है, होटलों में खाता-पीता है बिना यह पूछे कि किस जाति के लोग भोजन बना और परोस रहे हैं, ब्राह्मणों की जूते की दुकान है, क्षत्रिय कपड़ों की दुकान चला रहे हैं। वैश्य शिक्षा दे रहे हैं, शासन कर रहे हैं, दलित वर्ग शासन कर रहा है, शिक्षा दे रहा है, चिकित्सा प्रदान कर रहा है। ऐसे में 'सुनो ब्राह्मण' कविता जो ब्राह्मणों को चेतावनी देने के लिए और उन्हें दलित वर्ग के जागरूक और समर्थ होने की सूचना देने के लिए लिखी गई है, प्रासंगिक नहीं लगती। कवि को अब एक कदम आगे बढ़कर दलित वर्ग के भीतर फैली असमानताओं को दूर करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

'सुनो ब्राह्मण' अतीत की पीड़ा के दर्शन कराने के लिए किया गया प्रयास माना जाए तो प्रयास अच्छा है। यह कविता मन को छूती है। सरलता और सादगी से कवि की यह दलित वर्ग के लिए मंगलकारी रचनात्मकता प्रशंसनीय है! लेखन सशक्त है, चिंतन का क्षितिज व्यापक होते ही सार्थक हो उठेगा।

15.4 पाठांश

सुनो ब्राह्मण

सुनो ब्राह्मण
हमारी यात्रा की कहानी
शुरू होती है अपने जन्म के साथ
और अंत होती है
जीवन अंत के साथ।।।।।

सुनो ब्राह्मण
हमारे पसीने की दुर्गंध से
नाराज होते हैं आप
क्यों नहीं भेजते हैं आप
एक दिन साथ आइए
और बैठे साथ-साथ
और करें चमड़े का काम
मेरे बेटे के साथ
अपने बेटे को भेजें
दैनिक मजदूरी करने के लिए
और तुम्हारी पुत्री को
मेरी पुत्री के साथ
मुखिया के खेतों को काटने
शाम को अपने आप पता चलेगी
बू अपने आप की
अपने बेटे की
अपनी बेटी की
और आप समझ जाओगे
जीवन की गंध जो तेज है
है शरीर की गंध से।।2।।

तुम सुनो
तुमने सब प्राप्त किया

चढ़कर हमारे कंधों पर
और होते गए छोटे और छोटे
सुनो धरती के प्रभु
तुम अब छोटे हो गए हो
वहां आंगन के बीच में
स्वर्ग व नरक के घी
उच्च व नीच के
स्पृश्य व अछूत
मूत व राख
मंत्र व तंत्र
असीम व ब्रह्म
एक शाही किला बनाया
तुम्हारे किले की बनाई बर्फ अब
पिघलने लगी है
और एकलव्य अपने पुराने धनुष-बाण
लेकर हो गया है तैयार ।।3।।

प्रसंग

प्रस्तुत कविता दलित कविता के सिद्धहस्त कवि मलखान सिंह द्वारा लिखी गई है।

इस कविता में परंपरागत समाज व्यवस्था के प्रति दलितों के प्रतिरोध का स्वर सुनाई देता है। दलित वर्ग का प्रतिनिधि ब्राह्मणों को अपनी पीड़ा, त्रास और तिरस्कृत स्थितियों का उत्तरदायी मानकर उसे चेतावनी दे रहा है कि अब तक वे सब कुछ सहते रहे, सेवा करते रहे उच्च वर्ग की, किंतु अब वे नहीं सहेंगे। दलितों की सेना एकलव्य के नेतृत्व में ब्राह्मणों को ललकारती है क्योंकि वे समाज-व्यवस्था के लिए ब्राह्मणों को ही उत्तरदायी मानते हैं।

व्याख्या

प्राचीन वर्ण व्यवस्था में चार वर्ण बने। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों की सेवा में चौथा वर्ण जिसे महात्मा गांधी ने हरिजन नाम दिया और अब साहित्य और शासन जिससे दलित वर्ग कटता है, सेवा कार्य के लिए नियुक्त हुआ। दलित वर्ग सदैव स्वयं को उपेक्षित एवं तिरस्कृत अनुभव करता रहा।

समय परिवर्तन के साथ कार्यों में, नियम में, कानून में बदलाव आया। शिक्षा से वंचित दलित वर्ग को न केवल शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार मिला बल्कि मुफ्त शिक्षा और नौकरी तथा व्यवसाय के अवसर मिले। शिक्षा प्राप्त कर दलित वर्ग सचेत हुआ, जागरूक हुआ और अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों को समझने लगा। वह अन्याय, शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने

लगा। प्रस्तुत कविता में ब्राह्मणों को ही अन्याय, शोषण और तिरस्कार का उत्तरदायी ठहराते हुए चेतावनी दी गई है। और यह भी कि अब हम नासमझ नहीं हैं अपनी स्थिति के यथार्थ को जानते हैं तथा इस दुखद स्थिति से उबरने के लिए कटिबद्ध हैं।

दलित वर्ग का प्रतिनिधि ब्राह्मण को चेतावनी देते हुए कहता है कि सुनो ब्राह्मण अब हम जागरूक हो गए हैं और यथार्थ से परिचित हैं। हम जान गए हैं कि हमारे दलित, तिरस्कृत जीवन की यात्रा जन्म के साथ ही आरंभ हो जाती है और मृत्यु होने पर ही उसका अंत होता है। यह कहानी बार-बार दोहराई जाती है। दलित के घर जन्मा बच्चा जन्म लेते ही सेवा कार्य के लिए नियुक्त एक और दलित मान लिया जाता है। वह जन्म से मृत्यु तक तिरस्कार सहता है। उसे मनुष्यों की तरह जीने का अवसर नहीं मिलता। समाज से स्नेह और सम्मान प्राप्त नहीं होता।

दलित वर्ग का प्रतिनिधि कहता है– सुनो ब्राह्मण हम तुम्हारे घरों, मुहल्लों का कूड़ा और मल साफ करते हैं। कठोर श्रम से और गंदगी साफ करते-करते हमारा पसीना बदबूदार हो जाता है। हमारे देह की दुर्गंध आपको परेशान करती है, नाराज होते हैं आप और हमें निकट नहीं आने देते। आपकी देह और आपके घरों की गंदगी साफ करने पर भी आप हमें अपने घर के अंदर प्रवेश नहीं करने देते। यह अन्याय और तिरस्कार आप बहुत कर चुके और हम चुपचाप गर्दन झुकाकर सुन चुके, लेकिन अब नहीं। आप ब्राह्मण हैं, विद्वान हैं, मनुष्यता और नैतिकता के रखवाले हैं तो कभी विचार कीजिए। सोचिए कि जिस दुर्गंध से आप नाराज होते हैं वह क्यों आती है हमारी देह से? क्यों नहीं एक दिन आप मेरे साथ बैठकर चमड़े का काम करते? मृत पशुओं की देह से चमड़ा उतारना कठिन कार्य है। एक दिन मेरे साथ बैठकर यह कार्य करें। मेरा बेटा मजदूरी करने जाता है किसी दिन अपने बेटे को मेरे बेटे के साथ मजदूरी करने के लिए भेजें ताकि उसे और आपको पता चले कि सेवा कार्य में कितना पसीना बहाना पड़ता है, किस तरह मालिकों की झिड़कियां सहनी पड़ती हैं। मार खाना और तिरस्कार सहना पड़ता है? मेरी बेटी मुखिया के खेतों में फसल काटने जाती है। वहां आप जैसे उच्च वर्ण के मुखिया की गंदी दृष्टि का, बातों और हरकतों का सामना करते-करते देह और मन से थककर निढाल हो जाती है, उसकी उस मुखिया की चारित्रिक दुर्गंध मेरी बेटी के पसीने में मिल जाती है, कभी आप अपनी बेटी को भी मेरी बेटी के साथ मुखिया के खेतों पर भेजें तब आपको पता चलेगा कि आपकी बेटी के, बेटे के और स्वयं आपके शरीर में दुर्गंध कैसे और क्यों आती है? तब आप हमारी देह से उठने वाली देह की दुर्गंध का कारण जान जाएंगे और यह भी कि इतना तिरस्कार सहते हुए भी हम इस दुर्गंध से दूर क्यों नहीं हो जाते?

ब्राह्मण हमारी जिजीविषा हमसे सब कुछ करवाती है। तिरस्कार, अन्याय, शोषण और अन्य सभी दुखों से बड़ा है। हम सब कुछ जीवन और उसे चलाने के लिए तथा पेट की आग शांत करने के लिए सहते रहे, क्योंकि तब हमारे पास तुम्हारी सेवा और सफाई कार्य के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था। अब समय बदल गया है। हम शरीर की प्रबल गंध (दुर्गंध) को जीने के लिए सहन करते थे किंतु अब नहीं।

दलित वर्ग का प्रतिनिधि कहता है– सुनो ब्राह्मण तुमने जो आदर, समृद्धि, स्नेह पाया, वह सब हमारे ही कारण पाया। हमने तुम्हारी देह से निकली, घरों में फैली गंदगी साफ की, मरे हुए पशुओं को हटाकर मुहल्ला, गांव साफ किया, उन पशुओं के चमड़े से ढोल नगाड़े

बनाए, कुएं से पानी खींचने के लिए रहट बनायी। तभी तुम शुद्ध पवित्र स्थान में बैठकर पूजा पाठ करके धन और आदर पाते रहे। तुम्हारे जीवन में आनंद का संगीत गूंजता रहा। तुमने जो पाया उसका आधार हम हैं। हमारे कंधों पर चढ़कर तुम आकाश को छूते रहे। सफलता और समृद्धि के ऊंचे शिखर छूते हुए भी तुम मनुष्यता के स्तर पर छोटे होते गए।

सुनो ब्राह्मण तुम धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय का उपदेश देते हुए इस धरती के प्रभु बन बैठे हो, स्वयं को नियंता और शासक समझते हो लेकिन तुम मनुष्यता की दृष्टि में बहुत ओछे हो गए हो। इस धरती पर सर्वश्रेष्ठ बने तुम अपने आंगन के बीच खड़े होकर स्वर्ग और नर्क की रचना करते हो, अपने ज्ञान और उपदेश के माध्यम से उच्च और नीच वर्ण की विशेषताएं बताते हो। छूत और अछूत का अंतर बताते हो, मल-मूत्र, राख, मंत्र और तंत्र, असीम सत्ता एवं ब्रह्म सब कुछ को अपने शब्दों के जाल से बांध कर, अपनी ही दृष्टि से परिभाषित कर शाही किले तैयार करते हो। ऐसे किले जिसमें हम दलितों का प्रवेश वर्जित है, हम केवल उस किले के बाहर रहकर तुम्हारी फेंकी हुई गंदगी साफ कर सकते हैं लेकिन किले के भीतर नहीं जा सकते, उसका हिस्सा नहीं बन सकते।

लेकिन यह अब नहीं होगा। सुनो ब्राह्मण तुम्हारे किले की बर्फ अब हमारी चेतना के ताप से पिघलने लगी है। तुम्हारे मन और बुद्धि रूपी किले की बर्फ भी अब हमारे शिक्षा एवं संस्कारों को देखकर पिघलने लगी है। अब हम जागरूक हैं, अंध भक्ति के मोह जाल में नहीं पड़ेंगे। अब कोई एकलव्य गुरु दक्षिणा में अंगूठा काटकर नहीं देगा। वह अपने अस्तित्व की रक्षा करेगा। वह अपने प्राचीन धनुष बाण लेकर तैयार हो गया है ताकि तुम्हारे अर्जुन और कर्ण से टक्कर ले सके। अब हम सचेत हैं ब्राह्मण, हम अपना अधिकार प्राप्त करने की सामर्थ्य पा गए हैं। हम अब अन्याय, शोषण और अत्याचारों का प्रतिकार कर सकते हैं।

विशेष

1. दलितों के प्रतिरोध के स्वर का वर्णन किया गया है।
2. कवि ने दलितों की स्थिति के लिए ब्राह्मण वर्ग को उत्तरदायी माना है।
3. दलित को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया गया है।
4. भाषा सीधी, सरल व भावों के अनुकूल है।

गतिविधि

कवि मलखान सिंह की अन्य कविताओं का अध्ययन कर आज के आधुनिक युग में उनकी कविताओं का औचित्य निर्धारण कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

डॉ. भीमराव अंबेडकर की अवधारणा से साम्य रखने वाले कवि मलखान सिंह दलित चिंतन में अतिशयोक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए जाने जाते हैं।

15.5 सारांश

"अस्पृश्यता हिंदुत्व को धीरे-धीरे क्षीण करने वाला अभिशाप है जिसको दूर करने के उपायों को अपनाए बिना हिंदुत्व के विनाश का खतरा है। आज संसार के सारे धर्म परिवर्तित हो रहे हैं। हिंदुत्व भी इस प्रवाह से अछूता नहीं है। लेकिन इस प्रवाह में या तो सारी अस्पृश्यता समाप्त होगी नहीं तो हिंदुत्व को ही लुप्त होना होगा।" अछूतों के साथ समाज का दुर्व्यवहार कवियों को सदैव आहत करता रहा। वे उपदेश, तर्क और चेतावनी द्वारा समाज-व्यवस्था और भेदभाव की दृष्टि का विरोध करते रहे। साहित्यकार, कवि, लेखक परकाया प्रवेश करना जानता है। वह दलितों की पीड़ा को दलितों की ही तरह अनुभव करता है। यह विडंबना ही है कि 'दलित' शब्द को संकीर्ण अर्थों में जाति से जोड़कर प्रयोग किया जा रहा है अन्यथा यह शब्द सभी वर्गों के कुचले हुए, अभावग्रस्त, शोषित लोगों के लिए प्रासंगिक हैं। अनेक ब्राह्मण, बनिए भीख मांगते, दूसरों के घर सेवा कार्य करते देखे जा सकते हैं लेकिन उच्च जाति के होने के कारण वे 'दलित' नहीं माने जाते। दलितों की भावनाओं को अपने लाभ के लिए उपयोग करने वाली क्रूरता राजनीति में है। लेकिन दलित वर्ग शीघ्र ही राजनैतिक दांव-पेंचों को समझने लगा है। उसमें वैचारिक उत्थान का प्रभाव पहले पड़ा, बाद में राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना ने अपना प्रभाव दिखाया अपने विचारों के आधार पर वे राजनीतिक दखल को स्थान देने लगे हैं तथा अपने विचारों के आधार पर ही सामाजिक कुरीतियों से दूर हो रहे हैं। अब वे स्वयं अपना इतिहास लिख रहे हैं। वह अपनी भावनाओं को निर्भीकता से व्यक्त करता है।

मलखान सिंह का आक्रोश ब्राह्मणों के समक्ष हीनता ग्रंथि से उपजा प्रतीत होता है। जहां तक ब्राह्मणों के बेटे-बेटी के साथ अपने बेटे-बेटी की समानता की बात दलित वर्ग के काव्य का प्रतिनिधि नायक करता है तो यही कहा जा सकता है कि यहां भी वही हीनता और उत्पीड़न ग्रंथि कार्य करती है। बराबरी अगर दलित वर्ग और कविता के ब्राह्मण वर्ग के बीच है या नहीं, हो गई है या नहीं, होगी या नहीं, कि बात करें तो यह भी संकीर्ण मानसिकता का परिचायक है क्योंकि असमानताएं दो वर्गों में ही नहीं होती बल्कि हर वर्ग के भीतर, हर जाति के भीतर भी उपजातियों के रूप में होती है। यह प्रकृति का सामान्य नियम है।

सुनो ब्राह्मण कविता को यदि अतीत की पीड़ा के दर्शन कराने के लिए किया गया प्रयास माना जाए तो प्रयास अच्छा है। कविता मन को छूती है।

15.6 मुख्य शब्दावली

- **अंधड़** : आंधी, तूफान
- **आपस्तंब** : एक शाखा प्रवर्तक ऋषि
- **हरिजन** : भगवान का सेवक, अछूत जाति का व्यक्ति
- **निस्तेज** : जिसमें तेज का अभाव हो, कांतिहीन, निष्प्रभ
- **जिजीविषा** : जीने की इच्छा
- **प्रतिकार** : वैर निकालना, बदला चुकाना, वह अपकार जो किसी अपकार के बदले किया जाए

15.7 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. गुण कर्म पर।
2. चार वर्णों में।
3. जाति और जन्म पर।
4. जाति-पाति और छुआछूत की भावना ने।
5. हिंदुत्व पर।
6. भेदभाव को।
7. अछूतों को।
8. धूमिल।
9. दलित चेतना का प्रतीक।
10. ब्राह्मण के प्रति।
11. दलित वर्ग का।
12. पर्जेक्यूशन कॉम्प्लेक्स का।
13. 'इनफीरियरटी कॉम्प्लेक्स' और 'उत्पीड़न ग्रंथि' के स्तर से।
14. असमानताओं को और गैरबराबरियों को उभारना।
15. जब चेतना की पकड़ पूर्णरूप से व्यापक परिवेश में होगी।

15.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. मलखान सिंह का पहला काव्य-संग्रह कौन सा है और वह कब प्रकाशित हुआ?
2. वर्णाश्रम व्यवस्था के संदर्भ में डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी के विचार बताइए।
3. छुआछूत किस प्रकार भारतीय समाज को ग्रसित कर रहा है?
4. "ज्यों केले के पात में, पात पात में पात" –उक्ति का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. परंपरागत समाज व्यवस्था में उत्पन्न दलित प्रतिरोध के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. मलखान सिंह के काव्य में दलित विमर्श के संघर्ष के स्वरूप का मूल्यांकन कीजिए।
3. सप्रसंग व्याख्या कीजिए–
   (क) हमारे पसीने की दुर्गंध से.....है शरीर की गंध से।
   (ख) तुम अब छोटे हो गए हो.....असीम व ब्रह्म।

15.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. संतोष कुमार तिवारी, *'नए कवि: एक अध्ययन'।*
2. नंदकिशोर नवल, *आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास*, भारतीय ज्ञानपीठ, 2012.

Institute of Distance Education

Rajiv Gandhi University

A Central University

Rono Hills, Arunachal Pradesh

Contact us:

+91-98638 68890 Ide Rgu Ide Rgu helpdesk.ide@rgu.ac.in